डॉ0 शिवानन्द नौटियाल

बहत्तर भारत :

आर्यों का मूल

बृहत्तर भारत
आर्यों का मूल

डॉ शिवानन्द नौटियाल

बृहत्तर भारत : आर्यों का मूल

डॉ. शिवानन्द नौटियाल

साहित्य प्रकाशन
दिल्ली

BRIHATTAR BHARAT ARYON KA MUL
By
Dr Shivanand Nautiyal

ISBN 81-7857-101-3

Price Rs 195/-

Published by
SAHITYA PRAKASHAN
DELHI-110006 (INDIA)

E-mail yogendrapalsahitya@yahoo com
Website www bookglacier com

मूल्य 195 रुपये मात्र / प्रथम सस्करण 2002
प्रकाशक साहित्य प्रकाशन, 1458, मालीवाडा, नई सडक, दिल्ली-110006
अक्षर मुद्राकन मानस टाईपसैटर, दरियागज, नई दिल्ली-110002
मुद्रक स्पीडोग्राफिक, 62-ए, साउथ अनारकली एक्स, दिल्ली-51

बृहत्तर भारत आर्यो का मूल डॉ शिवानन्द नोटियाल

BRIHATTAR BHARAT ARYON KA MUL
By
Dr Shivanand Nautiyal

ISBN 81-7857-101-3

Price Rs 195/-

Published by
SAHITYA PRAKASHAN
DELHI-110006 (INDIA)

E-mail yogendrapalsahitya@yahoo com
Website www bookglacier com

मूल्य 195 रुपये मात्र / प्रथम सस्करण 2002
प्रकाशक साहित्य प्रकाशन, 1458, मालीवाडा, नई सडक, दिल्ली-110006
अक्षर मुद्राकन मानस टाईपसैटर, दरियागज, नई दिल्ली-110002
मुद्रक स्पीडोग्राफिक, 62-ए, साउथ अनारकली एक्स , दिल्ली-51

बृहत्तर भारत आर्यो का मूल डॉ शिवानन्द नोटियाल

अनुक्रम

प्राक्कथन	7
बृहत्तर भारत आर्यो का मूल	25
पश्चिमी इतिहासकारो का द्वेषपूण व्यवहार	32
भारतीय आर्यो के सबध म बदलते विचार	34
मध्य एशियावाद दोषपूर्ण प्रमाणित	38
पश्चिमी विश्व मे आर्य सभ्यता के प्रमाण	40
अमेरिका मे भी आर्यो के उपनिवेश	41
ऋग्वेद काल से ही भारत का वर्चस्व	45
पश्चिमी एशिया मे आर्य देवता और भारतीय रथ	45
आर्यो का भारत से बाहर जाना	46
गूर्ने का महत्त्वपूर्ण विचार	47
सूर्यबिब का प्रतीक (भारतीय आर्यो का प्रभाव)	48
बेबीलोन मे भारतीय प्रतीक	49
देवपूजा के भारतीय रूप	50
फिलिस्तीन, सीरिया मे आर्य सामत	51
मिस्र मे हिस्सो शासन	54
आर्यो का मूल स्थान सप्त सिन्धु (सप्तसैधव)	59
ऋग्वैदिक सरस्वती	60
सरस्वती ही सिन्धु है	61
सप्त सिन्धु का देश पजाब या मध्य हिमालय	65
ऋग्वैदिक सरयू और गोमती	69
आर्यो के सप्तसिन्धु की जलवायु	72
सप्तसिन्धु उत्तराखड और कैलास-मानसरोवर का क्षेत्र	76
आर्यो का मूल निवास और जल प्लावन	76
जल प्लावन की गाथा	78
वैवस्वत मनु	80
आदि मनु स्वायम्भुव मनु	80
जल प्रलय	82
सृष्टि रचना और भारतीय वाडमय	84
मानव की उत्पत्ति का मूल स्थान भारत	85
ब्रह्मा ही सृष्टिकर्ता है	90
मरीचिपुत्र कश्यप की भूमिका	91

बृहत्तर भारत: आर्यों का मूल

डॉ. शिवानन्द नौटियाल

साहित्य प्रकाशन
दिल्ली

बृहत्तर भारत : आर्यों का मूल

डॉ. शिवानन्द नौटियाल

साहित्य प्रकाशन
दिल्ली

BRIHATTAR BHARAT   ARYON KA MUL
By
Dr Shivanand Nautiyal

ISBN 81-7857-101-3

Price Rs 195/-

Published by
SAHITYA PRAKASHAN
DELHI-110006 (INDIA)

E-mail yogendrapalsahitya@yahoo com
Website www bookglacier com

मूल्य 195 रुपये मात्र / प्रथम सस्करण 2002
प्रकाशक साहित्य प्रकाशन, 1458, मालीवाडा, नई सडक, दिल्ली-110006
अक्षर मुद्राकन मानस टाइपसैटर, दरियागज, नई दिल्ली-110002
मुद्रक स्पीडोग्राफिक, 62-ए, साउथ अनारकली एक्स , दिल्ली-51
बृहत्तर भारत आर्यो का मूल   डॉ शिवानन्द नौटियाल

अनुक्रम

प्राक्कथन	7
बृहत्तर भारत आर्यो का मूल	25
पश्चिमी इतिहासकारो का द्वेषपूर्ण व्यवहार	32
भारतीय आर्यो के सबध मे बदलते विचार	34
मध्य एशियावाद दोषपूर्ण प्रमाणित	38
पश्चिमी विश्व मे आर्य सभ्यता के प्रमाण	40
अमेरिका मे भी आर्यो के उपनिवेश	41
ऋग्वेद काल से ही भारत का वर्चस्व	45
पश्चिमी एशिया मे आर्य देवता और भारतीय रथ	45
आर्यो का भारत से बाहर जाना	46
गूर्ने का महत्त्वपूर्ण विचार	47
सूर्यबिब का प्रतीक (भारतीय आर्यो का प्रभाव)	48
बेबीलोन मे भारतीय प्रतीक	49
देवपूजा के भारतीय रूप	50
फिलिस्तीन, सीरिया मे आर्य सामत	51
मिस्र मे हिस्सो शासन	54
आर्यो का मूल स्थान सप्त सिन्धु (सप्तसैधव)	59
ऋग्वैदिक सरस्वती	60
सरस्वती ही सिन्धु है	61
सप्त सिन्धु का देश पजाब या मध्य हिमालय	65
ऋग्वैदिक सरयू और गोमती	69
आर्यो के सप्तसिन्धु की जलवायु	72
सप्तसिन्धु उत्तराखड और कैलास-मानसरोवर का क्षेत्र	76
आर्यो का मूल निवास और जल प्लावन	76
जल प्लावन की गाथा	78
वैवस्वत मनु	80
आदि मनु स्वायम्भुव मनु	80
जल प्रलय	82
सृष्टि रचना और भारतीय वाडमय	84
मानव की उत्पत्ति का मूल स्थान भारत	85
ब्रह्मा ही सृष्टिकर्ता है	90
मरीचिपुत्र कश्यप की भूमिका	91

सुर और असुरो का द्वंद्व 94
आर्य शब्द की महत्ता 94
आर्यावर्त्त ही 'स्वर्ग' साम्राज्य 97
स्वर्ग का विस्तार और हिमालय 98
स्वर्ग की सीमा 99
स्वर्ग निवासी 100
स्वर्ग का अर्थ 104
नरक और उसका क्षेत्र 106
नरक का नामकरण 107
'स्वर्ग' के साम्राज्य में विद्रोह 112
सुर-असुर का भेद 112
पथ भ्रष्ट आर्य-असुर 113
देवासुर संग्राम का निर्णय 114
असुर सम्राट जरूथ और असुर राज्य 116
पश्चिमी विद्वानों का मत 117
पारसी धर्म में देवों के प्रति घृणा 118
हूणों का विद्रोह 122
आर्यो का दक्षिण पथ की ओर जाना 126
रामायण-महाभारत काल 127
पाणिनीकालीन भारत 128
तिलक का काल निर्णय 130
पाणिनी के बाद का बृहद भारत 132
बृहद् भारत का नया रूप 133
नंद वंश का राज्य 136
ईरान का आक्रमण 137
सिकन्दर का यूनानी आक्रमण 138
चन्द्रगुप्त मौर्य और मौर्य काल 140
बिन्दुसार का राज्य 143
अशोक महान 144
सातवाहन तथा शुंगयुग 147
शकों का भारत आना 150
सीता काठे का हिन्द 153
चीन और रोम के संबंध 156
पौराणिक धर्म का उदय 161
चातुर्वर्ण्य 164
कालिदास का भारत 166

प्राक्कथन

अब विश्व के अधिकाश विद्वान एव इतिहासकार यह मानने लगे है कि आर्यो का मूल स्थान आर्यावर्त्त ही है और यह भी स्वीकार करने लगे है कि आयावर्त्त मे जहा सप्त सिन्धु है—वही आय जाति का मूल स्थान है। अब तक के निष्कर्पो के आधार पर यह भी स्वीकार किया जाता रहा है कि आर्यावर्त्त का सप्तसिन्धु वाला अचल वनमान पजाब मे है। इस तर्क के पीछे अनेक इतिहासकारा ने पजाब की पॉच नदिया के साथ एक नदी "सिन्धु" का उल्लेख अवश्य किया है। इसी "सिन्धु" नदी को आधार मानकर अधिकाश विद्वानो ने पजाब अचल को ही आर्यो का मूलस्थान वाला "सप्तसिन्धु" (सप्त सेधव) मान लिया था। अविनाशचन्द्र दास, नारायण पावगी और डॉ सम्पूर्णानन्द जेसे प्रसिद्ध विद्वान भी पजाब अचल को ही "सप्तसिन्धु" प्रदेश स्वीकार करते है।

अब इस मान्यता को लेकर भी विवाद हो गया। कुछ भारतीय और विदेशी इतिहासकारो ने यह प्रश्न उठाया हे कि यदि ऋग्वेद को ही आधार मानकर यह निर्णय लेना है तो सम्पूर्ण ऋग्वेद का गहराइ से अध्ययन करने के पश्चात् 'सप्तसिन्धु" क्षेत्र की स्पष्ट पहचान कर लेनी चाहिये। ऐसे विद्वानो का तर्क था कि पहले पजाब के साथ "ऋग्वेदिक सप्त-सिन्धु की भोगोलिक, ऐतिहासिक, धार्मिक एव सामाजिक वास्तविकता को जान लेना चाहिये। इस पर दृष्टि डाले बिना पजाब को सप्तसिन्धु वाला क्षेत्र मानना उचित नही हे। इन विद्वानो का कहना था कि ऋग्वेदकालीन स्थितियो की पजाब से कुछ भी समानता नहीं मिलती।

स्वामी दयानन्द सरस्वती, प्रो बेनफे प्रो वेबर, श्री एटकिन्सन अलबेरुनी, श्री भगवददत्त, श्री जयचन्द्र विद्यालकार ओर श्री रामदास गौड के कथनो से जो ध्वनि निकलती है, उसके अनुसार आर्यो का आदि देश पजाब नही वरन् मध्य हिमालय मे गगा-सरस्वती के आसपास, और केलास मानसरोवर का क्षेत्र है। भौगोलिक तथ्यो ने इसी अचल का प्राचीन नाम हिमवन्त, स्वग, ब्रह्मावत्त, कैलास एव केदारखण्ड तथा वर्तमान नाम गढवाल अथवा उत्तराखड स्पष्ट किया हे। इसी अचल की सात महत्त्वपूण देव नदियो का उद्गम एव सधिस्थल होने के कारण "सप्तसिन्धु" भी कहा गया है।

वेदो के प्रकाड पडित स्वामी दयानन्द सरस्वती, एटकिन्सन और जयचन्द्र विद्यालकार

जैसे विद्वानो ने मध्य हिमालय (गढवाल कुमायूं) के कई मार्गो से ऋषिकेश से कैलास-मानसरोवर तक की यात्राये की और यह निर्णय लिया कि आर्यो का मूल निवास उत्तराखड (वर्तमान गढवाल और कुमायू) से लेकन वर्तमान तिब्बत के कैलास मानसरोवर तक का भूभाग होना चाहिये। इन विद्वानो ने ऋग्वेदिक स्थापनाओ का तुलनात्मक अध्ययन भी किया और यह निष्कर्ष निकाला कि समस्त उत्तराखड से लेकर कैलास-मानसरोवर वाला क्षेत्र, आदि मानव एव विभिन्न प्रकार की वनस्पतियो का जन्मदाता भी हे। यही आर्य जाति का मूल स्थान है।

परन्तु, विश्व के इतिहासकारो ने इस तर्क को मान्यता नही दी ओर यही मानते रहे कि आर्यो का मूल स्थान सप्तसिन्धु है और वह सप्तसिन्धु पजाब मे ही है। इस सदर्भ मे ऐसा निश्चय-सा हो गया था कि पजाब ही आर्यो का मूल स्थान है।

सप्तसिन्धु के सम्बन्ध मे नया मोड़

परन्तु, कुछ वर्ष पहले वेदो के व्याख्याता हरिराम धस्माना ने "वेदमाता" पुस्तक को लिखकर ऋग्वेद के विद्वानो को "सप्तसिन्धु" के क्षेत्र के विषय मे सोचने के लिए विवश कर दिया था। क्योकि ऋग्वैदिक विद्वान "हरिराम धस्माना" ने अनेक ऋग्वैदिक उद्धरणो द्वारा, आर्यो के आदि देश के सम्बन्ध मे एक नया रहस्योद्‌घाटन किया है। उनके कथनानुसार गढवाल की अलकनन्दा ही ऋग्वैदिक सिन्धु है, जिसमे सप्तसिन्धु (गढवाल की सप्त सरिताए सरस्वती, धौली, नदाकिनी, पिडर, नयार) सधि करती है तथा ऋग्वेद मे वर्णित अन्य 90 एव 99 नदियॉ एव धाराएँ भी इसी मे आकर मिलती है। उनके निष्कर्ष अधिक तर्कसगत और विचारणीय है। कैप्टेन शूरवीरसिह पवार ने भी अमृत बाजार पत्रिका मई, 1958 मे एक लेख लिखा था जिसमे उन्होंने अनेक भौगोलिक एव ऐतिहासिक वास्तविकताओ के आधार पर, कई भूगर्भविशेषज्ञो, पुरातत्त्वान्वेषियो एव इतिहासकारो के तर्क सगत प्रमाण प्रस्तुत करके वर्तमान उत्तराखड-गढवाल को ही आर्यो का मूल स्थान प्रमाणित किया है।

इसी क्रम मे विख्यात कवि, इतिहासकार एव विद्वान भजनसिह "सिह" ने "आर्यो का आदि निवास मध्य हिमालय" नामक पुस्तक की रचना कर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि आर्यो का मूल स्थान—उत्तराखड वाला क्षेत्र और वर्तमान तिब्बत का कैलास-मानसरोवर वाला अचल ही आर्यो का मूल स्थान है।

इसके बाद विद्वानो मे यह चर्चा होने लगी कि ऋग्वेद आदि भारतीय वाड्मय मे मध्य हिमालय का विशेष महत्त्व है। इसमे सदेह नही है कि आर्यो ने इस अचल को श्रद्धा की दृष्टि से देखा ही नही अपितु इसे देवभूमि, तपोभूमि, आदि नाम देकर-अत मे स्वर्गभूमि होने का गौरव प्रदान किया है।

इसीलिये यह आवश्यक हो गया है कि "सप्तसिन्धु" के विषय मे विस्तार से जानकारी प्राप्त की जाय। सबसे पहले "सरस्वती नदी" के सबध मे जानकारी प्राप्त करना इसीलिये अपेक्षित हो गया है कि इसी ऋग्वैदिक सरस्वती के मूल स्थान की स्पष्ट जानकारी आर्यो के मूल निवास की पहचान करवा सकती है।

ऋग्वैदिक सरस्वती

वैदिक साहित्य मे "सरस्वती" का आदर उत्तर वैदिक युग की गगा से भी अधिक जाना जाता था। ऋग्वेद के कई सूक्तो में 'ब्रह्मदेवता" के रूप मे "सरस्वती नदी का स्तवन" किया गया है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि सरस्वती नदी का तटवर्ती क्षेत्र-ऋग्वैदिक आर्यो की क्रीडाभूमि थी। परन्तु जिस देव नदी सरस्वती का ऋग्वैदिक काल की सप्तसिन्धुओ मे सर्वाधिक महत्व एव वर्णन है उसके भौगोलिक अस्तित्व का निर्णय नही हो पाया है।

ऋग्वेदो मे सरस्वती को सिन्धुमाता (सरस्वती, सत्यथी, सिन्धुमाता ऋग्वेद-7-36-6) माताओ मे श्रेष्ठमाता, नदियो मे श्रेष्ठ नदी, देवियो मे श्रेष्ठ देबी (अम्बित मे नदी से देवितये सरस्वती-ऋग्वेद 2-41-16) और ऋषियो द्वारा सेवित (सप्तस्वसा सुजुष्टा/सरस्वती सतोभ्या भूत्/ श 6-61-10) कहा गया है। इसी सरस्वती को सप्तसिन्धु मे जो जलराशि है-उस जलराशि की उत्पादिका और सम्पूण ज्ञान को जागृत (महो अर्प सरस्वती प्रचेतयति केतुना ऋग्वेद 1-3-12) करने वाली बताया गया है।

प्रश्न यही है कि ऐसी पवित्र नदी भारत मे कहा है और उसका स्वरूप क्या था ? इस सबध मे ऋग्वेद के उदाहरण द्वारा वस्तुस्थिति का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

"सरस्वती सूक्त" (अ 6/61) मे अनेक बार सरस्वती का नाम आया है, परन्तु किसी भी मत्र में सरस्वती के साथ सिन्धु का उल्लेख नहीं है, क्योंकि आगे चलकर सप्त सरिताओ के सयोग से स्वय सरस्वती ही सिन्धु बन जाती है। इसी सूक्त मे मत्र 12 की व्याख्या मे आचार्य सायण ने उसको त्रिलोकव्यायिनी गगा आदि सप्त सरिताओ से युक्ता कहकर, उसके साथ गगा को जो नाम दिया है वह अकारण नहीं है। उससे भी गगा के साथ सरस्वती की भौगौलिक एव आध्यात्मिक स्थिति स्पष्ट हो जाती है। इस प्रकार, प्राचीन आर्यो द्वारा सरस्वती जिस आध्यात्मिक स्थान पर प्रतिष्ठित थी, उनकी सन्तति द्वारा वह आज भी गगा जी के नाम से अपने उसी मूलस्थान पर प्रतिष्ठित है। ऋग्वेद के "कौशीतकी ब्राह्मण (7/6) मे वर्णन है कि उत्तरी भूभाग मे, वाणी को देवी सरस्वती का वास है। इसलिए सरस्वती के अध्ययन के लिए जो लोग वहा जाते है उनका उपदेश श्रद्धापूर्वक सुनते है। सरस्वती नदी का यह तटवर्ती भूभाग अष्ट वस्तुओ, सप्त ऋषियो का तपस्थान और वैवस्वत मनु का भी शरणस्थल था। इसीलिए आर्यो ने इस भूमि को "स्वर्ग" भी कहा है। देवनदी सरस्वती का यह पावन क्षेत्र प्राचीन आर्यो के अनेक यज्ञ-यागो की देवभूमि है।

ऋग्वेद (6/61/2) मे वर्णित है "नदी रूप मे प्रकट होकर सरस्वती ने अपनी वेगवती और विशाल तरगो से ऊँचे पर्वतो को इस प्रकार मग्न कर दिया है, जिस प्रकार जडो को खोदने वाले मिट्टी के ढेरों और टीलो को तोड डालते हैं। आओ ! हम रक्षा के लिए, स्तुति और यज्ञ द्वारा दोनो तटो का विनाश करने वाली इस सरस्वती की परिचर्या करे।" इसी सूक्त के मत्र 7 मे सरस्वती का भीषण (घोर) हिरण्मय रथ पर आरूढ और शत्रुघातिनी, मत्र 8 मे इसे अपरिमित, अकुटिल, दीप्त और अप्रतिहतगति, जलवर्षक—वेग एव प्रचड शब्द कर विचरने वाली (अमश्चरित सरस्वती) कहा गया है।

जैसे विद्वानो ने मध्य हिमालय (गढवाल कुमायूं) के कई मार्गो से ऋषिकेश से कैलास-मानसरोवर तक की यात्राये की और यह निर्णय लिया कि आर्यो का मूल निवास उत्तराखड (वर्तमान गढवाल और कुमायू) से लेकन वर्तमान तिब्बत के केलास मानसरोवर तक का भूभाग होना चाहिये। इन विद्वानो ने ऋग्वेदिक स्थापनाओ का तुलनात्मक अध्ययन भी किया और यह निष्कर्ष निकाला कि समस्त उत्तराखड से लेकर केलास-मानसरोवर वाला क्षेत्र, आदि मानव एव विभिन्न प्रकार की वनस्पतियो का जन्मदाता भी हे। यही आर्य जाति का मूल स्थान है।

परन्तु, विश्व के इतिहासकारो ने इस तर्क को मान्यता नही दी और यही मानते रहे कि आर्यो का मूल स्थान सप्तसिन्धु हे और वह सप्तसिन्धु पजाब मे ही है। इस सदर्भ में ऐसा निश्चय-सा हो गया था कि पजाब ही आर्यो का मूल स्थान है।

सप्तसिन्धु के सम्बन्ध मे नया मोड़

परन्तु, कुछ वर्ष पहले वेदो के व्याख्याता हरिराम धस्माना ने "वेदमाता" पुस्तक को लिखकर ऋग्वेद के विद्वानो को "सप्तसिन्धु" के क्षेत्र के विषय मे सोचने के लिए विवश कर दिया था। क्योकि ऋग्वैदिक विद्वान "हरिराम धस्माना" ने अनेक ऋग्वैदिक उद्धरणो द्वारा, आर्यो के आदि देश के सम्बन्ध मे एक नया रहस्योद्घाटन किया है। उनके कथनानुसार गढवाल की अलकनन्दा ही ऋग्वैदिक सिन्धु है, जिसमे सप्तसिन्धु (गढवाल की सप्त सरिताए सरस्वती, धौली, नदाकिनी, पिडर, नयार) सधि करती है तथा ऋग्वेद मे वर्णित अन्य 90 एव 99 नदियाँ एव धाराएँ भी इसी मे आकर मिलती है। उनके निष्कर्ष अधिक तर्कसगत और विचारणीय है। कैप्टेन शूरवीरसिह पवार ने भी अमृत बाजार पत्रिका मई, 1958 मे एक लेख लिखा था जिसमे उन्होंने अनेक भौगोलिक एव ऐतिहासिक वास्तविकताओ के आधार पर, कई भूगर्भविशेषज्ञो, पुरातत्त्वान्वेषियो एव इतिहासकारो के तर्क सगत प्रमाण प्रस्तुत करके वर्तमान उत्तराखड-गढवाल को ही आर्यो का मूल स्थान प्रमाणित किया है।

इसी क्रम मे विख्यात कवि, इतिहासकार एव विद्वान भजनसिह "सिह" ने "आर्यो का आदि निवास मध्य हिमालय" नामक पुस्तक की रचना कर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि आर्यो का मूल स्थान–उत्तराखड वाला क्षेत्र और वर्तमान तिब्बत का केलास-मानसरोवर वाला अचल ही आर्यो का मूल स्थान है।

इसके बाद विद्वाना मे यह चर्चा होने लगी कि ऋग्वेद आदि भारतीय वाङ्मय मे मध्य हिमालय का विशेष महत्त्व है। इसमे सदेह नही है कि आर्यो ने इस अचल को श्रद्धा की दृष्टि से देखा ही नही अपितु इसे देवभूमि, तपोभूमि, आदि नाम देकर-अत मे स्वर्गभूमि होने का गौरव प्रदान किया है।

इसीलिये यह आवश्यक हो गया है कि "सप्तसिन्धु" के विषय मे विस्तार से जानकारी प्राप्त की जाय। सबसे पहले "सरस्वती नदी" के सबध मे जानकारी प्राप्त करना इसीलिये अपेक्षित हो गया है कि इसी ऋग्वैदिक सरस्वती के मूल स्थान की स्पष्ट जानकारी आर्यो के मूल निवास की पहचान करवा सकती है।

ऋग्वैदिक सरस्वती

वैदिक साहित्य मे "सरस्वती" का आदर उत्तर वैदिक युग की गगा से भी अधिक जाना जाता था। ऋग्वेद के कई सूक्तो मे 'ब्रह्मदेवता" के रूप मे "सरस्वती नदी को स्तवन" किया गया है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि सरस्वती नदी का तटवर्ती क्षेत्र-ऋग्वैदिक आर्यो की क्रीडाभूमि थी। परन्तु जिस देव नदी सरस्वती का ऋग्वैदिक काल की सप्तसिन्धुओ मे सर्वाधिक महत्व एव वर्णन है उसके भौगोलिक अस्तित्व का निर्णय नहीं हो पाया हे।

ऋग्वेदो मे सरस्वती को सिन्धुमाता (सरस्वती, सत्पथी, सिन्धुमाता ऋग्वेद-7-36-6) माताओ मे श्रेष्ठमाता, नदियो मे श्रेष्ठ नदी, देवियो मे श्रेष्ठ देबी (अम्बित मे नदी से देवितये सरस्वती-ऋग्वेद 2-41-16) और ऋषियो द्वारा सेवित (सप्तस्वसा सुजुष्टा/सरस्वती सतोभ्या भूत्/ श 6-61-10) कहा गया है। इसी सरस्वती को सप्तसिन्धु मे जो जलराशि है-उस जलराशि की उत्पादिका और सम्पूण ज्ञान को जागृत (महो अर्प सरस्वती प्रचेतयति केतुना ऋग्वेद 1-3-12) करने वाली बताया गया है।

प्रश्न यही है कि ऐसी पवित्र नदी भारत मे कहा है और उसका स्वरूप क्या था ? इस सबध मे ऋग्वेद के उदाहरण द्वारा वस्तुस्थिति का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

"सरस्वती सूक्त" (अ 6/61) मे अनेक बार सरस्वती का नाम आया है, परन्तु किसी भी मत्र मे सरस्वती के साथ सिन्धु का उल्लेख नहीं है, क्योकि आगे चलकर सप्त सरिताओ के सयोग से स्वय सरस्वती ही सिन्धु बन जाती है। इसी सूक्त मे मत्र 12 की व्याख्या मे आचार्य सायण ने उसको त्रिलोकव्यायिनी गगा आदि सप्त सरिताओ से युक्ता कहकर, उसके साथ गगा को जो नाम दिया है वह अकारण नहीं है। उससे भी गगा के साथ सरस्वती की भौगौलिक एव आध्यात्मिक स्थिति स्पष्ट हो जाती है। इस प्रकार, प्राचीन आर्यो द्वारा सरस्वती जिस आध्यात्मिक स्थान पर प्रतिष्ठित थी, उनकी सन्तति द्वारा वह आज भी गगा जी के नाम से अपने उसी मूलस्थान पर प्रतिष्ठित है। ऋग्वेद के "कौशीतकी ब्राह्मण (7/6) मे वर्णन है कि उत्तरी भूभाग मे, वाणी को देवी सरस्वती का वास है। इसलिए सरस्वती के अध्ययन के लिए जो लोग वहा जाते है उनका उपदेश श्रद्धापूर्वक सुनते है। सरस्वती नदी का यह तटवर्ती भूभाग अष्ट वस्तुओ, सप्त ऋषियो का तपस्थान और वैवस्वत मनु का भी शरणस्थल था। इसीलिए आर्यो ने इस भूमि को "स्वर्ग" भी कहा है। देवनदी सरस्वती का यह पावन क्षेत्र प्राचीन आर्यो के अनेक यज्ञ-यागो की देवभूमि है।

ऋग्वेद (6/61/2) मे वर्णित है "नदी रूप मे प्रकट होकर सरस्वती ने अपनी वेगवती और विशाल तरगो से ऊँचे पर्वतो को इस प्रकार मग्न कर दिया है, जिस प्रकार जडो को खोदने वाले मिट्टी के ढेरो और टीलो को तोड डालते है। आओ ! हम रक्षा के लिए, स्तुति और यज्ञ द्वारा दोनो तटो का विनाश करने वाली इस सरस्वती की परिचर्या करे।" इसी सूक्त के मत्र 7 मे सरस्वती का भीषण (घोर) हिरण्मय रथ पर आरूढ और शत्रुघातिनी, मत्र 8 मे इसे अपरिमित, अकुटिल, दीप्त और अप्रतिहतगति, जलवर्षक—वेग एव प्रचड शब्द कर विचरने वाली (अमश्चरित सरस्वती) कहा गया है।

सरस्वती ही सिन्धु है

ऋग्वेद मे जल का विशेष महत्त्व है। इसीलिये ऋग्वेद मे कहा गया है कि जल से भरी हुइ नदिया मेरी रक्षा करे (अवनुमा सिन्धुव पिन्वमाना अ० 6,52,4) इस प्रार्थना के बाद "सरस्वती" से प्राथना की गई है फि हे "सरस्वती" तुम नदियो फे जल से पूर्णत भरी गइ हो (सरस्वती सिन्धुभि पिन्वमाना, ऋ -6,52,6)

सरस्वती के सदभ मे "सिन्धुभि" का वही अर्थ है जो "सिन्धव" का अर्थ हे। अर्थात् सरम्वती मे सभी नदियो के जल भर जाने से उसका नाम "सिन्धु" पड गया। ग्रिफिथ ने ऋग्वेद की इस रचना का अनुवाद इस प्रकार किया हे

सहायक नदियों के जल से समृद्ध होने वाली सरस्वती हे—ओर इसीलिए उसका नाम "सिन्धु" भी ह। ऐसी विशेषताओ वाली सरस्वती नदी का अस्तित्व समतल पजाब, राजपूताना, कुरूक्षेत्र तथा प्रयागराज मे स्थापित करना पूर्णत उपहासास्पद लगता है।

सप्नसिन्धु क्षेत्र मे सरस्वती को सिन्धु कहा गया है, उसका यह स्थान देवकृत है। ऋग्वेद (3,33,4) मे यही लिखा हैं "अनु योनि देवकृत चरन्ती"

उत्तुग हिमालय से चलकर समुद्र तक पहुँचने वाली इस पवित्र नदी सरस्वती ने चन्द्रवशीय राजा नहुष की प्राथना को सुनकर सहस्रो वर्षो के लिये घी ओर दूध की व्यवस्था कर दी थी। ऋग्वेद (7,75,2) मे इस प्रकार वणन है

एकाचेतत्सरस्वती नदीना शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात्।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृत पयो दुदुहे नाहुषाय।।

जहा हेमवन्त और शिशिर की एक जेसी ऋतु होती हे—वही सरस्वती का पावन क्षेत्र है। यह वही क्षेत्र हे जहाँ माथव विदेव ओर उसके पुरोहित रहूगण गोतम ने सबसे पहले अग्नि प्रज्वलित की थी। इसका विवरण ऐत, ब्राह्मण (11,1,15,26,2) मे दिया हुआ है

पचतबो हेमन्त शिशरयो समासने तावान सवत्सर ।

"महाभारत" (शल्यपर्व) में भी सप्तसरस्वती का उल्लेख है, जिनमे दो विशाला और विमलोदका हिमालय की उपत्यकाओं मे बहती है। विशाला के निकट बहने वाली यही सरस्वती हे। "महाभारत" में ही बदरिकाश्रम मे सरस्वती के तट पर भगवान कृष्ण द्वारा बारह हजार वर्ष तक कठिन तपस्या करने का उल्लेख है। महाभारत आरण्यकपर्व के अनुसार, उत्तर दिशा मे वर्णित यमुना नदी के साथ सरस्वती का उल्लेख है

सरस्वती पुण्यवहा हृदिनी धममालिनी।
समुद्रगा महावेगा यमुनायत्र पाडवा।।
तत्रैव भरतो राजा चक्रवर्ती महाशया (8812)
सरस्वती नदी सद्मि सतत पार्थ पूजिता।। (8819)

इसी प्रकार "महाभारत" (वन०111/10-11 तथा 161/43,51) के अनुसार, कैलास

मे गन्धमादन पवत पर सरस्वती का अभिषेक किया था शल्यपर्व (27/28,31 मे स्पष्टत इसी सरस्वती के तट पर कुबेर द्वारा कुबेरतीर्थ मे देवत्व प्राप्त करने का उल्लेख है। भीष्मपर्व (6128,50) मे लिखा है कि ब्रह्मलोक से उतरकर त्रिपथगामिनी गगा सान धाराओ (सप्तसिन्धुओं) मे विभक्त हुई। इन सातो मे सिन्धु और अलकनदा व सरस्वती सम्मिलित है। "महाभारत" (आदि 19/19,21 और भीष्म, 6/48) मे वर्णित है कि सरस्वती गगा की सात धाराओ मे मुख्यधारा है, जिसका जल पीने से पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। भीष्मपर्व (9/14) के अनुसार सरस्वती उन पवित्र देवनदियो मे एक है, जिनका पवित्र जल भारतवासी पीते है। यह स्पष्ट है कि भारतवासी गगा-जल पीते हैं, जिसकी मूल धाग स्वय सरस्वती नदी है। प्रयागराज मे, कुरूक्षेत्र मे तथा राजपूताना की भूमि मे सरस्वती नदी का जल, जो इतिहासकारो को अब तक दिखायी ही न दिया, वहा के जल को पवित्र समझकर भारतवासी नही पीते। सरस्वती ब्रह्मसर मे प्रकट होती है (शल्यपर्व 42/29)। सरस्वती और अलकनदा के सगम केशवप्रयाग म देवता भगवान् केशव की उपासना करते ह (वनपर्व 82/125,127)। अलकापुरी के अतगर्त मानसरोवर और सरस्वती नदी मे विहार करते हुए पुरूरवा ने उवशी के साथ सहस्रो वष व्यतीत किये थे। इससे भी अलकापुरी के निकट सरस्वती की स्थिति स्पष्ट होती है

सहत्व साव निपतिरलकाया चेत्ररथादि वनेष्वमल
पदमखडेषु मानसादि सरस्वती रमणी येषु रममाण
षष्टिवर्ष सहस्रत्राणयनुदिन प्रवर्द्धमान प्रमादो अ नयम

विष्णु पुराण 4/6/48

ऋग्वैदिक सरस्वती की इस भौगोलिक स्थिति को पूर्णत स्पष्ट करने के लिए अन्त मे कृष्णद्वैपायन वेदव्यास का प्रमाण देना पयाप्त है। वेदव्यास प्रसिद्ध "व्यासगुफा" मे बेठकर "महाभारत" जयकाव्य का आरम्भ करते हुए, इस क्षेत्र के मुख्य अधिष्ठाताओ-ऋषि नर-नारायण एव अतिनिकट बहती हुई पुण्यक्तोया सरस्वती को सर्वप्रथम नमस्कार करते है

नारायण नमस्कृत्य नरचैव नरोतमम्।
देवी सरस्वती व्यास तते जयमुदी रयेत।।

इन तथ्यो का स्पष्ट अर्थ यह है कि सरस्वती वेदो की मुख्य नदी है और अलकनन्दा उसकी सहायक नदी है। आज दोनो मिलकर गगा कहलाती है। इसीलिए ऋग्वेद मे, सबसे अधिक बार सरस्वती का उल्लेख किया गया है और गगा का अल्प, क्योकि सबकी माता, शीर्षस्थान से बहने वाली मूलधारा सरस्वती है और उसी मे अलकनदा-गगा आदि सप्त सरिताओ का जल विलीन होता है।

आधुनिक प्रमाण

ऋग्वैदिक सरस्वती के भोगोलिक अस्तित्व तथा उनके सप्तसिन्धुओ मे श्रेष्ठतम एव

प्रथम होने की पुष्टि मे हम सरस्वती के अन्वेषको का ध्यान महापडित राहुलसाकृत्यायन—रचित "हिमालय परिचय (1) की ओर भी आकर्षित करते है। राहुल जी स्वय सरस्वती के तट पर उपस्थित होकर लिखते है "माणा गाव के आगे सरस्वती (अलकनदा की बडी शाखा) पर एक बडी चट्टान पुल की तरह पडी हुई है। लोगो ने उसका नाम "भीमसेन का पुल" रख लिया है। एक ऐसा ही पुल कुछ दूर आगे भी है। तिब्बत का रास्ता सरस्वती के किनारे-किनारे जाता है। सरस्वती के उस पार तिब्बत का हूषदेश है" (पृ 479) राहुल जी के इस कथन से जहा सरस्वती की प्रखरता एव गगा आदि सप्तसिन्धुओ की सबसे ऊपरी धारा होने की पुष्टि होती है, वहा उससे मनु के इस कथन की भी प्रामाणिकता सिद्ध हो जाती है कि सरस्वती के उस पार म्लेच्छो का देश है। (म्लेच्छदेशतत पर) ऋग्वैदिक सरस्वती को आज भी सरस्वती कहते है और वह आज गगा नाम से विख्यात है। ऋग्वैदिक सरस्वती की विवादास्पद स्थिति को राहुल जी ने और भी स्पष्ट करने के लिए लिखा है— "यदि किसी नदी की मुख्य शाखा वही हो सकती है, जो सबसे अधिक लम्बी हो ओर जिसमे पानी अधिक आता हो, तो इसमें संदेह नहीं, कि हमारी गगा का मुख्य धारा अलकनदा नहीं बल्कि सरस्वती को ही मुख्यधारा मानना पडेगा, जो कि माना सुमेरू के शिखर डाडे से आती हैं (पृ० 466)। राहुल जी ने सरस्वती की भौगोलिक स्थिति के सबध मे अपने दूसरे ग्रन्थ कुमायू (पृष्ठ 26) मे भी यही उद्‌गार प्रकट किए है। एक पुर्तगाली पादरी अद्रादे भी, जो सन् 1624 में माणा होकर तिब्बत गया था, सरस्वती को ही गगा का मूल स्रोत मानता है।

सरस्वती (सिन्धु) का स्थान गगा ने लिया

ऐसा प्रतीत होता है कि पुराण काल मे गगा का महत्त्व अधिक बढ गया और सरस्वती का उतना आदर नहीं रह पाया। इसीलिये मुख्य नदी सरस्वती का स्थान गगा ने ले लिया। ऋग्वेद आदि ग्रन्थो में सरस्वती का जितना गुणगान किया गया है—कालान्तर मे वह सारा यशगान गगा के नाम से होने लगा। क्योंकि यह तथ्य पूर्णत समेटने के कारण सरस्वती का नाम "सिन्धु" पड गया था जो सिन्धु नाम कालातर में सम्पूर्ण गगा को मिला। पौराणिक काल में गगा का महत्त्व इतना बढ गया कि सिन्धु नाम भी उसका गौण हो गया और "गगा" ही उसका पवित्र-पावनी स्वरूप बन गया। हमारा यह मानना है कि पहले अलकनदा ही सरस्वती की मुख्यधारा थीं। केशव प्रयाग में सरस्वती की भेट अलकनदा से हुई। सरस्वती अपने साथ विष्णु प्रयाग में धव (धौली) गगा को साथ लेकर नदप्रयाग मे नदाकिनी और कर्णप्रयाग मे पिंडर से भेट कर आगे बढ जाती है। रूद्रप्रयाग मे सरस्वती की भेट केदार भूमि की प्रसिद्ध नदी मदाकिनी से होती है।

तब तक सरस्वती ही सिन्धु थी। पौराणिक साहित्य मे स्पष्ट उल्लेख है कि सगर के पुत्रो की मृत आत्माओ को मुक्ति दिलाने हेतु राजा भागीरथ स्वर्ग से गगा को उतारकर मृत्युलोक मे लाये था वही धाग "भागीरथी" गोमुख से गगोत्तरी होकर टिहरी में भिलगना के जल को साथ लेकर देवप्रयाग में सरस्वती नामक सिन्धु से सगम बना लेती है और आगे

चलकर व्यासघाट मे नयार नदी भी इस धारा मे मिल जाती है।

परन्तु, पौराणिक काल के बदलते हुये वातावरण ने सरस्वती से अधिक अलकनदा को महत्त्व देना शुरू किया और गगा को सारा श्रेय देकर उस प्राचीन अर्थात् ऋग्वैदिक सरस्वती को महत्त्वहीन बना दिया। तब से अलकनदा और भागीरथी के सगम देवप्रयाग से गगा का स्वरूप निर्धारित किया गया। वास्तविकता यही है कि पुराणकाल से पहले सरस्वती ही प्रमुख नदी थी। जल प्रलय के बाद आर्यो ने इस समस्त क्षेत्र को स्वर्गभूमि घोषित कर दिया। इसलिये गगा—आर्यो को मुक्तिदाता नदी बन गई।

इस तमाम तथ्यो के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि ऋग्वैदिक सरस्वती आज भी बदरिकाश्रम के निकट के केशवप्रयाग मे बडे वेग से अलकनदा से सगम करती है और वही "सरस्वती" मे अलकनदा का महत्त्व बढाती हुई अत मे गगा बन जाती है।

सप्तसिन्धु का देश पजाब या मध्य हिमालय

अभी तक अधिकाश इतिहासकार और प्राचीन साहित्य के मर्मज्ञ यहीं मानते है कि आर्यो का सप्तसिन्धु वाला प्रदेश—पजाब है। परन्तु गहराई से अध्ययन करने के पश्चात् यह स्पष्ट आभास हो जाता है कि ऋग्वेद वाला सप्त सैंधव पजाब मे न होकर हिमालय के मध्यभाग मे स्थित था और उसका क्षेत्र वर्तमान गढवाल, कुमायू से लेकर कैलास—मानसरोवर तक फैला हुआ था। भजन सिह "सिंह" द्वारा लिखित "आर्यो का आदि निवास मध्य हिमालय" के पृष्ठ 86 से सप्तसिन्धु देश के विषय में उनके जो विचार है—उन्हे हम अक्षरश उद्धृत करते हुये—उनका आभार मानते है

ऋग्वेद (10/75/5,6) मे सप्तसिन्धु देश की गगा—यमुना—सरस्वती का सर्वप्रथम उल्लेख हुआ है और उनके बाद अन्य नदियो का। इससे सिद्ध होता है कि आर्यो के आदि देश मे गगा—यमुना—सरस्वती ही महत्त्वपूर्ण नदियॉ थीं, और उन्ही के प्रवाह—क्षेत्रान्तर्गत आर्यो का आदि देश सप्तसिन्धु था।

आर्यो के आदि देश सप्तसिन्धु में सप्त प्रमुख नदियों के अतिरिक्त त्रिसप्त, नवति (90) और नवनवति (99) नदियॉ भी बहती थीं। "सिन्धु" शब्द का निर्वचन "निसक्त" खड 26 मे तीव्रगामी से है (सिन्धु स्पन्दनात्) यह नदी जाति के लिए अत्यन्त प्राचीन योगरूढ शब्द है। निरूक्तकाल मे "सिन्धु" शब्द तीव्र प्रवाह के कारण पर्वत—प्रदेशो मे प्रवाहित प्रत्येक नदी के लिए प्रयुक्त होता था।

सिन्धु नदी और समुद्र मे अनेक नदियॉ सधि करती हैं। इस कारण सिन्धु नदी और समुद्र सिन्धु के पर्याय है। सप्तसिन्धु से भी स्पष्टत सात नदियो का बोध होता है, किसी सिन्धु नाम की विशेष नदी का नही। इसी प्रकार जहा सात सरिताओ की जल राशि एकत्र हो, उस देश का नाम सप्तसिन्धु है। पजाब पचनद अर्थात् पाच नदियो का क्षेत्र है। वहा सिन्धु के अतिरिक्त रावी, चिनाव, झेलम, व्यास और सतलज बहती है, परन्तु आज वहा सिन्धु के अतिरिक्त इन नदियो मे से किसी का वैदिक नाम प्रचलित नहीं है। जब सप्त-सिन्धु की छ नदिया परूष्णी, शुतुद्री, विपाशा, असिक्नी और वितस्ता पजाब मे अपने वैदिक

नाम से प्रचलित नही है तो वे पजाब की वर्तमान सतलज, व्यास, चिनाव और झेलम है, इस तथ्य मे भी सन्देह है। वहा केवल सिन्धु का ही नाम अपरिवर्तित रहा है, यह धारणा युक्ति युक्त नही है। यदि वितप्ता, अतिविन, विपाशा, परूष्णी और शुतुद्री पजाब की वतमान नदी हैं, जिनका उल्लेख आर्यऋषियो द्वारा ऋग्वेद मे गगा, यमुना, सरस्वती के पश्चात् हुआ है, तो उससे यह भी प्रमाणित होता है कि आर्य लोग पूर्व से, गगा-यमुना के देश से पश्चिम की ओर बसते गये हैं, न कि पश्चिम देशो से पूर्व की ओर आकर बसे है। आज नही ईसा से तीन सौ वर्ष पूर्व सम्राट चन्द्रगुप्त के युग मे भी उनका वैदिक नाम प्रचलित नही था। यूनानियो ने रावी को "हाइड्राटीज" और व्यास को "हिफानिस" लिखा है। स्वय लोक मान्य तिलक को भी पजाब के सप्तसिन्धु होने मे सन्देह हुआ था। इसीलिए उन्होने अपनी पुस्तक "आर्कटिक होम इन द वैदाज" के पृष्ठ 230 पर लिखा है

"पजाब, पाच नदियो का देश है, सात का नहीं। इन सरिताओ मे कोई समान गुणो और नाम वाली दो सहायक नदियों को अपनी इच्छानुसार जोड लेने से हम इनकी सख्या यद्यपि सात सरिताओ तक बढा कर ले जा सकेगे।" और ऐसे बलपूर्वक नदियों की सख्या बढाने मे मैक्समूलर का नाम सबसे ऊपर है। उनका समर्थन पुसालकर महोदय ने भी किया है। "दि वैदिक एज" पृष्ठ 248 पर पुसालकर ने पजाब की पाच नदियों के साथ सिन्धु और सरस्वती नदियो को भी जोडकर सप्तसिन्धु क्षेत्र घोषित कर दिया। परन्तु आर्यो के आदि देश पजाब वाली स्थापना तर्कसगत नहीं है क्योंकि पजाब मे "सिन्धु नदी" के नाम से ही इतिहासकार ऋग्वैदिक आर्यो के मूलस्थान के सबध मे अनेक निराधार कल्पनाओ के चक्कर मे पड गये। तिलक सप्तसिन्धु की नदियो को देवनदियो की सज्ञा देते है। परन्तु न तो पजाब की ओर न उत्तरी ध्रुव की नदियॉ देवनदियो की भॉति पूज्य एव प्रतिष्ठित रही है और न ही कभी भारतीय वाडमय मे पजाब या उत्तरी ध्रुव की नदियो को देवनदी कहा गया है। इसलिये यह तर्क भी गले से नहीं उतरता।

पजाब सप्तसिन्धु के समर्थक इतिहासकार स्वय पजाब मे, सप्त सरिताओ के अतिरिक्त, वहा 21, 90 तथा 99 अन्य नदियों के भौगोलिक अस्तित्व का स्पष्टीकरण देने मे असमर्थ रहे हैं। सिन्धु नदी के कारण पजाब प्रान्त पर ही केन्द्रित रहने के कारण उन्होने ऋग्वेद मे वर्णित अन्य सब तथ्यो की खोज मे पजाब से बाहर अन्यत्र जाने का प्रयास नहीं किया। इससे यह भी स्पष्ट है कि उन्होने केवल अनुमानो के आधार पर कुछ मिलते-जुलते नामो को लेकर पजाब मे ही सप्तसिन्धु की कल्पना कर डाली है।

ऋग्वेद मे यह स्पष्ट है कि उक्त सब सरिताए हिमाच्छादित पर्वतीय प्रदेश मे बहती थीं ओर वे सब, विशेषत सप्तसरिताए, पर्वतीय अचल मे ही सिन्धु नदी मे सधि करती थी अर्थात् इन सबके सन्धि स्थल पजाब की भॉति समभूमि मे ही नही, वरन् पर्वत प्रदेश में थे, जिसका नाम सप्तसिन्धु था। गढवाल का यह हिमाच्छादित पर्वत प्रदेश नदियो का देश है। इतिहासकारो द्वारा जिन्हें आर्यावर्त्त मे 99 ऋग्वैदिक नदिया प्राप्त नही हुई, वे अलकनदा (सिन्धु) मे सिन्धु करने वाली सप्तसिन्धु की उन सात देवनदियो के अतिरिक्त यत्र-तत्र प्रवाहित शेष 90 एव 99 ऋग्वैदिक नदियो का उत्तराखड के गढवाल अचल मे

आकर प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं। आर्यो की इन्हीं देवनदियों के पवित्र सगमस्थलों पर प्राचीनकाल से अनेक वेदमत्र पाच प्रयागों की स्थापना की पुष्टि करते हैं। पजाब की नदियो के सगमो पर, वेद–प्रतिपादित आर्य जाति के ऐसे तीथस्थानों का सर्वथा अभाव है। इस बात से यह सिद्ध हो जाता हे कि जब पजाब के किसी भी सगम में कोई तीर्थ नहीं है तो वहा की ऐतिहासिक प्राचीनता को अप्रमाणित कर देते हैं।

किसी बात का बार-बार वणन उसकी लोकप्रियता का परिचायक है। ऋग्वेद में सबसे अधिक बार जिस नदी का वर्णन आया है, वही नदी सरस्वती है। परन्तु पजाब में उसका भी भौगोलिक अस्तित्व आज नहीं है। इतिहासकारो द्वारा उसकी प्राचीन भौगोलिक स्थिति की कल्पना, पजाब मे सप्तसिन्धु की स्थापना के समर्थन मे केवल अनुमान मात्र है। सरस्वती के पश्चात् क्रमानुसार सिन्धु गगा (सायण की गणनानुसार) सरयू (कुमायूँ की नदी जो गढवाल के तटवर्ती क्षेत्र से निकलती है) परूष्णी, यमुना, गोमती, अशुमती और विपाशा है। इन नौ नदियो मे सिन्धु परूष्णी (रावी) और विपाशा (व्याप्त) पजाब मे बतलायी जाती हैं। यदि पजाब सप्तसिन्धु होता तो ऋग्वेद मे पजाब की, आर्जिकीया शुतुद्री (सतलज) असिक्नी, सरस्वती, गगा, सरयू, यमुना, गोमती और अशुमती आदि से प्रथम एव अधिक बार उल्लेख हुआ होता है। यदि केवल परूष्णी और विपाशा भी जिनका ऋग्वेद में सरस्वती, गगा और सरयू से कम होते हुए भी क्रमश॰ चार और तीन बार उल्लेख हुआ है, अपने वैदिक नाम से पजाब में प्रसिद्ध होती तो वहा की सिन्धु नदी को भी वैदिक सिन्धु घोषित करने में कोई आपत्ति नही थी। शुतुद्री (सतलज) और असिक्नी (चिनाव) का दो बार और वितस्ता (झेलम) का तो केवल एक बार ही नाम आया है। आर्यो ने जिस देश की नदियों का इतना कम वणन किया हो, उसको आर्यो का आदि देश घोषित करना युक्तियुक्त नहीं है।

ऋग्वेद (5/53/9) मे मरूतों के देश मे रसा, अनितभा, कुमा, कुसु, सिन्धु और जलमयी सरयू का उल्लेख है। पजाब की सिन्धु के साथ इन नदियो का ऐतिहासिक अस्तित्व नहीं है। जो सरयू नदी जलमयी विशेषण से प्रतिष्ठित की गयी है, वह साधारण नदी नहीं है। उसका पजाब प्रान्त मे भौगोलिक अस्तित्व ही नहीं है। फारसी धर्मग्रन्थो मे भी सिन्धु के साथ सरस्वती (हरहवती) और सरयू (हरैयू) का उल्लेख है, परन्तु शुतुद्री असिक्नी और वितस्ता का नहीं है। ऋग्वेद (10/44/7) मे भी सिन्धु से पूर्व सरस्वती के साथ धृत और वृहद सहित त्वरापूर्वक बहती हुई, बडी नदियो के साथ जिस सरयू का उल्लेख हुआ है उसका भी पजाब मे सर्वथा अभाव है, बल्कि सरयू वहा की नदी है ही नहीं।

ऋग्वेद (3/33/1,2/3/5) से प्रभावित होता है कि विश्वामित्र सरस्वती नदी आगे सिन्धु के देश को गये थे। वे विपाशा और शुतुद्री (अ 3/33/1) के सगम पर पहुँचे। उनको पार कर उन्होने सिन्धु को पार करने का प्रयत्न किया। यदि शुतुद्री पजाब की सतलज और विपाशा व्यास है तो सिन्धु तक पहुँचने से पूर्व, उसमे रावी, चिनाव और झेलम आदि नदियो को पार करने का वर्णन अवश्य हुआ होता। इसीलिए सायण ने यहा पर सिन्धु का अर्थ समर्थन मात्र है पजाब की सिन्धु नदी नहीं किया है। सप्तसिन्धु मे सिन्धु, सरस्वती और रसा के साथ सरयू का भी नाम है। इस नामकी नदियॉ इतिहासकारो को पजाब-प्रात

मे नही मिलती। डॉ भूर के मतानुसार अतितमा, रसा और श्वेता सिन्धु की नदिया है। इस प्रकार पजाब मे सिन्धु के अतिरिक्त सरस्वती, सरयू और गोमती का अस्तित्व भर अप्रामाणिक है। इसीलिए तिलक पॉच नदियो के देश पजाब को सप्तसिन्धु देश बनाने के लिए, इसमे दो और नदियो का नाम जोडने की युक्ति को कृत्रिम युक्ति कहते है। इतना ही नहीं, तिलक सप्तसिन्धु की सरिताओ को स्वर्ग-नदिया मानते है, जिसका साराश यह है कि सप्तसिन्धु की सप्त सरिताओ के प्रति आर्यो का महत् भक्तिभाव था। परन्तु इस प्रकार की भक्तिभाव वाली नदियो का पजाब की पाच नदियो मे भी कोई स्थान नही है जबकि उत्तराखड की सभी नदियो को देवनदी कहा गया है। भाष्यकार महीधर ने भी (ऋ 8/6/28) गगा के सगमस्थलो पर मेधावी आर्य विप्रो की उत्पत्ति बतलाया है।

ऋग्वेद मे जिन बारह स्थानो पर सप्त सरिताओ का वर्णन आता है उन सब मे सायण ने केवल गगा आदि सात नदिया लिखकर गगा के अतिरिक्त किसी अन्य नदी का नाम नहीं दिया है। ऋग्वेद (6/61/12) मे सरस्वती को गगा आदि सप्त सरिताओ से सयुक्त नदी कहा गया है। सरस्वती नदी के साथ केवल गगा आदि सात नदियो का उल्लेख है (ऋ० 5/42/12), गगा के अतिरिक्त अन्य नदियो का उल्लेख नहीं है। सायण ने मातृरूप गगा आदि सात नदियों का नाम लिखकर गगा को अन्य नदियो से अधिक आदर प्रदान किया है (ऋ०) 9/85/1) बाल खिल्य सूक्त (6/4) मे सरस्वती और गगा आदि सात नदियो का ही उल्लेख है। अन्य किसी नदी का, सिन्धु तक का भी उल्लेख नहीं किया है। ऋग्वेद (10/43/3) मे गगा आदि सात नदियो को कृषि की वृद्धि करने वाली कहा गया है। वहा (ऋ, 10/104/8) स्पष्ट कहा है कि "हे इन्द्र ! रमणीय और अमित गति वाली गगा आदि सात नदियों के द्वारा तुमने शत्रुपुरियो को नष्ट करके सिन्धु को सिन्धु से तात्पर्य पहले सरस्वती फिर गगा (बढाया) तुमने मनुष्यो के उपकार के लिए 99 नदियो का भी मार्ग प्रशस्त किया। "इस सूक्त मे भी गगा के अतिरिक्त सायण ने अन्य नदियो का उल्लेख न करके गगा को ही प्रमुखता दी है। यही नहीं, इस मत्र मे गगा आदि सात नदियो के द्वारा, सिन्धु के बढाये जाने के उल्लेख से यह भी प्रमाणित होता है कि गगा आदि सात सरिताए सिन्धु में ही संधि करती थीं। इस दृष्टि से भी वह सिन्धु पजाब की सिन्धु नदी नही वरन् मध्य हिमालय क्षेत्र की अलकनदा है। जो कालातर मे गगा नाम से विख्यात हुई है। इसी क्षेत्र में जो अन्य 99 नदियो का वर्णन है, उससे भी स्पष्ट है कि आर्यो का आदि देश नदियो का देश था। इसमे गगा आदि सात प्रमुख नदियो के साथ 99 नदिया भी बहती थी और यह भौगोलिक तथ्य पजाब नहीं वरन् पूर्णत उत्तराखड के सम्पूर्ण अचल और अधिकाश रूप में वर्तमान गढवाल पर घटित होता है।

ऋग्वेद के "नदी सूक्त" (10/75) मे सिन्धु के स्तवन के तुरन्त बाद (सरस्वती, शुतुद्री, परूष्णी, असिक्नी, मरूद्वृधा, वितस्ता, सुषोमा और आर्जिकीया से पूर्व) गगा और यमुना का नाम आता है और यह कादपि अकारण नहीं है। यदि शुतुद्री, परूष्णी, असिक्नी, वितस्ता ओर आर्जिकीया पजाब की रावी चिनाव, व्यास आदि वर्तमान नदिया है तो गगा, जुमना ओर सरस्वती के मत्र 5 मे उनका उल्लेख न होकर मत्र। 1 2 3 4 5 6 7 8 और 9 मे

सिन्धु के साथ कही भी उनका उल्लेख किया जाना, क्योंकि वे वर्तमान पजाब और उसकी मिन्धु की एकमात्र सहायक नदिया हे। गगा, यमुना के साथ जिन उक्त नदियो का "नदीसूक्त" मे वर्णन है, उनका आज किसी प्रकार भी पजाब की सिन्धु नदी से भौगोलिक सबध नही हे। क्योकि "नदी सूक्त" म शुतुद्री, परूष्णी, असिक्नी, मरुद्वृधा, वितस्ता, सुषोमा और आर्जिकीया का सिन्धु के साथ नही वरन् गगा ओर यमुना के साथ उल्लेख किया गया हे। अत उनका भौगोलिक अस्तित्व भी सिन्धु नदी के साथ नही, वरन् गगा-यमुना के क्षेत्र मे ही खोजना युक्ति युक्त है।

पजाब की सिन्धु नदी के तट पर आर्य सस्कृति क प्राचीन स्मारको का सर्वथा अभाव ही है, परन्तु अलकनदा का यह क्षेत्र आर्य तीर्थो से परिपूर्ण है। "महाभारत" (वनपर्व) मे धाम्य और लोमश ऋषि द्वारा बदरी विशाल की नीर्थ यात्रा मे यमुनोत्री गगोत्री का कोई उल्लेख नही है। आर्य जाति के समक्ष सदियो से भागीरथी से अधिक अलकनदा का सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एव आध्यात्मिक महत्त्व सवविदित है और इसका कारण केवल यही है कि अलकनदा ही ऋग्वैदिक आर्यो के आदि देश सप्तसिन्धु एव आर्यावर्त्त को श्री—सम्पन्न करने वाली सिन्धु है।

"देवी भागवत्" (सप्तमस्कन्ध, अ 06) के अनुसार गगा और सरस्वती दोनो सोत है। केशवप्रयाग मे प्रखर वाहिनी सरस्वती और गगा का यह गजन तपण स्वत प्रमाणित है। "देवीभागवत" (9/11) मे अलकनदा नदी को ही स्पष्टता गगा कहा गया है।

"वेद धरातल" मे श्री गिरीशचन्द्र अवस्थी भी पजाब को सप्तसिन्धु नहीं मानते और न वहा की पॉच नदियो मे सरस्वती और सिन्धु को सम्मिलित करते है। उनके कथनानुसार, सिन्धु एक सामान्य नदी का नाम है, इसके लिए सुषोमा शब्द प्रयुक्त किया गया है। श्वेता (श्वेतावरी) का जल श्वेत होने से उसको श्वेता कहते है (इसका वर्तमान नाम धौली है) यह सिन्धु (अलकनदा की सहायक नदी है। पजाब की सिन्धु उत्तराभिमुणी कहीं नहीं है। सिन्धु और गगा दोनो को तीन स्थानो पर क्रमश पृथ्वी अतरिक्ष और द्युलोक तथा स्वर्ग पाताल और पृथ्वी पर साथ-साथ होकर बहने वाली कहा गया है। पृथ्वी पर गगा की भॉति सिन्धु की सात (नदियॉ) धाराओ का उल्लेख है।

सरस्वती और अलकनदा (गगा) के साथ-साथ बहने का विवरण तो हिमालय के सतोपथ और मेरू क्षेत्र मे स्पष्ट दिखाई देता है परन्तु पजाब वाली सिन्धु का इस प्रदेश में कोई नाम निशान भी नही है। इस तथ्य से भी यही प्रमाणित होता है कि सरस्वती ही मलरूप से सिन्धु बनी जो बाद मे अलकनदा और अत मे गगा बनकर सबका उद्धार करने वाली देवनदी बन गइ।

ऋग्वैदिक सरयू और गोमती

ऋग्वेद (10/64/9) मे भी 21 महती और तरगशालिनी नदियो मे केवल सरस्वती, सरयू और सिन्धु का ही साथ-साथ नाम आया है और उन्हे ही यज्ञ मे रक्षार्थ आमंत्रित किया गया हे। प्रथम दोनो नदिया पजाब मे नही हे, वरन् वे मध्य हिमालय मे है। तृतीय

सिन्धु को अलकनदा न मानकर इतनी नदियो को लाघकर, पजाब मे उसकी खोज करने जाना, युक्तियुक्त नही है। ऋग्वेद् मे वर्णित सरस्वती नदी अत्यत प्रखरप्रवाहिनी असामान्य नदी है। पर्वतो को खड-खड करने वाली, आर्य जाति की परमपूज्या इस असाधारण नदी का पजाब प्रात मे जैसा कि इतिहासकार कहते है—नाम और अस्तित्व, आर्यजाति के जीवित रहते पूणत लोप हो जाना आश्चर्यजनक हे। पारस धर्मग्रन्थो मे भी सरस्वती और सरयू (हरह्वती) और (हरैयू) का उल्लेख है। उक्त दोनो सरिताए आज भी उत्तराखड के कुमायूँ अचल मे स्थित हे।

गोमती को कुछ इतिहासकार सिन्धु की पश्चिमी सहायक गोवल कहते है, जो नितान्त भ्रम फैलाने वाला तथ्य है। ऋग्वेद मे तीन बार गोमती नदी का स्पष्ट उल्लेख है। गोमती हिमवान् पर्वत से बहती थी। स्पष्ट है कि रथवीति हिमवान् पर्वत मे गोमती के तीर निवास करता है (ऋ 5/61/1 9)। पुन अनुशासन 30/18 मे लिखा है कि आर्यनरेश विदोस की नगरी का एक छोर गगा के उत्तर तट पर था और दूसरा गोमती के दक्षिण तट तक फैला हुआ था अर्थात् गढवाल और कुमायूँ दोनो प्रदेश आर्य नरेश दिवोदास के राज्यान्तर्गत थे। वस्तुत गोमती और सरयू दोनो का उद्गमस्थल गढवाल की पूर्वोत्तर हिमश्रेणियॉ ही है। वे आज भी "कुमायूँ" से बहती है। गोमती बागेश्वर (अल्मोडा) मे सरयू नदी मे मिल जाती है। उसके तट पर वैद्यनाथ आदि पुरातात्विक महत्त्व के अनेक मन्दिर स्थित है।

सिन्धु पहले सरस्वती फिर अलकनदा और अत मे गगा के रूप मे

ऐसे तथ्य पूर्ण सिद्ध करते हे कि ऋग्वेद मे वर्णित "सिन्धु" और कोई नदी न होकर अलकनदा ही है जो पुराणकाल मे गगा बनकर आर्य जाति की पुण्यतम नदी बन गई थी। वास्तव में, वही "सिन्धु" भी है। एक तथ्य इस सबध मे और भी है। ऋग्वेद के "नदी सूक्त" में प्रारम्भिक मत्रो मे "सिन्धु" का प्रमुखता से उल्लेख किया हुआ मिलता है। परन्तु मत्र-5 मे "गगा" का उल्लेख हो जाने के बाद के मत्रो मे "सिन्धु" का अलग से कोई उल्लेख नहीं हुआ है। इस तथ्य का स्पष्ट यह अर्थ हुआ कि गगा मे ही सभी नदिया का सगम हो जाता है तो वह नदी स्वय ही "सिन्धु" नाम सार्थक कर देती है। ऋग्वेद मे स्पष्ट है कि "सिन्धु" मे प्राय सभी नदिया सगत करती हुइ सागर से जामिलती है ओर यह तथ्य "गगा" के माध्यम से पूर्णत सिद्ध और प्रमाणित हो जाता हे कि सभी महत्त्वपूर्ण नदिया गगा से सगम करती हुई—अपार जल राशि को लेकर अत मे "सागर" मे समा जाती है। इसलिये सिन्धु का प्रथम रूप बदरिकाश्रम के समीप वाली ओर केशवप्रयाग मे अलकनदा से सगम करने वाली सरस्वती हे। दूसर चरण म वही सिन्धु अलकनदा के रूप "सिन्धु" नाम से प्रसिद्ध हो जाती हे ओर अत मे "गगा" के पवित्र स्वरूप के कारण ऋग्वेद की "सिन्धु" नदी गगा बनकर विश्व मे विख्यात हो जाती हे।

उत्तराखड के वतमान गढवाल मे ही "सरस्वती" का मूल स्रोत हे। "गगा" गढवाल मे ही अपना नाम पा लेती हे। देवप्रयाग से "गगा" का अस्तित्व पूर्णत स्थापित हो जाता है। "सिन्धु" अथात् प्रथम चरण की सिन्धु सरस्वती मे—पहले-पहल (1) अलकनदा का

सगम केशवप्रयाग मे, (2) विष्णु प्रयाग मे धोली (श्वेता) से (3) नद प्रयाग मे नदाकिनी से (4) कणप्रयाग मे पिडर से, (5) रूद्रप्रयाग मे मदाकिनी से (6) देवप्रयाग में भागीरथी से ओर व्यासघाट मे नाखालिका (नयार) स सगम हो जाता हे। इन सात नदियो के अलावा ऋषिगगा, गणेशगगा, विष्णुगगा, रूद्रगगा, लक्ष्मणगगा, पातालगगा, गरूडगगा, ऊचनगगा, क्षीरगगा आर जाड गगा आदि सेकडो गगाओ (नदियों) का जल और पर्याप्त अतराल के बाद सरयू ओर गोमनी का जल भी सरस्वती मे समाकर सिन्धु का नाम सार्थक करती है। यह सिन्धु रूप पहले अलकनदा और अत मे "गगा" नाम साथक कर—ऋग्वेद के "सिन्धु' का पयाय बन जाती हे। इस तथ्य को अब विश्व के अधिकाश विद्वान समझने लगे है ओर ऋग्वेद की सिन्धु नदी को गगा मानने लगे ह।

ऋग्वेद मे भी सिन्धु, पजाब की नदी नहीं

ऋग्वेद के उद्धरणो से भी स्पष्ट है कि सात नदियो मे जिस नदी का नाम सिन्धु हे, वह पजाब की वर्तमान सिन्धु कदापि नही। लोकमान्य तिलक भी पजाब की पाच नदियो को देवनदी तथा सप्तसिन्धु देशान्तर्गत नही मानते। क्योकि ऋग्वेद (1/32/12,1/102/2, 1/19/14,2/12/12, 6/7/6) मे जहा-जहा सप्त सरिताओ का वर्णन आया हे, वहा कही भी सिन्धु नदी का नाम नही आया है। केवल सात नदियो का ही उल्लेख हे। ऋग्वेद (1/32/2) मे सिन्धु शब्द अवश्य हे परन्तु वह भी स्पष्टत नदी के अथ मे प्रयुक्त हुआ है। इन मत्रो के अतिरिक्त ऋ 6/61/12,8/85/1,9/6/4,10/43/3,10/194/8 मे जिन सातो सरिताओ का उल्लेख हे, उन सबमे भी कही सिन्धु का नामोल्लेख नही हे। वहा पर आचार्य सायण ने "सिन्धु" शब्द की सवथा उपेक्षा कर, केवल गगा का ही प्राचीन परम्परा प्राप्त अथ सिन्धु नाम से किया है। इससे यह स्पष्ट है कि आचार्य सायण के समय (1400 इ तक) पजाब की सिन्धु, सप्तसिन्धुओ मे सम्मिलित नही थी वरन् सायण और उसके पूवकालीन वेद-भाष्यकारा के मतानुसार आर्यो का वह सप्तसिन्धु देश गगा का वह क्षेत्र था जहा अलकनदा (गगा) तथा उसकी ऊपरी धारा सरस्वती नदी के साथ, उसकी सात, इक्कीस नव्वे तथा निन्यानवे सहायक नदिया अलग-अलग स्थानो पर हिमालय के क्षेत्र मे ही सगम करती है और यह निर्विवाद तथ्य है कि आचार्य सायण के पूव समस्त वेद-भाष्यकारो ने मिन्धु शब्द का अर्थ "बबा" ही किया हे ओर सप्तसिन्धु की सात सरिताओ मे देवनदी गगा को ही प्रमुखता टी है, क्योकि आचार्य सायण की सात ने स्पष्ट कहा हे कि उन्होने प्राचीन भाष्यकारो के अनुकूल परम्परा—प्राप्त ऋग्वेद के मत्रो का अथ किया है। सायण के इस अर्थ से यह स्पष्ट प्रमाणित हो जाता हे कि आर्यो का 'सप्तसेधव" प्रदेश उत्तराखड का वतमान गढवाल अचल ही ह।

यह भी उल्लेखनीय तथ्य हे कि ऋग्वेद के "सरस्वती स्तवन" (6/61/12) मे भी, जहा सरस्वती को गगा आदि सप्त सरिताओ से युक्त कहा गया है उसमे सिन्धु का नाम कही नही आया। ऋ 9/6/4 मे भी सरस्वती के पश्चात् गगा आदि सात नदियो का ही उल्लेख हे, सिन्धु नदी का नाम—निर्देश तक नहीं हे। गगा ओर सरस्वती देवनदी कहलाती

है परन्तु पजाब की सिन्धु को कोई भी और कभी भी देवनदी नही कहता। वस्तुत पुराणो मे अलकनदा (गगा) को स्वर्ग से गिरने वाली सप्त धाराओ से युक्त कहा गया हे। अत उसका नाम सप्तसिन्धु उचित ही है।

ऋग्वेद के प्रसिद्ध "नदी सूक्त" के मत्र के अनुसार सिन्धु त्रिपथगगा, परन्तु पजाब की सिन्धु को कोई भी त्रिपथगा" नही कहता वरन् त्रिपथगा गगा का नाम हे। "नदी सूक्त" के मत्र 2 के अनुसार अलकनदा (गगा) की ऊपरी एव मुख्य धारा सरस्वती भारत की सबसे बडी, सर्वाधिक पूज्य और सब सरिताओ के ऊपर विराजमान है। मत्र 3 के अनुसार उसके घोर गजन-तर्जन से ऐसा विदित होता है कि आकाश से घोर वृष्टि हो रही है, क्योकि "सप्तसिन्धु" पर्वत प्रदेश मे था जिससे सरस्वती और अलकनदा के समान बडी नदी के गर्जन-तर्जन की प्रचडता सत्य है। मत्र 4,5,6 के अनुसार वह सप्त त्रिसप्त, 90 और 99 नदी-धाराओ से सधि करती हुई आगे बढती है। मत्र 7 के अनुसार वह नदियो मे सबसे अधिक वेगवती है। मत्र 8 के अनुसार वह हिरण्यगर्भा (हिरण्ययी), नित्य तरूणी, मधुवर्द्धक पुष्पो से आच्छादित रहती है। इसी के तट पर अलकापुरी का प्रसिद्ध नन्दन कानन प्राकृतिक पुष्पोधान है। महाभारत वनपर्व (82/87) के अनुसार वसुधरा के निकट "सिन्धु-प्रभव" और "सिन्धुतम" तीर्थ है ओर वही स्थान सिन्धु का उद्गमस्थान है, जहा पर स्नान करने से प्रचुर स्वणराशि प्राप्त होती है। इससे प्रभाणित होता है कि वेद व्यास भी सरस्वती और अलकनदा को ही सिन्धु मानते थे। इसीलिये उन्होने सरस्वती और अलकनदा के किनारे दोनो के सगम स्थान केशवप्रयाग मे व्यासगुफा मे बैठकर वेदो का सम्पादन और महाभारत की रचना की थी।

कश्मीर का जो विशिष्ट "नीलमत पुराण" है—उसके पृष्ठ 394 मे स्पष्ट किया है कि सिन्धु नदी "गगा" ही है। यह नदी हिमालय के उत्तरी क्षेत्र से निकलती है।

एक उदाहरण यह भी है कि ऋग्वेद के "नदी सूक्त" (6,61,17) मे "सिन्धु" को "त्रिपथगा" कहा गया है। परन्तु सायण ने पजाब की सिन्धु का कही भी उल्लेख नही किया, बल्कि सरस्वती नदी को ही "त्रिलोकव्यापिनी" गगा माना है। त्रिलोकव्यापिनी शब्द का अर्थ भी "त्रिपथगा" ही है। हिमालय की पवित्र-पावनी गगा को, सायण ने मातृरूप मे स्थापित कर-सात प्रमुख नदियो की सगम-स्थली बताकर उसका गौरव बढाया है अर्थात् हिमालय की प्रमुख सात नदिया "गगा" मे ही सधि कर विपुलजलराशि वाली "गगा" की सहायिका बनकर गौरव पाती है। इन्हे व्यापक रूप मे सर्वत्र सम्मान दिलाने का कार्य ऋग्वेद स ही शुरू हो गया था। ऋग्वेद (8,85,1) मे व्यापक शब्द मे वही "त्रिपथगा" वाला अर्थ गाभीर्य समाया हुआ है।

आर्यों की "सप्तसिन्धु" की जलवायु

आर्यो के आदि स्थान के सबध मे भी ऋग्वेद आदि ग्रन्थो मे पर्याप्त सूचनाये प्राप्त होती है। जलवायु के सबध मे विस्तार से जानकारी प्राप्त होती है। जिससे आर्यो के आदि देश की भौगोलिक स्थिति का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है कि आर्यो का आदि देश किस क्षेत्र

मे रहा होगा। इस सबध मे ऋग्वेद का ही पहला उदाहरण लेना उपयुक्त होगा।

आर्यो का आदि देश शीतप्रधान प्रदेश था (ऋ 3/72), इस तथ्य से प्राय सभी विश्व के इतिहासकार एकमत है। वहा दस माह की बडी शीत और केवल दो माह साधारण गर्मी रहती थी (ऋ 5/32/1) यह वेवस्वत मनु उस शीतप्रधान प्रदेश के प्रथम नरेश थे। वषा की गणना पहले हिम शीतकाल (0 5/54 15) से होनी थी। कालातर मे पुन दक्षिण के कुछ समतल भू-भागो की ओर बढने के पश्चात् शरद् ऋतु स भी वर्षा की गणना होने लगी। शरदऋतु के प्रति आय-जाति की विशेष निष्ठा थी "जीवेम शरद शतम् के आशीवाद द्वारा वे अपने स्नेही सुहृदो को शतशरद या "शत" हि हिमा तक जीने का कामना करने थे। ऋग्वेद मे वष अर्थ मे "शरद" शब्द का सबसे अधिक और "हिम" शब्द का दस से अधिक बार उल्लेख हुआ है। उसके पश्चात् गर्मियो के दो-तीन महीनो मे वसतऋतु रहती थी जो सबसे छोटी ऋतु थी। इस प्रकार, सप्तसिन्धु मे शरद, हेमत ओर वसत तीन ऋतुओ का विशेष उल्लेख मिलता है। (ऋ 1/164/44)। वहा वर्षा का भी आधिक्य था इसलिये वर्षा ऋतु का भी वर्णन मिलता है। (ऋ 2/12/2,2/17/5)। आर्य–ऋषियो को हिमालय अत्यन प्रिय था। वैदिक रचनाओ मे सृष्टिकता की महत्ता, हिमाच्छादित पर्वत बतलाते है (ऋ 10/121/4)। "हिमेनाग्नि, हिमेवसासयो, हिम्वानान् हविष्मान्" कहकर उन्होने हिमालय के प्रति असीम श्रद्धा व्यक्त की है। अथर्ववेद (12/1/11) मे भी "गिरयस्ते पर्वता हिमबन्तोअरण्य से पृथिवि स्योनमल्तु" कहकर हिमालय की वन्दना की गई हे।

हिमालय के शीतप्रधान अचल मे ही आर्यो का "सप्तसैधव" रहा होगा तभी आर्यो ने हिमालय की वन्दना पग-पग पर ही की है। "सप्तसन्धिु" अत्यधिक शीतप्रदेश था। इसीलिये आर्यो को "बारहो मास" अग्नि प्रज्ज्वलित कर रखनी पडती थी यह भी स्पष्ट है कि आर्य सविता, उषा आदि अग्नि के प्रतीको के विशेष पुजारी थे। अग्निदेव, देवताओ मे भी श्रेष्ठ देवता (ऋ 1,31,1) समझे जाते थे। ऋग्वेद के प्रथम मडल के सम्पूर्ण सूक्त मे अग्निदेव का आह्वान किया गया है।

गढवाल मे आज भी किसी भी शुभ कार्य को सम्पन्न करने से पहले "अग्निदेव" का आह्वान करने की परम्परा है।

मौसम के अनुसार कई दिनो तक ऋग्वेद मे सरस्वती नदी के तट पर अनिवार्य यज्ञ-यागो द्वारा अग्नि प्रज्ज्वलित रखने की जो व्यवस्था थी, वह भी आर्यो के शीत-प्रधान प्रदेश मे रहने का सूचक है। ऋ 1/31/1 और 3/23/4 के अनुसर ऋषि अगिरा द्वारा (त्वमग्ने प्रथमो अगिरा ऋषि) प्राचीनकाल मे सरस्वती नदी के क्षेत्र मे अग्नि सघर्षण से उत्पन्न कीगयी थी। इस स्थिति मे आर्यो का गर्म क्षेत्रो मे रहने का कोई प्रमाण मिलता ही नही। फिर कुरूक्षेत्र और प्रयाग की सरस्वती के उष्ण तट–प्रदेश मे वैदिक आर्यो द्वारा परमपूज्य (देवा देवाना) अग्नि की प्रमुखता प्रदान करना सम्भव नही है।

पजाब मे हिमालय नहीं है। वहा वर्षा का भी अभाव रहता है वह गर्म देश है। वहा इस प्रकार की कठिन शीत की कल्पना भी नहीं हो सकती। आर्यो की प्राचीन पुस्तक "ऋग्वेद" मे वर्णित सप्तसिन्धु की जलवायु और भौगोलिक स्थिति मे और वर्तमान पजाब मे

आकाश-पाताल का अतर है। ऐसे विशिष्ट कारणो को देखते हुये श्री पावगी और श्री लोकमान्य की वेदो मे वर्णित जलवायु की खोज मे शीतप्रधान उत्तरी ध्रुव की कल्पना करनी पडी है। श्री अविनाशचन्द्र दास और डॉ सम्पूर्णानन्द ने जहा उत्तरी ध्रुव और मध्य ऐशियावाद का युक्तियुक्त खण्डन किया है, वहा उन्होने वैदिक परिस्थितियो के सर्वथा प्रतिकूल, पजाब की सिन्धु नदी पर केन्द्रित होने के कारण, पजाब को आर्य जाति का मूलनिवास "सप्त-सिन्धु" बताकर, उक्त समस्या को विवादास्पद ही रहने दिया है। वे वतमान पजाब और प्राचीन पजाब (सप्नसिन्धु) की जलवायु आदि मे हजारो वर्षो के भौतिक परिवर्तनो के कारण अतर होना बतलाकर, सतुष्ट हो जाते है। वहा की सिन्धु नदी के कारण ये सप्तसिन्धु की खाज मे पजाब को छोडकर तनिक भी आगे-पीछे जाने का प्रयत्न नही करते। यद्यपि वे इस तथ्य को स्पष्टत स्वीकार करते है कि "वह स्थान वैदिक यम-सदन से मिलता-जुलता कोई स्थान था। पुराणो मे उत्तर-कुरू (गढवाल का उत्तरी क्षेत्र) जैसे प्रदेशो का जो वर्णन है वह भी इस प्रकार का है" (पृ 90)।

राधाकुमुद मुकर्जी हिन्द सभ्यता (हिन्दी 6 अनुवाद पृष्ठ 72) मे यह भी स्वीकार करते है कि "ऋग्वेद के एक भाग मे जहा उषा के सूक्त है उनमे पजाब मे अद्भुत सौन्दर्यशाली प्रात काल की झाकी मिलती है। लेकिन उसके अधिकाश भागो मे बादल और बिजली मेघो और पवर्तो स घनघोर वर्षा के रूप मे रूद्र प्रकृति का जो वणन है, वह वर्णन पजाब मे नही है। वह वर्णन तो ब्रह्मवर्त्त के उस प्रदेश मे पाया जाना है जहा सरस्वती और वृषद्धती नदिया बहती है। यही ऋग्वेद का अधिकाश भाग रचा होना चाहिए "गढवाल की सरस्वती नदी के तट पर जहा वेदो की रचना हुइ है—वही गढवाल मे एक ऐसा क्षेत्र है—जिसे "वेदनी बुयाल" के नाम से जाना जाता है। ऐसा कहा जाता है कि इस क्षेत्र मे वेदा की रचना करने वाले ऋषि निवास करते थे।

पजाब मे वेदो की रचना करने वाला न कोई क्षेत्र है और न ही कोई ऐसी सरस्वती नदी है जहा अग्नि प्रज्ज्वलित कर आर्यो ने अनेक यज्ञ सम्पन्न किए हो। कोइ ऐसा प्रमाण भी नहीं मिलता।

ऋग्वेदिक आर्यो के अनक प्राचीन आध्यात्मिक स्मारको से सम्पन्न हिमवन्त के बदरी—केदार क्षेत्र मे देवनदी सरस्वती, मदाकिनी ओर गगा के विस्तृत पार्श्ववर्ती भागो मे ऋग्वेद मे निर्गत भौगोलिक तथ्य एव जलवायु आज भी पूणत विद्यमान है। महापडित राहुल साकृत्यायन (गढवाल पृष्ठ 26-27) का यह कथन सत्य है हिमालय श्रेणी की हिमानियो तथा हिमशिखरो के इस ओर साइबेरिया की तद्रा की भॉति आठ मास धरती बर्फ से ढकी रहती है। 13 000 फुट ऊपर ध्रुवकक्षीय जलवायु आ जाता है यहा जाडा लम्बा और गर्मी का मौसम छोटा होता है, जिसके कारण अभी बर्फ अच्छी तरह पिघलने भी नहीं पाती, कि नयी बर्फ पड जाती है। माणा और नीति गाव यहा का उच्चतम उन्नताश की मानव बस्तिया है। वहा बसन्त बहुत छोटा होता है, जबकि उस समय थोडी गरमाहट मालूम पडती है। दिसम्बर से अप्रैल तक माणा और नीति के गाव सफेद हिम की चादर के नीचे ढके मानव-शून्य को जाते है।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि हिमाच्छादित बदरीनाथ और केदारनाथ मन्दिर के कपाट जाड़ा मे छ मास बद रहते है। छ मास देवताओ द्वारा और छ मास मानवों द्वारा यहा जा पूजा करने का वणन है, उसमे यही भाव है। सुमेरू सर्वोच्च हिम-शिखरो से आच्छादित इसी क्षेत्र का नाम गन्धमादन, कैलास और सुमेरु है। सुमेरू-पवत पर वेद आर पुराणो में वर्णित छ मास दिन और छ मास रात रहने की उपमा दी गयी है, जिसको लोकमान्य तिलक ने भी ध्रुव प्रदेश की पुष्टि मे उद्धत किया हैं, इसमे यही भाव निहित है। दिन रात घन मेघो से आच्छादित रहने के कारण, वहा दिन मे भी रात्रि की तरह गहन अधकार छाया रहता है। इस प्रकार का वातावरण आज भी बदरी-केदार की भूमि मे स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

उत्तराखड के गढवाल क्षेत्र के ऊपरी भाग मे जो हिमप्रधान भाग हिमालय के निकट हैं, उसमे नवम्बर से मई-जून तक आठ मास हेमन्त ऋतु का प्राधान्य बना रहना है। जून से अक्टूबर के अत तक वहा बसन्त रहता है। उस समय वहा सारी भूमि पुष्पमयी दिखायी देती है। 8,000 फुट से ऊपर वाले पवनो पर वषाऋतु और बसन्त ऋतु मिश्रित रूप मे दिखायी देती है। वाल्टन भी गजेटियर ऑफ ब्रिटिश गढवाल के पृष्ठ 28 पर लिखता है— ' गढवाल के दक्षिण मे 7,000 फुट से ऊपर और उत्तर मे 6,000 फुट मे ऊपर, सारे वष जलवायु शीत रहती हैं। वष मे यहा तीन ही ऋतुए होती है। इन्ही तीन ऋतुओ शरद, हमत और बसत का ऋग्वेद मे उल्लेख है। जीवेम शरद शतम्" के अनुसार, शरद ऋतु के प्रति आज तक गढवाल मे वही श्रद्धा भाव पूर्ववत् सुरक्षित है जो भाव कभी ऋग्वेद के समय था।

पारसियो के धमग्रन्थ अवेस्ता के अनुसार तिलक आदि कई विद्वानो का मत हे कि आर्य पहले ऐसे प्रदेश मे रहते थे, जहा सात मास गर्मी और पाच मास सर्दी पडती थी, छ ऋतुए होती थी, जलवायु अच्छा था ओर जनता सुखी थी। परन्तु जलप्लावन एव आकस्मिक हिमाच्छादन के कारण आर्य इस प्रदेश के भागकर ऐसे प्रदेश मे चले गये, जहा दस मास का जाडा और दो मास की अल्प गर्मी पडती। वैवस्वत मनु सप्तसिन्धु (गढवाल) के दक्षिण क्षेत्र मे बसे थे। उस युग मे इसका नाम दक्षिणगिरि था। दक्षिण गढवाल की जलवायु सात मास गम और पाच मास ठडी रहती है। जलप्लावन के समय वेवस्वत मनु अपने विशिष्ट प्रयोजनो सहित उत्तर गढवाल मे 5-6 हजार फुट से ऊँची उत्तर गिरि (शतपथ ब्राह्मण, 1/8/6) प्रदेश की ओर भाग निकले थे जहा आज भी दस मास की कठिन शीत और दो मास की गर्मी पडती है। हेमत और शिशिर एक ही ऋतु समझी जाती हे।

पारसियो के दूसरे धर्मग्रन्थ "हेन्दावस्ता" मे लिखा है कि आदि सृष्टि जिस भू-भाग मे हुई वहा दस मास शीत और दो मास गर्मी रहती। जेन्दावस्ता" की आदि सृष्टि सप्तम वैवस्वत मनु के जल प्लावन मे उत्तरगिरि को जाने के पश्चात् प्रारम्भ होती है। सृष्टि का पुनर्निमाण सप्तम मनु से भले ही आरम्भ हुआ हो, परन्तु सप्तसिन्धु मे, वह कई हजार वर्ष पूर्व स्वायम्भुव से प्रारम्भ हो चुका था। जेन्दावस्ता मे जहा एक वर्ष का दिन हो, वहा उसमे वर्णित, उस मास की शीत और दो मास की गर्मी का अर्थ कल्पनातीत है।

आर्यों का सप्तसिन्धु उत्तराखड और कैलास-मानसरोवर का क्षेत्र

ऊपर लिखे सभी तथ्य यह प्रमाणित करते है कि आर्यो का मूलनिवास पजाब का क्षेत्र कदापि नही हो सकता। प्राचीन भारतीय वाडमय मे पजाब क्षेत्र को कोई महत्त्व नही दिया गया है। ऋग्वेद मे भी कोई ऐसा प्रमाण नही मिलता कि वहा हम आर्यो का मूल निवासी होने का कोई आधार मिल सके।

अत यही निष्कर्ष सामने आता है कि आर्यो का मूल स्थान बृहद् भारत के मध्य हिमालय (वर्तमान उत्तराखड और मानसरोवर-कैलास) का क्षेत्र था। बाद मे इस क्षेत्र मे नेपाल से लेकर कश्मीर तक का सम्पूर्ण हिमालयी क्षेत्र भी सम्मिलित हो गया था। आर्य इसी हिमालय क्षेत्र मे जन्मे ओर बाद मे पश्चिमी देशा मे गये। बल्कि बृहद् भारत मे फले फूले।

आर्यो के मूल स्थान के सम्बध मे अब तक की समस्त जानकारियो का उल्लेख इस कृति म किया गया हे। पाडुलिपि को तैयार करने मे विभिन्न विद्वानो की महत्त्वपूर्ण कृतियो से अनेक उदाहरण लिए गये है। कृतियो एव विद्वानो के नामो का यथास्थान उल्लेख किया गया है। लेखक सभी ऐसे श्रेष्ठ रचनाकारो के प्रति अपना आभार प्रकट करता है।

यह पुस्तक इतनी शीघ्रता से प्रकाशित नही हो पाती यदि मेरी पत्नी श्रीमती बागेश्वरी न मुझे पारिवारिक झझटो और जिम्मेदारियो से मुक्त न किया होता। उनका आभार कैसे व्यक्त करूँ—सब कुछ तो उन्ही का है। मेरे बच्चो (कमल-सोयी, दिव्य-नीरू, भगवती-शैलजा, विवेक-पूनम, इन्द्रेश-अनु, विशि शिवि, काक्षी, यशी, मिशी और शैवी) ने भी मुझे बहुत सहारा दिया। इस पुस्तक की पाडुलिपि को शीघ्रता एव शुद्धता से टाइप करने मे श्रीमती राजकुमारी गुप्ता (पत्नी डॉ घनश्याम लाल गुप्ता) ने भी अपने टाइप करने की विशेष योग्यता का परिचय दिया उनका भी आभार मानता हूँ तभी पुस्तक शीघ्र प्रकाशित हो सकी।

साहित्य प्रकाशन दिल्ली के व्यवस्थापक एव हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ रचनाकार और भारतीय वाङ्मय के यशस्वी नक्षत्र स्व श्री यज्ञदत्त शमा के सुपुत्र श्री योगेन्द्रपाल ने आर्यो के मूल स्थान की महिमा को समझकर इस कृति को यथाशीघ्र प्रकाशित कर हर श्रेणी के पाठको तक पहुँचने का प्रशसनीय काय किया है जिसके लिए वह साधुवाद के पात्र है।

—शिवानन्द नौटियाल

बृहत्तर भारत : आर्यों का मूल

आज का भारत, सिमटकर एक छोटा-सा देश रह गया है। परन्तु एक समय ऐसा भी था, जबकि बृहद् भारत की सीमाएँ पूव मे चीन सागर तक और पश्चिम मे लालसागर अर्थात् भूमध्यसागर तक फैली हुइ थी। मध्य एशिया का अधिकाश भाग बृहद् भारत का एक विशेष भूभाग था।

रामायण तथा महाभारतकाल मे भी अनेक ऐसे राज्य थे जिनका शासन तत्र भारतीय गणराज्यो के अधीन था। रघुवश के अनेक राजाओ ने दिग्विजय कर पश्चिमी देशो को अपने अधिकार मे ले लिया था। केकेय प्रदेश की राजकुमारी केकेयी का उदाहरण भी अपने आपमे एक इतिहास लिए हुए है।

महाभारतकालीन इतिहास तो बृहद् भारत की कथा को और भी प्रमाणित करता है। मद्र-प्रदेश जो मध्य एशिया का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र था—वहॉ की माद्री का उल्लेख करना इसलिए भी आवश्यक है कि वह महाराज पाडु की पत्नी थी और उसका देश मद्र भी भारतीय गणराज्य का एक अभिन्न अग था। गाधार की गाधारी तो एक प्रकार से महाभारत की विशिष्ट नायिका के रूप मे विख्यात थी। कोरव उसके पुत्र थे और अधा धृतराष्ट्र उसका पति था। महाभारत के युद्ध मे उसके भाई शकुनि का विशेष हाथ था। ऐसे-अनेक ऐतिहासिक प्रमाण हे—जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि बृहद् भारत की सीमाएँ पूर्वी समुद्र से लेकर पश्चिमी समुद्र लालसागर तक फैली हुई थी।

आर्यो के मूलस्थान एव निवास के सबध मे भी यह धारणा गलत सिद्ध हो गई है कि आर्य भारत मे पश्चिमी देशों विशेषकर मध्यएशिया से आये थे। प्राचीन साहित्य एव प्राचीन देशो के निवासियो के सबध मे गहरी जानकारी प्राप्त करने पर—यह निष्कर्ष सामने आता जारहा है कि आर्यो का मूल जन्मस्थान भारत के हिमालयी क्षेत्र मे ही था और यहीं से आर्यो का पश्चिमी देशो मे जाना हुआ। कालान्तर मे पश्चिमी देशो मे आर्यो का प्रभाव बढा और विद्वानो ने उन्हे मूल आर्य वशज समझकर ऐसी धारणा व्यक्त की। देवासुर सग्राम के बाद आर्यो का इधर-उधर जाना सिद्ध होता है। आर्यो की ऐसी अनेक सतानो के विभिन्न वर्ग बन गये थे। ये वर्ग अपने-अपने सगठनो के साथ भारत से बाहर गये और नयी शक्ति

क साथ पुन भारत लोट आये। जिन्हे धीरे-धीरे भारत ने अपने आप मे आत्मसात् कर लिया। बृहद् भारत आर आर्यो के मूल निवास के सबध मे अनेक विचार सामने आये हे। म० म० प० गिरधर शमा चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक 'वेदिक विज्ञान और भारतीय सस्कृति'' के (पृष्ठ 185 से 191) 'भारतवर्ष ओर उसकी प्राचीन सीमा'' नामक शीषक के अन्तगत 'बृहद् भारत' की प्राचीन सीमाओ का वर्णन इस प्रकार किया हे

'महानभारत' का विचार करते समय प्राचीन भारत कहाँ तक था, उसकी सीमा क्या थी, यह जब तक स्पष्टतया न जान लिया जाय, तब तक भारतीय सस्कृति का विशिष्ट चित्र सामन आना कठिन हे। इसका कारण यह हे कि जितने भी भारतीय आचार, व्यवहार, कला, कोशल आदि हे, वे सब प्राचीन ग्रथो मे उपनिबद्ध हे। उन ग्रथकर्ताओ ने अपने समय क भारत का चित्र अवश्य प्रस्तुत किया हे। आज का भारत उसकी (बृहद् भारत की) अपेक्षा बहुत सकुचित हो गया हे। उसे तो जाने दीजिए, भारत का जो भूगोल आज से 55, 60 वष पहले था, वह भी आज नही हे।

प्राचीन वाड्मय के भारत विषयक अनुशीलन से पता चलता हे कि भारत की पूर्वी आर पश्चिमी सीमाएँ बहुत अधिक विस्तृत थीं। भारत की पूर्वी सीमा चीन सागर तक थी। इस सीमा के अतगत, ब्रह्मदेश, जिसे आजकल बमा कहा जाता हे, स्याम, रगून आदि सम्मिलित थे। भारत की पश्चिमी सीमा लालसागर (भूमध्यसागर) तक चली गई थी। इस सीमा में वतमान पाकिस्तान, बिलोचिस्तान, इरान, मेसोपोटामिया और अरब भी सम्मिलित थ। इस प्रकार, पूर्वी-चीन समुद्र मे लालसागर तक भारत कहा जाता था। इस विषय मे अनेक प्रमाण ह, जिनमे स कतिपय प्रमाणो का यहाँ उल्लेख किया जाता हे। भारत की दक्षिणोत्तर सीमा तो हिमालय और कन्याकुमारी तक प्रसिद्ध ही हे।

1 प्रथम प्रमाण मनु का आयावत्त-सीमा-निर्देश हे

आसमुद्रातु वै पूर्वादासमुद्रातु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तर गिर्योरार्यावर्त्त विदुर्बुधा ।।

अयात्, हिमालय और विन्ध्याचल के मध्य मे पूव समुद्र से पश्चिम समुद्र तक ''आयावत्त'' कहा जाता हैं।

यह भारतवष के अतगत ''आर्यावर्त्त'' की सीमा का निर्देश हे। यहा पूर्व समुद्र और पश्चिम समुद्र शब्द से बगाल की खाडी ओर अरब सागर अभिप्रेत नही हो सकता, अपितु चीनसागर ओर लालसागर से ही तात्पय है। भूगोल के नक्शे मे विन्ध्याचल ओर हिमालय के मध्यभाग से पूर्व और पश्चिम की तरफ सीधी लाइन से जाइए, तो उपर्युक्त दोनो ही समुद्र दोना ही सीमाओ से पहले आयेगे। बगाल की खाडी ओर अरब सागर इस लाइन से दक्षिण भाग मे रह जायेगे। मनु का यह साक्ष्य पूव और पश्चिमी सीमा का विस्तार स्पष्टतया प्रकट करता हे।

2 व्याकरण-महाभाष्यकार भगवान पतजलि ने भी अपने महाभाष्य मे भारतवर्ष की सीमा का निर्देश इस प्रकार किया हे

प्रागादशान् प्रत्यक् कालकवनात् दक्षिणेन हिमवन्तमुत्तरेप पारियात्रम् अत –आदर्श से पूव, कालकवन से पश्चिम, हिमालय से दक्षिण और पारियात्र से उत्तर भारत कहलाता है।

इसमे आदश से तात्पर्य भूमध्यसागर के उत्तर-प्रान मे स्थित तारस पवत से हे अथवा तूरस पर्वत को (जिसका नाम सिनाइ पवत भी है) आदश पवत के नाम से गृहीत किया जा सकता हे। यह आदश पवत पश्चिम समुद्र या यहूदी नाम के यवनदेश के समीप है। कुछ विद्वान महाभाष्य के इस आदश शब्द से सिन्धु नदी के दक्षिण म स्थित सुलेमान पवत को लेते ह। परन्तु यह युक्तियुक्त नही, क्योंकि पश्चिम सीमा मे जो यवनदेश का और समुद्र का निर्देश किया गया है, वह सुलेमान पवन के ' आदर्श" से गृहीत होने पर उत्पन्न नही होता। तारस नाम के सिनाई पर्वत का "आदश नाम से गृहीत होना अक्षर-साम्य भी रखता है।

3 मत्स्य[1], माकण्डेय[2] आदि पुराणे मे भारनवष के पूव मे किरात ओर पश्चिम मे यवनो का होना बनाया गया है। पुराणादि मे यवन शब्द से मुसलमान जाति का ग्रहण करना तो भ्रान्तिमात्र हे, क्याकि यह जाति तो हजरत मुहम्मद का मत स्वीकार करने के कारण बाद म बनी ह, जिसके जन्म की यह चोदहवीं-पन्द्रहवी शताब्दी हे। इनका निर्देश पुराणो मे सभव ही कहॉ ह ? वहॉ तो यवन शब्द से यवनदेश ही लिया जाता हे। यवनदेश भी केवल यूनान या ग्रीस का ही नाम नहीं है, अपितु भूमध्यसागर के पाश्ववर्नी यहूदी जाति के निवास स्थान यहूदिया आर कोडिया आदि प्रदेश यवन शब्द से ही कहे जाने थे। इसके अनेक प्रमाण ह। उनके समीप तक आर्यावर्त व भारतवष की सीमा फैली हुइ थी। पूर्व मे जो किरात बताये गये ह–उनके सबध मे सभी ऐतिहासिको का यही अनुमान है कि वह चीनसागर के पूर्ववर्नी देशो की ही निवासिनी जाति थी। इससे भी भारत की पूर्वोक्त सीमा ही सिद्ध होती है।

4 पद्मपुराण ओर मत्स्यपुराण मे पृथ्वी को चार दल का कमल बतलाया गया है। प्रमाण इस प्रकार है

पद्म नाभ्युम्दव चैक समुत्पादितवास्तत ।
सहस्रवर्ष विरज भास्कराभ हिरण्मयम्।।
पद्मे हिरण्मये तास्मिन्नसृजद् भूरिवर्चसम्।
स्रष्टार सर्वलोकाना ब्रह्माण सर्वतोमुखम्।
तच्च पद्म पुराभूत पृथिवीरुपमुत्तमम्।
यत्पथ सा रसादेवी पृथिवी परिकथ्यते।

1 योजनाना सहस्र वै द्वीपो य दक्षिणोत्तर ।
आयतस्त कुमारीतो गगाया प्रवहावधि ।। मत्स्य

2 योजनाना सहस्र वै द्वपा य दक्षिणोत्तरम्।
पूर्वे किराता यत्यान्त पश्चिमे यवनास्तथा।। मार्कण्डेय

एव नारायणस्यार्थे मही पुष्करसम्भवा।
प्रादुर्भावो प्यक्तस्मात्राम्ना पुष्करसंज्ञित ।

(पद्म पु, सृ अ 40 मत्स्य पु, अ 169)

इसका अर्थ है कि नाभि से भगवान् ने एक पद्म को उत्पन्न किया, जो हजारो वर्षो का था, जिसमे रज नही था, अर्थात् जो विशुद्ध था, सूर्य के समान उसकी आभा थी, वह हिरण्यमय था। उस हिरण्यमय पर महातेजस्वी, सारे ससार के निर्माता, चारो ओर मुख रखने वाले ब्रह्मा को उत्पन्न किया। वही पद्म आगे चलकर पृथ्वी रूप मे परिणत हुआ। वही पद्म रसादेवी, पृथ्वी कहा जाता है।

तदेतत्पार्थिव पपद्म चतुष्पत्र मयोदितम्।
भद्राश्वभारतादीनि पत्राण्यस्य चतुर्दिशाम्। (मार्कण्डेय)

अर्थात्, यह जो पृथ्वी-पद्म है, जिसको हमने चतुष्पत्र बतलाया है, उसके भद्राश्व, भारतादि चार पत्ते है। यहाँ दो ही पत्रो का नामत निर्देश है। ब्रह्मपुराण मे चारो का निर्देश इस प्रकार किया गया है

भारता केतुमालाश्च भद्राश्वा कुरवस्तथा।
पत्राणि लोकपद्मस्य मर्यादा शैलबाहात ।।

इसमे भारत, केतुमाल, भद्राश्व ओर कुरु ये पृथ्वी पद्म के चार दल कहे गये हे। दूसरे शब्दो मे उस समय सारी पृथ्वी इन्ही चार भागो मे विभक्त थी। यहाँ कुरू शब्द से उत्तर कुरू, अर्थात् सुमेरू-प्रान्त का ग्रहण है। ये चारो परिमाप की दृष्टि से समान थे, जो भूगोल-खगोल के कल्पित 90 90 अशो मे विभक्त थे। इसका साक्ष्य "सूय सिद्धात" के भूगोलाध्याय मे इस प्रकार है

भूवृत्तपादे पूर्वस्या नवकोटीति विश्रुता।
भद्राश्ववर्षे नगरी स्वर्णप्राकारतोरण।।
याम्याया भारते वर्ष लका तद्वन्महापुरी।
पश्चिमे केतुमालाख्ये रोमकाख्या प्रकीर्तिता।।
भूवृत्तपादविवरास्ताश्चान्योन्य प्रतिष्ठिता ।
तासामुपरिगो याति विषुवस्थो दिवाकर ।
न तासु विषुवच्छाया नाक्षस्योत्रतिरिष्यते।।

इनके अनुसार लका और सुमेरू का स्पर्श करती हुई जो रेखा है, उसको भारतवर्ष की मध्य रेखा कहा गया। अत उसके पूर्व के पैतालीस अश और पश्चिम के पैतालीस अशो से व्याप्त जो भू-भाग हे, वही भारतवर्ष है—यह सिद्ध हुआ। भारतवर्ष से नब्बे अश पूर्व मे भद्राश्व वष हे और भद्राश्व से नब्बे अश उत्तर की ओर उत्तर कुरू वर्ष है। उसके उतने ही अश बाद केतुमाल वर्ष आता हे। इस प्रकार, भू-पद्म के चार दलो का वर्णन मिलता

हे। भारतवर्ष की मध्यरेखा उज्जयिनी पर मानी गइ हे। यह उज्जयिनी 23/9 उत्तर अक्षाश मे स्थित है। पाश्चात्य विद्वान् ग्रीनविच नीम की मध्यरेखी से देशान्तर की गणना किया करते हे। उज्जयिनी के ऊपर होकर गई हुई भारतीय मध्य रेखा और पाश्चात्य विद्वानो की सम्मत ग्रीनविच मध्यरेखा मे 75/43 अशो का अतर है। इस प्रकार, भूमध्य रेखा पर स्थित उज्जयिनी से 45 अश पश्चिम तक भारत की पश्चिमी सीमा सिद्ध होती है और वह प्रदेश भूमध्यसागर के समीप ही ठहरेगा।

5 भारतवष के 9 उपद्वीप पुराणो मे प्रसिद्ध है (1) इन्द्रद्वीप, (2) नागद्वीप, (3) सोम्यद्वीप, (4) गान्धर्व द्वीप, (5) वारूण द्वीप, (6) कशेरूमान्, (7) गभस्तिमान्, (8) ताम्रपण-सिहल ओर (9) कुमारिका। इन उपद्वीपो को वर्तमान मे इन नामो से जाना जाता है—(1) अण्डमान, (2) नीकोबार, (3) यवद्वीप, (4) फिलीपाइन द्वीप-सघ, (5) बोर्नियो, (6) कसेरू, (7) मलूका, (8) सीलोन ओर (9) कुमारी। इन सब उपद्वीपो का विस्तृत वणन एव विवरण पुराणो मे प्राप्त होता हे। जब इतने दूर के देश उपद्वीप माने जाते है, तब अवश्य ही भारतवष का बहुत विस्तृत होना सिद्ध होता हे, क्योंकि सीमा के समीप वाले मिले हुए देश ही तो उपद्वीप कहला सकते हे।

6 ऋग्वेद के मण्डल 10 के सूक्त 86 से प्रारभ कर आगे के सूक्तो मे एक वाक्कलह का सकेत प्राप्त होता है। ऋश्राश्व ऋषि का दौहित्र एक जरथ्रुष्ट नाम का व्यक्ति हुआ, उसके हृदय मे स्वभावत उस काल के अन्य ब्राह्मणो से द्वेष था। ब्राह्मण द्वेष के कारण ही उसने ब्राह्मी लिपि के विरुद्ध उल्टी लिखी जाने वाली खरोष्ठी लिपि का प्रसार किया। उस समय वाल्हीक देश मे ऋषियों मे एक विचार-सघर्ष और वाग्युद्ध उठ खडा हुआ। सोत्रामणि इष्टि (यज्ञ) मे ऋषि इस विषय पर आपस मे झगड पडे कि इन्द्र को प्रधान देवता माना जाय, अथवा वरुण को। जरथ्रुष्ट ने परपरा से चले आये हुए इन्द्र के प्राधान्य को अस्वीकार किया ओर उसके स्थान पर वरुण के प्राधान्य को प्रतिष्ठित किया। इसका सकेत ऋक्सहिता मे "नेन्द्र" ' देवममसत" इस मन्त्राश मे पाया जाता हे। उपस्थित ऋषियो मे नृमेधा, हिरण्यस्तूप, वामदेव, गाग्य आदि ने इन्द्र का पक्ष लिया और सुपर्ण काण्व, भारद्वाज आदि के वरुण का पक्ष लिया, वशिष्ठ आदि ऋषियो ने "अपने-अपने" स्थान पर दोनो को समान माना। इस सबध मे भिन्न-भिन्न ऋषियो के सूक्त वही है। और इन्द्राणी का क्रोध एव इन्द्र कृत ओर अन्य ऋषि-कृत उसकी सामन्त्वना के मत्र भी है। यह विरोध बहुत अधिक बढ गया, तब मनुष्यावतारधारी ब्रह्मा ने, जो बडे विद्वान महाप्रभावशाली और महातेजस्वी थे, भारत के दो विभाग कर दिये। सिन्धु नदी से पश्चिम का भाग वरुण को प्रधान मानने वालो को दिया तथा पूर्व का भाग इन्द्र को प्रधान मानने वालो का दिया। इस घटना से भारतीय सीमा के विस्मृत होने का प्रमाण मिलता है, क्योंकि इससे सिद्ध हो जाता हे कि सिन्धु नदी भारत के मध्य मे है—न कि पश्चिम सीमा पर। सिन्धु को मध्य मे मानने पर जितना प्रदेश सिन्धु के पूव मे हे, उतना ही पश्चिम मे मानना पडेगा ओर वह भाग भूमध्य सागर तक ही पहुँचेगा।

7 भारत की सीमा प्राचीन काल मे अत्यधिक विस्तृत थी, इस विषय मे प्राचीनकाल

ओर आधुनिक काल मे प्रचलित सज्ञा शब्द भी प्रमाण है। हम ऊपर लिख आये हे कि इन्द्र ओर वरुण को प्रधान मानने के विचार-विरोध मे ब्रह्मा ने भारत के दो विभाग कर दिये। एक सिन्धु नदी के उस पार का लालसागर तक का प्रदेश, और दूसरा सिन्धु के पूर्व का प्रदेश। इस प्रकार, विभाग होने के अनन्तर सिन्धु के पार वाले लोग पूर्वीय तटवालो को सिन्धुस्थानीय कहने लगे। इसी शब्द का भाषा वेज्ञानिक ढग से विकृत होने वाला रूप आज "हिन्दुस्तानी" हो गया। इसी प्रकार, पूर्वीय तट वाले लोग पश्चिम के निवासियो को पारस्थानीय कहने लगे। यही शब्द विकृति प्रक्रिया द्वारा आज पारसी रूप मे उपस्थित हुआ है। इस प्रकार, प्राचीन वाड्मय मे प्रयुक्त ये सिन्धुस्थान ओर पारस्थान शब्द आपेक्षिक हे, आर भारत की पश्चिमी सीमा के विस्तार का निर्देश करने है। इसी प्रकार, पूर्वीय भाग के लिए आर्यावर्त्त सज्ञा प्रसिद्ध हुई, ओर पश्चिम भारन का निर्देश "आर्यायण" शब्द से हुआ। आवर्त और अयन शब्द का एक ही तात्पर्य है। वही आयायण शब्द भाषा–नियम से "इरान" बन गया। ये दो सज्ञा से दोनो भागो मे आर्यो की स्थिति और उनकी प्रधानता का सकेत करती हे और भारत के सीमा-विस्तार को पुष्ट करती हे।

लाल सागर से पूर्व ओर सिन्धु नदी से पश्चिम कास्पियन सागर के दक्षिण भाग के प्रदेश के पुराने लोग ओरियन्स शब्द का व्यवहार करते थे। वह शब्द "आर्यवश" शब्द का अपभ्रश प्रनीत होता हे। यह भी अनुमान है कि ब्रह्ममय-विरोधी जरथ्रुष्ट के अनुयायी लोग विपरीतगामी होने के कारण "वागम" कहलाये—उसी का 'वा" टूटकर "मग" जाति प्रसिद्ध हुई और प्राचीन आर्यो का विरोधी होने के कारण उन्हे आर्यो का बाधक आर्यस्पश कहा गया। उनका देश भी "आर्यस्पश" कहलाया। वही शब्द "आर्यस्प" ओर धीरे-धीरे "ओरियन्स" के रूप मे आ गया। जो भी हो, इस प्रकार से वह ओरियन्स देश—"आर्यो का निकेतन", सिद्ध होता है आर इस सज्ञा से भी पश्चिम विभाग मे आर्यो का निवास स्फुट अनुमति होता है।

एरियाना शब्द, जो कि पश्चिम देशो के लिए प्रयुक्त है, वह भी आर्य निवास मूलक ही है। इण्डिया और वामनियॉ शब्द भी वहा "आर्य निवास"—मूलक ही प्रतीत होते हे।

वतमान मे आर निकट अतीत मे प्रयुक्त कतिपय सज्ञा शब्द भी इस विस्तार मीमा को सिद्ध करने मे सहायक होते है।

पश्चात् प्रयुक्त होने वाला खुरासान शब्द भी इस विषय मे प्रमाण हे। पश्चिमी भाग का राजा वरुण था, वसिष्ठ ऋषि उसके बडे मित्र थे। पुराणो म कथा प्रसिद्ध है कि कान्यकुब्ज का राजा विश्वामित्र किसी समय वसिष्ठ के पास निवास करने वाली गो नन्दिनी को हरण करने के लिए प्रवृत्त हुआ। उस नन्दिनी की इच्छा विश्वामित्र के साथ जाने की नही थी। बलात् हरण करने पर उसको बहुत क्रोध आया और क्रोधवश उसने उस भूमि को अपने खुरा के प्रहार से खोद डाला। इस बलात्कार से गौर नन्दिनी का अपहरण वसिष्ठ ऋषि भी सहन न कर सक ओर उन्होने वरुण से सहायता के लिए कहा। वरुण ने पल्हव, पारद, यवन, शक आर क्रम्बोजो को उसकी रक्षा के लिए भेजा। इन्होने विश्वामित्र को सेना—सहित पगजित किया आर गा नन्दिनी की रक्षा की। नन्दिनी के खुरो से खोदने के कारण उस

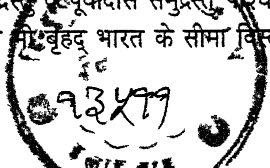
प्रदेश के निवासियो के नाम, खुरद तथा कुद हुए और इनके जनपद सघो के नाम खुर्द—स्थान या खुरासान हुए। यह खुरासान शब्द जिसका प्रयोग अकबर आदि मुगल—बादशाहो ने किया है, पश्चिमी भारत को भारत करने के लिए उपयोग मे लाया जा सकता हे। पश्चिम के देश के लिए प्रयुक्त हसेपे चसलस इरान शब्द भी आयायण से ही निष्पन्न है ओर वहा आर्यो के निवास को बतलाता हे।

यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि जब सिन्धु से पश्चिम के लालसागर तक के भारतीय प्रदेशो की इरान, फारस, खुरासान आदि सज्ञाएँ दिखाइ गई हे, तब बहुत समय से ये नाम विशेष भूभाग या विशेष देशो के वाचक केसे हुए। आज इरान, खुरासान और फारस आदि शब्द लालसागर तक के प्रदेश के वाचक नहीं, अपितु सकुचित देश विशेषो के वाचक ही हे। इनका समाधान यह है कि जिस प्रकार इन्द्रप्रस्थ, द्वारका और लका नाम के प्रदेश प्राचीनकाल मे आज की अपेक्षा बहुत विस्तृत थे, परन्तु काल क्रम से विभिन्न राजाओ के अधिकार मे सीमाओ का सकोच आर विस्तार होते रहने से आज इनका यह छोटा सीमित स्वरूप रह गया हे। यही बात इन पश्चिमी प्रदेशा की सज्ञाओं पर भी घटिन होती है। विभिन्न समयो म पश्चिमी प्रदेशा मे राजनीतिक उथल-पुथल के कारण अनेक राज्य वहा बने और बिगडे। समय-समय पर शासको ने अपनी सीमाओ के निर्धारण मे सकुचित प्रदेशो के लिए इन सज्ञाओ को रुढ कर दिया। प्रारभ मे ये विस्तृत प्रदेश की ही वाचक थी।

हमारे पुराण आदि मे पश्चिम प्रात मे मऊ (मद्र) आर केकेय देश बहुत प्रसिद्ध हे। ये बहुत बडे प्रात थे। वाल्मीकि देश भी पश्चिम का बहुत बडा प्रात था, जिसके प्रभावशाली राजा भूरिश्रवा आदि महाभारत के प्रसिद्ध योद्धा थे। वाल्मीकि के प्रात मे ही एक शाकद्वीप नाम से प्रसिद्ध स्थान था। वहा के क्षत्रिय शक कहलाते थे ओर जो ब्राह्मण उस प्रात से आकर बिहार के कुछ भाग मे रह गये हे, वे आज भी "शाकद्वीपी" नाम से जाने जाते है। आज उस देश को स्कीथिया वा स्कीदिया कहा जाता हे। इस प्रकार के बहुत सज्ञा शब्द उस देश को सस्कृतज्ञ आर्यो का निवास सिद्ध कर रहे ह। ओर भी इस बान के बहुत प्रमाण हे कि भारत पहले बहुत विस्तृत प्रदेश था। राज्य-क्रान्तियो के कारण वह पश्चिम से बहुत ही सकुचित होता गया और आज तो वह अति सकुचित दशा मे पहुँच गया हे अस्तु, शास्त्रो के अनुसार जो भारतीय सस्कृति का निरुपण होगा, उसमे इस बात का ध्यान रखना होगा कि यह उस विस्तृत देश की सस्कृति है और आज भारतीय सस्कृति मे जिन अन्य देशो की सस्कृति का सम्मिश्रण ऐतिहासिक विद्वान सिद्ध करते हे, प्राचीन शिला लेखो ओर नये आविष्कृत प्रदेशो मे सस्कृतियो का आभास वे पाते हे—वे देश भारतवष मे ही पूर्वकाल मे सम्मिलित थे। इसीलिए, भारतीय सस्कृति का स्वरूप बताने मे इस सीमा-निर्देश की आवश्यकता पूर्ति की गइ है।

प० गिरधर शर्मा के उक्त लेख से स्पष्ट हो जाता हे कि बृहद् "भारत" का क्षेत्र पश्चिम मे कालासागर से पूव म चीनसागर अर्थात् प्रशान्तसागर तक फैला हुआ था।

आसमुद्रस्तु वै पूर्वादास समुद्रस्तु पश्चिमाम्—"मनुस्मृति" वाल्मीकि रामायण (उत्तर 106/11) मे भी बृहद् भारत के सीमा विस्तार की ओर ऐसे ही इगित किया गया है—



सिन्धोरू भयत पार्श्वे देश परम् शोभन ।
तद्द रक्षन्ति गन्धर्वा सयुधा युद्ध कोविदा ।।

महाभारत (भीष्म पर्व 7/2) ओर अमर कोष के निम्न श्लोक से भी बृहद् भारत की सीमाओ का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है

लोकोअय भारत वर्ष शराबत्यास्तु यो वधै ।
देश प्राग् दक्षिण प्राच्य॰ उदीच्य॰ पश्चिमोत्तर ।
उत्तराकुरवोगजन्। पुण्या सिद्ध निषेविता।

भारतीय आर्यो का वर्चस्व

"बृहद् भारत" ही "आर्यावर्त्त" है। भारत के आर्य जहॉ-जहॉ गये, वही उन्होने अपने विशिष्ट ज्ञान का प्रचार-प्रसार किया। भारत से सबसे पहले वे (आर्य) पश्चिमोत्तर की दिशा मे गये। वहॉ उन्होने अपने आर्य धर्म का प्रचार-प्रसार किया। वेदो की रचनाओ के आधार पर उन्होने पश्चिमोत्तर प्रदेशो को ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा दी।

भारतीय आर्य जिन-जिन देशो मे गये, वहॉ-वहॉ उन्होने अपने उपनिवेश स्थापित किये। जहॉ तक आर्य पहुँचे और उनके उपनिवेश स्थापित हुए वहॉ तक आर्यावर्त्त की सीमा निर्धारित होती गयी और एक बृहद् भारत बन गया।

पश्चिमी इतिहासकारो का द्वेषपूर्ण व्यवहार

सैकडो वर्षो की गुलामी और भारतीय आर्यो के प्राचीन साहित्य एव वेदो की उपेक्षा का यह परिणाम हुआ कि यूरोप आदि पश्चिमी देशो के कुछ इतिहासकारो ने भारतीय आर्यो की श्रेष्ठता को नकारने का सुनियोजित षडयत्र रच डाला। यह तो विश्व मे स्पष्ट रूप से स्वीकार हो ही गया था कि ससार मे सर्वप्रथम सभ्य एव सुसस्कृत लोग आर्य थे। इन्हीं आर्यो ने ससार को ज्ञान चक्षु दिये।

परन्तु पश्चिमी देशो के इतिहासकारो एव विद्वानो ने भारत के सबध मे जो सबसे घटिया धारणा बनायी वह धारणा थी कि आर्य पश्चिमी देशो से भारत मे आये। कुछ पश्चिमी देशो के विद्वान यह सिद्ध कर चुके थे कि आर्य मध्य एशिया, यूरोप और यूराल पर्वत की उत्तरी जर्मन इलाके के मूल निवासी थे। कुछ पश्चिमी विद्वानो ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि आर्यो का मूल स्थान कैस्पियन सागर (मध्य एशिया) के आस-पास वाला क्षेत्र था। अधिकाश यूरोप के विद्वान आज भी इसी तर्क को मानने वाले है और तो और भारत के प्रसिद्ध विद्वान लोकमान्य तिलक ने भी अपनी पुस्तक "अवर आर्कटिक होम इन दी वेदाज" मे यह स्वीकार किया है कि आर्य उत्तरी ध्रुव मे रहते थ। उत्तरी ध्रुव के भयकर हिमपात के कारण के उस भू-भाग को छोडकर अन्यत्र चले गये। वही से आर्य भारत मे आये। पार्जीटर ने भी (ऐन्शियण्ट इडियन हिस्टारिकल ट्रेडिशन्स पृष्ठ 295) यह माना कि आर्य भारत मे पश्चिमोत्तर क्षेत्र से न आकर मध्य हिमालय के मार्ग से आये थे।

श्री नारायण पावगी ने "फ्राम दि क्रेडल टु दी कोलीनीज" मे आर्यो का सप्त-

सिन्धु से उत्तरी ध्रुव मे जाने का उल्लेख किया हे। महर्षि दयानद सुमेरू-केलास के निकट त्रिविष्टप (तिब्बत) को आर्यो की जन्मभूमि मानने हे। उनके कथनानुसार त्रिविष्टिप मे मनुष्य की आदि सृष्टि हुइ और आर्य लोग सृष्टि के आदि मे कुछ काल पश्चात् तिब्बत से सीधे इसी देश मे आकर बसे थे। दयानन्द सरस्वती का तिब्बत से अर्थ आज के तिब्बत से नही था। वे तो ऋग्वेद काल के "त्रिविष्टप" को तिब्बत मानकर अपनी बात सिद्ध करते हुए आर्यो के मूल स्थान को स्पष्ट करने ह। वास्तव मे दयानन्द सरस्वती का आशय "महाभारत के स्वर्गारोहरण" शीषक वाले "त्रिविष्टप" से हे—जिसे स्वगभूमि कहा गया हे। प्रोफेसर बेनफे श्री दयानन्द सरस्वती से सहमत है। वे लिखते हे कि आर्य कुछ समय निब्बत मे रहे। वे गढवाल आर कुमायूँ की उपत्यकाओ स होकर भारत मे आये। हर्नले और प्रो वेबर ने भी इस मत का समथन किया हे।

'आर्यो का आदि निवास मध्य हिमालय" के यशस्वी लेखक भजनसिह ने भी आर्यो का मूल निवास मध्य हिमालय के वतमान कुमायूँ-गढवाल अचल को माना हे। अपनी पुस्तक "आर्यो का आदि निवास मध्य हिमालय" म पृष्ठ 27-28 म लिखा हे

सन् 1918 म अपनी "उत्तराखड यात्रा" म स्वामी श्रद्धानद लिखते हे, उत्तराखड के अदर आय जानि की प्राचीन सभ्यता के चिन्ह अधिक पाये जाते हे। एटकिन्सन ने भी हिमालय गजेटियर (पृष्ठ 285) मे ऋग्वेदिक गढवाल का तत्त्व स्वीकार किया हे। वे लिखते हे कि वेदिक विद्यार्थियो को वेदो मे आर्यो के ऐसे सस्मरण प्राप्न हुए है जो पूणत गढवाल पर लागू होते हे। अल्बेरुनी भी हिमालय को आर्यो का आदि स्थान मानते हे। उसके कथनानुसार, व वहा से प्रतिकूल जलवायु के कारण आयावत्त मे आकर ओर वहा अनेक जाति उपजातियो मे बटकर पीछे अनेक भू-भागो मे बिखर गये। भगवतदत्त विश्व की भिन्न-भिन्न आधुनिक जानियो को आर्यो के मूल स्थान हिमालय स निकली हुइ मानते हे। उनके कथानुसार आर्य हिमालय से सीधे आकर भारतवष मे बसे। उन दिना कोइ अन्य यहा नही रहता था। इन्ही आर्यो से आगे जलवायु के प्रभाव से लाखो वर्षो के व्यतीत होने पर अनेक आधुनिक जातियॉ उत्पन्न हुइ अपने इस मन की पुष्टि मे उन्होने समस्त यूरोपियन एव भारतीय इतिहासकारो, शगीर शास्त्रियो एव भाषा वेज्ञानिको की घोषणाआ का जोरदार खडन किया हे। मध्य एशियावाद के समर्थक मेक्समूलर भी (इडिया व्हाट इट कन टीच अस) अत मे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि आयावत्त का प्राचीन देश ही गोरी जाति का उत्पत्ति स्थान हे। भारत भूमि ही मानव जाति की माता ओर विश्व की समस्त परपराओ का उद्गम स्थल है। उत्तर भारत स ही आर्यो का अभियान फारस की ओर गया।

भूगर्भशास्त्री मिडलीकट ने कुमाऊँ के उत्तर मे सूलरियन फोसिल पयाप्त मात्रा मे प्राप्त किये हे। कइ इतिहासकारो का कथन हे कि पृथ्वी के शीतल एव जीवन के पोषण योग्य हो जाने के पश्चात् सवप्रथम मध्य हिमाचल के इस समशीताष्ण पवत क्षेत्र मे प्रवाहित सरस्वती का तटवर्ती क्षेत्र, जिसका ऋग्वेद मे स्तवन हे, मानव जीवन का उत्पत्ति स्थल हे।

अविनाशचद्र दास "ऋग्वेदिक इडिया" मे भूगर्भ शास्त्र के अनुसधानो के आधार पर सप्तसिन्धु (पजाब) को आर्यो का आदि स्थान प्रमाणित करते ह। डॉ सपूणानद ने भी 'आर्यो

का आदि देश'' मे सप्तसिधु पजाब को ही आर्य जाति का मूल स्थान सिद्ध किया है। जयचन्द्र विद्यालकार अपने इतिहास प्रवेश मे लिखते है कि ''भारतीय आर्यो की अपनी अनुश्रुति अर्थात् परपरागत आख्यानो म उनके उत्तर-पश्चिम से आने की बात कही नहीं है। इसके विपरीत उसमे ऐसी चर्चा है कि वे सरस्वती के काठे से भारत के अन्य भागो की तरह उत्तर-पश्चिम की ओर फैले। साथ ही कैलाश मानसरोवर-प्रदेश और मध्य हिमालय के स्थानो की चर्चा भारतीय आर्यो की प्राचीन अनुश्रुतियो मे है, परतु उत्तर भारत मे बसने के बाद, उन प्रदेशो की ओर फैलने का कोई उल्लेख नही है। इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि आर्यो की एक शाखा पूर्वी मध्य-एशिया अर्थात् तारीम काठे से नये चरागाहो की खोज करती हुइ, पश्चिमी तिब्बत की ओर बढी और उसके दक्षिण छोर पर पहुँचने के बाद, लगभग 3000 ई० पूर्व, हिमालय के नीचे, उत्तर गगा-यमुना-सरस्वती काठो से आयी। अलकनन्दा (दून) गढवाल हिमालय के भीतर कश्मीर तक फैल गयी।''

भारतीय आर्यो के सबध मे बदलते विचार

आर्यो के आदि देश के सबध मे, आर्य-भाषा, आर्य सभ्यता एव आर्य सस्कृति की सबसे बडी कृति ऋग्वेद है। यह आर्यो का ही नही विश्व का सबसे प्राचीन ग्रथ हे। जिस रूप मे आर्य जाति का यह प्राचीन देश, आर्यो का आदि देश होना चाहिए उसके कुछ मत्रो की रचना आज से हजारो वर्ष पूर्व प्रमाणित हो चुकी है, परतु कुछ पाश्चात्य इतिहास लेखक आज से प्राय उन्हे 3500 से 4000 वर्ष पूर्व तक का भी नही मानते। अपनी धर्म पुस्तक ''बाइबल'' के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति को आज से केवल 8500 वर्ष पूर्व मानते है। वे अपने वश को अपने धर्म को, अपने देश को सबसे अधिक प्राचीन, प्रमाणित करने का दुराग्रह करते है, कृष्ण को भी क्राइस्ट बताते है, अत वे उससे पूर्व ससार मे किसी भी सभ्यता ओर किसी भी सास्कृतिक विकास की कल्पना नही करते, जबकि वास्तविकता यह है कि ऋग्वेद आज भी हजारो वर्षो से आर्यावर्त्त मे आर्य जाति द्वारा सबसे अधिक पूज्य एव प्रतिष्ठित ग्रथ है। भाषाशास्त्रियो लातीनी, ट्यूरनी, केन्ट और स्लाव भाषाओ से मिलते है। उसे स्पष्ट है कि उनके भाषा शब्दो के बोलने वालो के पूर्वज किसी समय ऋग्वेद के मूलस्थान मे रहते थे और वहा से चलकर अलग-अलग देशो मे फैल गये।

सस्कृत के विद्वान और भारतीय भाषाओ के पारखी अग्रेज जाति के प्रसिद्ध यूरोपीय शोधकर्ता विलियम जोन्स ने 1786 मे स्पष्ट कहा था कि ग्रीक भाषा की अपेक्षा सस्कृत अधिक समृद्ध भाषा हे और दोनो मे किसी की भी अपेक्षा अधिक सुचारू रूप से परिष्कृत हे। उन्होने आगे लिखा हे कि इन भाषाओ को पढने से स्पष्ट लगता है कि इनका स्रोत एक ही है। विलियम जोन्स के ऐसे विचारो की टी बरो ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द सस्कृत लेग्वेज' के पृष्ठ 6 पर उद्धृत किया है।

ऐसे ही स्पष्ट विचारो से यह स्वीकार किया जाने लगा कि सस्कृत ही विश्व की प्राय सभी उन्नत भाषाओ की जननी है। विलियम जोन्स के विचारो के बाद पश्चिमी देशो म—' एक स्रोत सस्कृत भाषा की शाखाओ के रूप मे जर्मन, स्लाव, केन्ट, ग्रीक और लेटिन

आदि भाषा-समुदायो को मिलाकर एक विशाल इडोयूरोपियन भाषा परिवार की धारणा प्रस्तुत की गइ। इसी धारणा के फलस्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध मे तुलनात्मक और ऐतिहासिक भाषा विज्ञान के क्षेत्र मे विशेष प्रगति हुई। ऐसे अध्ययनो से विश्व की प्राचीन भाषाओ के अपने विकास तथा पारस्परिक सबधो की विशेष जानकारी प्राप्त होने लगी। बहुत सी बातो एव धारणाओ मे बदलाव आया। यह सब भाषा विज्ञान और ऐतिहासिक भाषा विज्ञान का परिणाम माना गया।

इसी विशिष्ट अध्ययन प्रक्रिया का उपयोग करते हुए सर विलियम जोन्स ने सस्कृत के मातृ शब्द का अग्रेजी-मदर, फारसी-मादर का रूप एक ही माना। इसी तरह उन्होने सस्कृत पितृ को अग्रेजी फादर और फारसी-पिटर शब्द को पूर्णत समान मानकर यह निष्कर्ष निकाला कि ऐसे एक ही स्थान पर रहने वाले थे। निष्कर्ष से भारतीय एव विदेशी विशेषकर पश्चिमी राष्ट्रो की भाषा को विश्व के भाषाविदो ने मिलकर नये तथ्य निकाले, जिससे सस्कृत भाषा को विश्व के भाषाविदो ने प्राय सभी भाषाओ की जननी मानने का मन बना लिया।

यही नही भाषाविदो और पश्चिमी विद्वानो ने भारत की शब्द-सपदा को भी विशेष महत्त्व दिया। इस सदभ मे एक उदाहरण इस प्रकार हे —

फ्रासीसी विद्वान एम० लूई जैकोलियट ने "बाइबिल इडिया" में लिखा है

"हम भारत के शब्द शास्त्रियों के समक्ष उनके परिश्रम के लिए आभारी है क्योकि हमारी वर्तमान भाषा—शब्दो के मूल और उनकी धातुओं का परिचय प्राचीन भारतीय साहित्य मे मिलता हे। मिस्री, हिब्रू, ग्रीक और रोमन कानूनो पर मनु का भी प्रभाव स्पष्ट है।"

इन तथ्यो से स्पष्ट हो जाता हे कि यूरोप के विद्वान यह मानते है कि उनकी भाषाओ को जन्म देने वाली स्रोत भाषा का गहरा सबध भारत से ही है। इस प्रकार की मान्यता का आभास माक्स के एक पत्र से भी हो जाता हे। उस पत्र को उन्होने भारत की "आजादी" के पक्ष मे लिखा था। अग्रेजो के प्रभुत्व से माक्स भारतीय जनता को मुक्त देखना चाहते थे। इसी पवित्र भावना को दृष्टि मे रखकर मार्क्स ने सन् 1853 मे एक पत्र लिखा था। वह पत्र मार्क्स एगेल्स की, "फर्स्ट इडियन वार ऑफ इन्डिपेन्डेस" नामक पुस्तक के पृष्ठ 37 पर छपा हे। अवधि मे, उस महान ओर दिलचस्प देश (भारत) के लोगों के सबध मे रूसी लेखक राजकुमार साल्तिकोव के विचारो को भी उद्धृत कर इस प्रकार लिखा है —"भारतीय जन डालियन लोगो मे इतनी सज्जनता है कि पराधीन अवस्था मे रहने पर भी वे अपनी शात गरिमा को नहीं खोते। सतुलित रहकर अपनी बात कहते है। उनमे सहज आलस्य है—फिर भी उन्होने अपनी विशिष्ट प्रकार की वीरता से अग्रेजो को चकित कर दिया है।

मार्क्स ने अपने पत्र मे यह भी लिखा कि भारत के हम ऋणी है—"क्योंकि" हमारी भाषा और हमारे धर्मो का उद्गम स्थान भारत ही है। भारत के अनेक दृश्य यूरोप मे बिखरे पडे है। प्राचीन जर्मन का स्वरूप—'भारत के जाट' मे और प्राचीन यूनानी का स्वरूप, भारतीय सभ्यता और सस्कृति, भारतीय ब्राह्मण मे स्पष्ट प्रतिबिम्बित हुआ मिलता है।"

माक्स के पत्र से यह स्पष्ट हो जाता हे कि यूरोपीयन विद्वानो, भाषाविदो ने भारतीय

सभ्यता और सस्कृति को अपनाकर, भारतीय आर्य सस्कृति को अपने-अपने धर्मो एव भाषाओ की जननी मान लेने का मन बना लिया था। परतु फिर भी कुछ ऐसे विद्वान सामने आये जिन्होने भारतीय आर्य सस्कृति को श्रेष्ठ मानने से इकार कर दिया।

ऐसे कुछ पाश्चात्य भाषाविदो का यह कथन है कि यूरोप की लिथुआनिया भाषा सबसे प्राचीन है। उसमे प्राचीन भाषा का रूप विद्यमान हे। इसके उत्तर मे फिर आदि विद्वानो ने लिखा हे कि आर्यो की भाषा का अत्यन्त प्राचीन रूप "ऋग्वेद" और "अवेस्ता" मे सुरक्षित है। इसके समर्थन मे इसाक टेलर ने अपने ओरिजन ऑफ आर्यन मे लिखा हे कि आर्य जाति का आदि देश वह है जहा सस्कृत और जेन्द बोली जाती थी। लिथुआनिआई साहित्य ईसा पूर्व की 18वी शताब्दी से शुरू होता हे जबकि सस्कृत साहित्य हजारो वर्ष प्राचीन हे। आजीवन वैदिक सस्कृत का अध्ययन करनेवाले विद्वान मेक्समूलर लिखते हे 'यदि आदि मानव से हमारा आशय उन लोगो से है जो आर्य-जाति से प्रथम हुए है और जो अपने अस्तित्त्व का चिन्ह अपने पीछे साहित्य मे छोड गये हे तो मेरा विश्वास है कि वेदिक कवि ही आदि मानव है, वैदिक भाषा ही आदि भाषा है, वेदिक धर्म ही आदि धर्म हे और जो बात हमे अपनी जाति के इतिहास मे शायद ही प्राप्त हो, उसकी अपेक्षा अधिक आदिम वे ही हे।

मैक्समूलर के इस कथन से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारत का आदि धर्म वैदिक धर्म है और विश्व की मूल और आदि भाषा वैदिक भाषा ही है। परन्तु ऐसे लोगो एव विद्वानों को आचार्य किशोरीदास वाजपेयी के शब्दो मे उत्तर दिया जा सकता है –

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी अपने ग्रथ "हिन्दी शब्दानुशासन" पृष्ठ 3 मे लिखते है, "ससार मे सबसे पहले मानवता ने विकास कहा प्राप्त किया यह प्रश्न होने पर कोई भी कह देगा कि जहा भाषा का प्रादुर्भाव हुआ। परतु भाषा का प्रादुर्भाव पहले कहा हुआ? यह भी तो पूछा जाएगा ना इसका भी तो उत्तर है। जहा का साहित्य सबसे पुराना है, वहा भाषा ने सबसे पहले कृपा की। भाषा एक दिन मे नही बन जाती है, सहस्रो वर्षो से मनुष्य ने शब्दो के सकेत करके व्यवहार की भाषा बना पाई। फिर आगे जैसे-जैसे ज्ञान तथा अनुभव बढता गया भाषा का भी विस्तार होता गया। धीरे-धीरे वह भी समय आया जब भाषा मे साहित्य की सृष्टि होने लगी। विश्व का प्राचीनतम साहित्य है ऋग्वेद। ससार भर के विद्वान इस विषय मे एकमत है कि ऋग्वेद मानव की प्राचीनतम साहित्य रचना है तो साहित्य जहा बना वहीं सभ्यता ने और उसे वहन करने वाली भाषा ने सर्वप्रथम जन्म लिया।"

"अवेस्ता" के भाषान्तरकार स्पीजल अवेस्ता का अनुवाद, द्वितीय भाग मे लिखते है कि उस वैदिक सस्कृति से, जैसी वह वेदो मे लिपिबद्ध की गयी है, अन्य कोई भाषा अधिक प्राचीन एव पुराने रूपो वाली आदिम भाषा नहीं है। इस मत के समर्थन मे कर्जन जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी ग्रेट ब्रिटेन, खड 16, के पृष्ठ 172-200 तक इस प्रकार लिखते हे—"प्राचीन फारसवालो ने अपनी भाषा आर्य जाति से प्राप्त की है। वे स्वय भी उन्ही लोगो की सतान थे। ये लोग अपने बधु-बान्धवो से अलग होकर पश्चिम प्रदेशो मे जाबसे थे, अथवा धार्मिक मत-भेदो मे उत्पन्न गृहयुद्धो के कारण अपने आदि देश से निकाल दिये गये थे।" एम० इ० वनफे के समर्थन मे मैक्समूलर भी कहता है कि जेन्द

भाषा के कइ शब्दो का सस्कृत म शब्दश अनुवाद किया जासकता है। इन दोनो भाषाओ की एक-सो तक सख्याओ के नामो मे भी एकता हे।

फ्रासीसी विद्वान कूजर ने यहा तक घोषणा करदी है कि यदि ससार मे कोई देश मानव जाति का जन्म स्थान या मानव की आदि सभ्यता का क्रीडास्थल हाने का सम्मान प्राप्त कर सकता ह, आर जिनके द्वारा विद्या का वरदान, जो मानव जाति का पुनर्जीवन हे, प्राचीन काल से ससार के समस्त धर्मो तक पहुँचाया गया हे, तो इसमे कोई सदेह नही कि वह देश भारतवष ही है।

एतिहासिक ओर भाषा वज्ञानिक प्रमाणो म पश्चिमी विद्वानो को यह कहने के लिए विवश कर दिया ह कि आर्यो का मूल स्थान भारतवष ही है और सपूण आयावर्त्त मे आर्यो का ही वचस्व था। प्रसिद्ध भाषा वेज्ञानिक विद्वान ग्रियर्सन का वक्तव्य उदाहरणीय हे —

ग्रियसन न अपनी रिपोट "आन दि लिग्विस्टिक सर्वे ऑफ इडिया" मे लिखा है कि ' भारतीय मानव स्कध से उत्पन्न भारत-तूरानी अपने को वास्तविक अथ मे साधिकार आर्य कह सकते ह किन्तु हम अग्रेजा को अपने को आय कहने का अधिकार नही है" ग्रियर्सन की स्पष्टोक्ति क बाद लाड कजन का अग्रेज लोगो को आर्यवशी बताना भी आश्चयजनक बात हे। व "जनल ऑफ रायल एसियाटिक सोसाइटी ग्रेट ब्रिटेन, खड 16, के पृष्ठ 172-200 वाले पृष्ठो म यह स्वीकार करने ह कि अब नृवश विद्या, ओर भाषा विज्ञान ने हमारी आखे खोल दी हे। इसलिए लाड कजन लिखते हे —

"आयावत्त हमारी जन्मभूमि हे, वह हमारा आदि देश ह उसके अतिरिक्त हमारा अन्य कोइ उत्पत्ति स्थान नही है। भारतवर्ष के प्राचीन आर्य, हिन्दू, किसी अन्य देश से आर्यावर्त्त मे आये हे, यह कल्पना निराधार हे। इसके विरुद्ध एतिहासिक तथ्य इस प्रमाण की पुष्टि करते ह कि प्राचीन जाति का अभ्युदय, सभ्यता तथा कला-कोशल मे उनकी उन्नति उन्ही क देश की उपज हे। सब बातो की उत्पत्ति क लिए दीघकालीन अवधि अपेक्षित हे।"

ऊपर की पक्तियो स यह तथ्य पूणत सिद्ध हो गया है कि आर्यो का पश्चिमी देशो मे पर्याप्त वचस्व था। भारत से जो आय पश्चिमी देशो मे गये—उन्ही के कारण विभिन्न देशो की सस्कृति सभ्यता मे प्रगति आई। इस तथ्य से यह भी प्रमाणित हो जाता है कि पश्चिमी देशो मे रहने वाले लोग इन्ही भारतीय आर्यो के वशज थे। उनका इस प्रकार वशज होना इस तथ्य से प्रमाणित होता है कि उनकी भाषा के प्राचीनतम रूप सस्कृत से ही उद्भूत हे और यह वस्तुस्थिति कि इनकी पुराकथाए भी भारतीय आर्यो से ही गृहीत है, इसी तथ्य को प्रमाणित करती हैं। यह भी स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो गया है कि आर्य पश्चिम एशिया से भारत नही आये बल्कि भारत के सप्तसिधु अचल से पश्चिमी एशिया होकर पश्चिम के अनेक देशो मे पहुँचे। मेगस्थनीज ने भी अपनी पुस्तक "डायोडोरस" मे स्पष्ट लिखा हे—

"समस्त भारत एक विशाल देश ह ओर उसमे विभिन्न जाति के लोग निवास करते हे। उनमे एक भी व्यक्ति मूलत विदेशी वश से उत्पन्न नही हे, वरन् सभी लोग भारत के आदि निवासियो की ही सन्तान हे।"

सभ्यता और सस्कृति को अपनाकर, भारतीय आर्य सस्कृति को अपने-अपने धर्मो एव भाषाओ की जननी मान लेने का मन बना लिया था। परतु फिर भी कुछ ऐसे विद्वान सामने आये जिन्होने भारतीय आर्य सस्कृति को श्रेष्ठ मानने से इकार कर दिया।

ऐसे कुछ पाश्चात्य भाषाविदो का यह कथन है कि यूरोप की लिथुआनिया भाषा सबसे प्राचीन है। उसमे प्राचीन भाषा का रूप विद्यमान हे। इसके उत्तर मे फिर आदि विद्वानो ने लिखा है कि आर्यो की भाषा का अत्यन्त प्राचीन रूप ''ऋग्वेद'' और ''अवेस्ता'' मे सुरक्षित है। इसके समर्थन मे इसाक टेलर ने अपने ओरिजन ऑफ आर्यन मे लिखा हे कि आर्य जाति का आदि देश वह है जहा सस्कृत और जेन्द बोली जाती थी। लिथुआनिआई साहित्य ईसा पूर्व की 18वी शताब्दी से शुरू होता है जबकि सस्कृत साहित्य हजारो वर्ष प्राचीन हे। आजीवन वैदिक सस्कृत का अध्ययन करनेवाले विद्वान मेक्समूलर लिखते है 'यदि आदि मानव से हमारा आशय उन लोगो से है जो आर्य-जाति से प्रथम हुए है और जो अपने अस्तित्त्व का चिन्ह अपने पीछे साहित्य मे छोड गये है तो मेरा विश्वास है कि वेदिक कवि ही आदि मानव है, वैदिक भाषा ही आदि भाषा है, वेदिक धर्म ही आदि धर्म है और जो बात हमे अपनी जाति के इतिहास मे शायद ही प्राप्त हो, उसकी अपेक्षा अधिक आदिम वे ही हे।

मैक्समूलर के इस कथन से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारत का आदि धर्म वैदिक धर्म है और विश्व की मूल और आदि भाषा वैदिक भाषा ही हे। परन्तु ऐसे लोगो एव विद्वानों को आचार्य किशोरीदास वाजपेयी के शब्दो मे उत्तर दिया जा सकता है –

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी अपने ग्रथ ''हिन्दी शब्दानुशासन'' पृष्ठ 3 मे लिखते है, ''ससार मे सबसे पहले मानवता ने विकास कहा प्राप्त किया यह प्रश्न होने पर कोई भी कह देगा कि जहा भाषा का प्रादुर्भाव हुआ। परतु भाषा का प्रादुर्भाव पहले कहा हुआ? यह भी तो पूछा जाएगा ना इसका भी तो उत्तर है। जहा का साहित्य सबसे पुराना है, वहा भाषा ने सबसे पहले कृपा की। भाषा एक दिन मे नही बन जाती है, सहस्रो वर्षो से मनुष्य ने शब्दो के सकेत करके व्यवहार की भाषा बना पाई। फिर आगे जैसे-जैसे ज्ञान तथा अनुभव बढता गया भाषा का भी विस्तार होता गया। धीरे-धीरे वह भी समय आया जब भाषा मे साहित्य की सृष्टि होने लगी। विश्व का प्राचीनतम साहित्य है ऋग्वेद। ससार भर के विद्वान इस विषय मे एकमत है कि ऋग्वेद मानव की प्राचीनतम साहित्य रचना है तो साहित्य जहा बना वहीं सभ्यता ने और उसे वहन करने वाली भाषा ने सर्वप्रथम जन्म लिया।''

''अवेस्ता'' के भाषान्तरकार स्पीजल अवेस्ता का अनुवाद, द्वितीय भाग मे लिखते हे कि उस वैदिक सस्कृति से, जेसी वह वेदो मे लिपिबद्ध की गयी है, अन्य कोई भाषा अधिक प्राचीन एव पुराने रूपो वाली आदिम भाषा नहीं है। इस मत के समर्थन मे कर्जन जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी ग्रेट ब्रिटेन, खड 16, के पृष्ठ 172-200 तक इस प्रकार लिखते हे–''प्राचीन फारसवालो ने अपनी भाषा आर्य जाति से प्राप्त की है। वे स्वय भी उन्ही लोगो की सतान थे। ये लोग अपने बधु-बान्धवो से अलग होकर पश्चिम प्रदेशो मे जाबसे थे, अथवा धार्मिक मत-भेदो मे उत्पन्न गृहयुद्धो के कारण अपने आदि देश से निकाल दिये गये थे।'' एम० ई० वनफे के समर्थन मे मैक्समूलर भी कहता हे कि जेन्द

भाषा के कई शब्दो का सस्कृत म शब्दश अनुवाद किया जासकता है। इन दोनो भाषाओ की एक-सौ तक सख्याओ के नामो मे भी एकता है।

फ्रासीसी विद्वान कूजर ने यहा तक घोषणा करदी हे कि यदि ससार मे कोई देश मानव जाति का जन्म स्थान या मानव की आदि सभ्यता का क्रीडास्थल होने का सम्मान प्राप्त कर सकना ह, आर जिनके द्वारा विद्या का वरदान, जो मानव जाति का पुनर्जीवन है, प्राचीन काल स ससार के समस्त धर्मो तक पहुँचाया गया है, तो इसमे कोई सदेह नही कि वह देश भारतवष ही है।

एतिहासिक ओर भाषा वैज्ञानिक प्रमाणो मे पश्चिमी विद्वानो को यह कहने के लिए विवश कर दिया ह कि आर्यो का मूल स्थान भारतवष ही है और सपूण आर्यावत्त मे आर्यो का ही वचस्व था। प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक विद्वान ग्रियसन का वक्तव्य उदाहरणीय ह –

ग्रियसन ने अपनी रिपोट "आन दि लिग्विस्टिक सर्वे ऑफ इडिया" मे लिखा है कि "भारतीय मानव स्कध से उत्पन्न भारत-नूरानी अपने को वास्तविक अथ मे साधिकार आर्य कह सकते हे किन्तु हम अग्रेजा को अपने को आय कहने का अधिकार नही है" ग्रियसन की स्पष्टाक्ति के बाद लार्ड कजन का अग्रेज लोगो को आर्यवशी बताना भी आश्चयजनक बात हे। वे "जनल ऑफ रायल एसियाटिक सोसाइटी ग्रेट ब्रिटन, खड 16, के पृष्ठ 172-200 वाल पृष्ठा मे यह स्वीकार करते है कि अब नृवश विद्या, ओर भाषा विज्ञान ने हमारी आखे खोल दी हे। इसलिए लाड कजन लिखते हे –

"आयावत्त हमारी जन्मभूमि हे, वह हमारा आदि देश है उसके अतिरिक्त हमारा अन्य कोइ उन्पत्ति-स्थान नही हे। भारतवर्ष के प्राचीन आर्य, हिन्दू, किसी अन्य देश से आर्यावर्त्त मे आये हे, यह कल्पना निराधार हे। इसके विरुद्ध एतिहासिक तथ्य इस प्रमाण की पुष्टि करते ह कि प्राचीन जाति का अभ्युदय, सभ्यता तथा कला-कौशल मे उनकी उन्नति उन्ही के देश की उपज हे। सब बातो की उत्पत्ति के लिए दीघकालीन अवधि अपेक्षित है।"

ऊपर की पक्तियो स यह तथ्य पूणत सिद्ध हो गया है कि आर्यो का पश्चिमी देशो मे पर्याप्त वर्चस्व था। भारत से जो आर्य पश्चिमी देशो मे गये—उन्ही के कारण विभिन्न देशो की सस्कृति सभ्यता मे प्रगति आइ। इस तथ्य से यह भी प्रमाणित हो जाता हे कि पश्चिमी देशो मे रहने वाले लोग इन्ही भारतीय आर्यो के वशज थे। उनका इस प्रकार वशज होना इस तथ्य स प्रमाणित होता है कि उनकी भाषा के प्राचीनतम रूप सस्कृत से ही उद्भूत हे और यह वस्तुस्थिति कि इनकी पुराकथाए भी भारतीय आर्यो से ही गृहीत है, इसी तथ्य को प्रमाणित करती है। यह भी स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो गया है कि आर्य पश्चिम एशिया से भारत नही आये बल्कि भारत के सप्तसिधु अचल से पश्चिमी एशिया होकर पश्चिम के अनेक देशो मे पहुँचे। मेगस्थनीज ने भी अपनी पुस्तक "डायोडोरस" मे स्पष्ट लिखा है—

"समस्त भारत एक विशाल देश हे ओर उसमे विभिन्न जाति के लोग निवास करते है। उनमे एक भी व्यक्ति मूलत विदेशी वश से उत्पन्न नही है, वरन् सभी लोग भारत के आदि निवासियो की ही सन्तान हे।"

मध्य एशियावाद दोषपूर्ण प्रमाणित

पश्चिमी इतिहासकारो एव अनेक विद्वानो ने जो सिद्धात आर्यो के सबध मे स्थापित किया था—वह दोषपूर्ण प्रमाणित हो गया है। इस सिद्धात को दोषपूर्ण सिद्ध करने मे निम्नलिखित मुख्य कारण बताये गये है —

1 पुरातत्त्वविदो ने यह स्पष्ट कर दिया है कि अतिम भौगोलिक युग अर्थात् 12,000 से 10,000 ईसा वर्ष पूर्व तक समस्त मध्य एशिया का भूमध्यसागर का अचल अनेक दलदलो के कारण मनुष्य निवास के सर्वथा अयोग्य था। इसे जन जीवन के योग्य बनने मे पर्याप्त समय अर्थात् 10 हजार वर्ष से 15 हजार वष का समय लगा। ऐसी दशा मे जहा मानव नही थे, वहा मानव सभ्यता का होना भी सभव न था।

2 पुरातत्त्वेत्ताओ ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि पामीर का पठार रहने योग्य नही है। अत यहा भी आर्यो का निवास नही हो सकता था।

3 ऋग्वेदिक ग्रह नक्षत्रो की स्थितियो पर आधारित लोकमान्य तिलक की मान्यताये भी कइ वैदिक विद्वानो एव गणितज्ञो द्वारा अमान्य हो चुकी हे। डॉ० सपूर्णानन्द ने भी 'आर्यो का आदि देश' मे लोकमान्य के अनुमान्ो का युक्तियुक्त खडन किया है। उन्होने ध्रुव देश की पुष्टि मे लोकमान्य द्वारा उद्धृत (ऋ० 7/67/2 तथा 7/76/2) "अभूदु केतुरूस पुरस्तात्प्रतीध्यागादधिहम्र्येय" मत्र के प्रतीची शब्द से ही प्रमाणित किया हे कि ऋग्वेदिक आर्यो का उषा का केतु प्रतीची (पूर्व) दिशा मे दिखाई देता हे यह बात ध्रुव देश मे नही होती। वहा से उषा का केतु दक्षिण मे दिखाई देता है

4 भूगर्भ शास्त्रियो के अनुसार आज से छ-सात करोड वर्ष पूर्व भारत मे केम्ब्रियन युग की चट्टाने पाई जाती है जो ध्रुव देश मे नही हे। उत्तरी ध्रुव क्षेत्र मे जीवन शक्ति प्रारभ होने से पूर्व आर्यावर्त्त मे जीवन का अस्तित्व पाया जाता है। इसलिए लोकमान्य तिलक की धारणा भी अब मान्य नहीं है।

5 आर्यावर्त्त शब्द से जहा किसी अन्य क्षेत्र से आने का बोध होता हे वहा वैदिक वाड्मय मे आय जाति का किसी अन्य देश से यहा आने का प्रमाण नही मिलता। वस्तुत आर्य आर्यावर्त्त मे मिले, उत्तरगिरि प्रदेश (ब्रह्मवर्त्त) से, तराई के समुद्र सूख जाने के बाद आर्यावर्त्त मे आये थे। अत उनका किसी अन्य देश से यहा आने का प्रश्न ही नही उठता। प्रो० टी० मुरो अपनी "सस्कृत भाषा" नामक पुस्तक मे लिखते है कि भारतवर्ष पर इण्डो-आयन आक्रमण अप्रामाणिक हे। ऋग्वेद के मूल पाठ मे कही कोई ऐसी स्मृति का सकेन तक नहीं है कि वे कही बाहर से आये है।

6 प्राय अधिकाश वदिक विद्वान इस बात से सहमत है कि वेदिक वाड्मय मे आर्य जानि का किसी अन्य देश से आने का कोई प्रमाण नही मिलता। ऋग्वेद के प्रसिद्ध नदी सूक्त मे भी आयावर्त्त से बाहर किसी अन्य देश की नदियो का नाम नही है। नदी सूक्त मे वर्णित नदिया गगा, यमुना, सरस्वती जिस प्रदेश मे बहती हे, वही सप्तसिन्धु देश आर्यो का आदि देश हे। इसवी से 5,000 वर्ष पूव सिन्धु घाटी सप्तसिन्धु सभ्यता मे जिन वेदो

का उल्लेख हे उससे वैदिक सभ्यता की प्राचीनता स्पष्ट है।

7 सिन्धु घाटी के मोहन जोदडो, हडप्पा के अवशेषो मे प्राप्त लिपि को चित्रलिपि बतलाते हुए, विश्वविख्यात पुरालिपिविद् और बेबीलोनियम इतिहास के आचार्य डॉ० लैग्डन और डॉ० सी० एफ० गौड ने 'साइन लिस्ट ऑफ अर्ली इडस स्क्रिप्ट' मे लिखा है कि वे किसी आर्य भाषा के नाम हे। भारत मे आर्य जाति उससे कही अधिक प्राचीन है, जितना अब तक इतिहास मे बतलाया गया। भारतीय आय, आर्य जाति के सर्वप्राचीन प्रतिनिधि हे अत उनकी ही वह लिपि है।

8 उन अवशेषो से यह स्पष्ट हो गया कि ई० पू० 1,700 के लगभग, एशिया भाइनर मे अनातोलिया से होकर आर्यो का अभियान भारत मे पहुँचा वह पूर्णत गलत सिद्ध हो गया हे, बल्कि अब यह सिद्ध हो चुका है कि भारन से आर्यो का एक अभियान ई० से 1,700 वर्ष पहले पश्चिमी देशो मे गया।

9 डॉक्टर सम्पूर्णानन्द ' आर्यो का आदि देश'' मे लिखते है कि विद्वानो का बहुमत भी यही हे कि ''आर्य प्राचीन पारिसियो (ईरानियों) के पूर्वज थे। जो आर्य उपजाति थी उसकी दो ही निश्चित शाखाएँ हुई। एक वह जिसका सबध भारत से था, दूसरी वह जिसका सबध इरान से हुआ। पहली की भाषा सस्कृत, दूसरी की जेन्द या पहलवी थी। पहली का धमग्रथ वद, दूसरी का अवेस्ता है। किसी समय ये दोनो एक थे। इसके तो शत-शत प्रमाण हे। उनके कथनानुसार, मोहनजोदडो से वैदिक सभ्यता कम-से-कम चार-पाच हजार वर्ष पुरानी है। यह तथ्य भी यही सिद्ध करता हे कि ईरान भी आर्यवशी लोगो का ही देश था।

10 श्री नारायण पावगी ने अपनी पुस्तक ''दि आर्यवर्तक होम ऐड दि आर्यन क्रैडल इन दि सप्तसिन्धुज'' मे अनेक भारतीय एव विदेशी भाषाशक्तियो, पुरातत्त्वान्वेषियो एव भूगभवेत्ताओ के निष्कर्षो का सप्रमाण खडन करके, सप्तसिन्धु को ही आर्य जाति का मूल स्थान प्रतिपादित किया है। उनका मत है कि आर्य सरस्वती नदी के देश से उत्तरी ध्रुव देशो को गये और वहा दीघकाल तक निवास करने के बाद महाविष्णु के आरभ होने पर, जब जल प्लावन ने वहा की भूमि को आप्लावित कर दिया, तो वे हिमालय के मार्ग से अपने आदि देश आर्यावर्त्त को लौट गये, क्योकि शतपथ ब्राह्मण मे वर्णित अपने पूर्व परिचित उत्तरगिरि का एकमात्र सर्वोच्च शरणस्थल उन्हे स्मरण था। इस कथन से भी यही प्रमाणित होता है कि आर्यो का मूल स्थान सप्तसेधन था।

11 डॉ राधाकुमुद मुकर्जी ने अपनी पुस्तक ''हिन्दू सभ्यता'' (हिन्दी अनुवाद) के पृष्ठ 153 मे लिखा है कि आर्यो का अनुश्रुतिमूलक इतिहास (1) ऐल, (2) सौदधुमन और (3) मानव, इन तीन वर्शो से आरभ होता है। ऐलो का मूल निवास कही मध्य हिमालय का प्रदेश या उत्तरी देश था। भारतीय अनुश्रुति मे आर्यो का उत्तर पश्चिम से या भारत के बाहर से अथवा पश्चिम से पूर्व की ओर प्रसार का तनिक भी उल्लेख नहीं है। इसके विपरीत, ऐलो के इस देशो से बाहर जाने और उत्तर-पश्चिम की ओर से सिधु पार के देशो मे फैल जाने का वर्णन है। ऋग्वेद (10/75) मे गगा से लेकर नदियो की सूची पूर्व से उत्तर-पश्चिम की ओर बढती हुई दी गयी है, इस नदी की सूची से ऐलो के उत्तर-पश्चिमी

मध्य एशियावाद दोषपूर्ण प्रमाणित

पश्चिमी इतिहासकारो एव अनेक विद्वानो ने जो सिद्धात आर्यो के सबध मे स्थापित किया था—वह दोषपूर्ण प्रमाणित हो गया है। इस सिद्धात को दोषपूर्ण सिद्ध करने मे निम्नलिखित मुख्य कारण बताये गये है —

1 पुरातत्त्वविदो ने यह स्पष्ट कर दिया है कि अतिम भौगोलिक युग अर्थात् 12,000 से 10,000 ईसा वर्ष पूर्व तक समस्त मध्य एशिया का भूमध्यसागर का अचल अनेक दलदलो के कारण मनुष्य निवास के सर्वथा अयोग्य था। इसे जन जीवन के योग्य बनने मे पर्याप्त समय अर्थात् 10 हजार वर्ष से 15 हजार वर्ष का समय लगा। ऐसी दशा मे जहा मानव नही थे, वहा मानव सभ्यता का होना भी सभव न था।

2 पुरातत्त्वेत्ताओ ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि पामीर का पठार रहने योग्य नही है। अत यहा भी आर्यो का निवास नही हो सकता था।

3 ऋग्वेदिक ग्रह नक्षत्रो की स्थितियो पर आधारित लोकमान्य तिलक की मान्यताये भी कई वैदिक विद्वानो एव गणितज्ञो द्वारा अमान्य हो चुकी हे। डॉ० सपूर्णानन्द ने भी 'आर्यो का आदि देश' मे लोकमान्य के अनुमानो का युक्तियुक्त खडन किया है। उन्होने ध्रुव देश की पुष्टि मे लोकमान्य द्वारा उद्धृत (ऋ० 7/67/2 तथा 7/76/2) "अभूदु केतुरूस पुरस्तात्प्रतीध्यागादधिहर्म्येय " मत्र के प्रतीची शब्द से ही प्रमाणित किया है कि ऋग्वेदिक आर्यो का उषा का केतु प्रतीची (पूर्व) दिशा मे दिखाई देता है यह बात ध्रुव देश मे नही होती। वहा से उषा का केतु दक्षिण मे दिखाई देता है

4 भूगर्भ शास्त्रियो के अनुसार आज से छ -सात करोड वर्ष पूर्व भारत मे केम्ब्रियन युग की चट्टाने पाई जाती है जो ध्रुव देश मे नही हे। उत्तरी ध्रुव क्षेत्र मे जीवन शक्ति प्रारभ होने से पूर्व आर्यावर्त्त मे जीवन का अस्तित्व पाया जाता है। इसलिए लोकमान्य तिलक की धारणा भी अब मान्य नहीं है।

5 आर्यावर्त्त शब्द से जहा किसी अन्य क्षेत्र से आने का बोध होता हे वहा वेदिक वाड्मय मे आर्य जाति का किसी अन्य देश से यहा आने का प्रमाण नही मिलता। वस्तुत आय आर्यावर्त्त मे मिले, उत्तरगिरि प्रदेश (ब्रह्मवत्त) से, तराई के समुद्र सूख जाने के बाद आर्यावत्त मे आये थे। अत उनका किसी अन्य देश से यहा आने का प्रश्न ही नही उठता। प्रो० टी० मुरो अपनी "सस्कृत भाषा" नामक पुस्तक मे लिखते हे कि भारतवर्ष पर इण्डो-आयन आक्रमण अप्रामाणिक है। ऋग्वेद के मूल पाठ मे कही कोई ऐसी स्मृति का सकेत तक नहीं है कि वे कहीं बाहर से आये है।

6 प्राय अधिकाश वेदिक विद्वान इस बात से सहमत है कि वेदिक वाड्मय मे आर्य जाति का किसी अन्य देश से आने का कोई प्रमाण नही मिलता। ऋग्वेद के प्रसिद्ध नदी सूक्त मे भी आयावत्त से बाहर किसी अन्य देश की नदियो का नाम नही है। नदी सूक्त मे वर्णित नदिया गगा, यमुना, सरस्वती जिस प्रदेश मे बहती है, वही सप्तसिन्धु देश आर्यो का आदि देश हे। इसवी से 5,000 वर्ष पूर्व सिन्धु घाटी सप्तसिन्धु सभ्यता मे जिन वेदो

का उल्लेख हे उससे वैदिक सभ्यता की प्राचीनता स्पष्ट है।

7 सिन्धु घाटी के मोहन जोदडो, हडप्पा के अवशेषो मे प्राप्त लिपि को चित्रलिपि बतलाते हुए, विश्वविख्यात पुरालिपिविद् और बेबीलोनियम इतिहास के आचार्य डॉ० लैग्डन और डॉ० सी० एफ० गौड ने 'साइन लिस्ट ऑफ अर्ली इडस स्क्रिप्ट' मे लिखा है कि वे किसी आर्य भाषा के नाम हे। भारत मे आर्य जाति उससे कहीं अधिक प्राचीन है, जितना अब तक इतिहास मे बतलाया गया। भारतीय आर्य, आर्य जाति के सर्वप्राचीन प्रतिनिधि है अत उनकी ही वह लिपि है।

8 उन अवशेषो से यह स्पष्ट हो गया कि ई० पू० 1,700 के लगभग, एशिया भाइनर मे अनातोलिया से होकर आर्यो का अभियान भारत मे पहुँचा वह पूर्णत गलत सिद्ध हो गया हे, बल्कि अब यह सिद्ध हो चुका है कि भारत से आर्यो का एक अभियान ई० से 1,700 वष पहले पश्चिमी देशो मे गया।

9 डॉक्टर सम्पूर्णानन्द "आर्यो का आदि देश" मे लिखते हे कि विद्वानो का बहुमत भी यही हे कि "आर्य प्राचीन पारिसियो (ईरानियों) के पूर्वज थे। जो आर्य उपजाति थी उसकी दो ही निश्चित शाखाएँ हुई। एक वह जिसका सबध भारत से था, दूसरी वह जिसका सबध इरान से हुआ। पहली की भाषा सस्कृत, दूसरी की जेन्द या पहलवी थी। पहली का धमग्रथ वेद, दूसरी का अवेस्ता है। किसी समय ये दोनो एक थे। इसके तो शत-शत प्रमाण हे। उनके कथनानुसार, मोहनजोदडो से वैदिक सभ्यता कम-से-कम चार-पाच हजार वर्ष पुरानी है। यह तथ्य भी यही सिद्ध करता है कि ईरान भी आर्यवशी लोगो का ही देश था।

10 श्री नारायण पावगी ने अपनी पुस्तक "दि आर्यविर्तक होम ऐड दि आर्यन क्रैडल इन दि सप्तसिन्धुज" मे अनेक भारतीय एव विदेशी भाषाशक्तियो, पुरातत्त्वान्वेषियो एव भूगभवेत्ताओ के निष्कर्षो का सप्रमाण खडन करके, सप्तसिन्धु को ही आय जाति का मूल स्थान प्रतिपादित किया है। उनका मत है कि आर्य सरस्वती नदी के देश से उत्तरी ध्रुव देशो को गये ओर वहा दीघकाल तक निवास करने के बाद महाविष्णु के आरभ होने पर, जब जल प्लावन ने वहा की भूमि को आप्लावित कर दिया, तो वे हिमालय के मार्ग से अपने आदि देश आर्यावर्त्त को लौट गये, क्योकि शतपथ ब्राह्मण मे वर्णित अपने पूर्व परिचित उत्तरगिरि का एकमात्र सर्वोच्च शरणस्थल उन्हे स्मरण था। इस कथन से भी यही प्रमाणित होता है कि आर्यो का मूल स्थान सप्तसेधन था।

11 डॉ राधाकुमुद मुकर्जी ने अपनी पुस्तक "हिन्दू सभ्यता" (हिन्दी अनुवाद) के पृष्ठ 153 मे लिखा है कि आर्यो का अनुश्रुतिमूलक इतिहास (1) ऐल, (2) सौदधुमन और (3) मानव, इन तीन वर्शो से आरभ होता है। ऐलो का मूल निवास कहीं मध्य हिमालय का प्रदेश या उत्तरी देश था। भारतीय अनुश्रुति मे आर्यो का उत्तर पश्चिम से या भारत के बाहर से अथवा पश्चिम से पूर्व की ओर प्रसार का तनिक भी उल्लेख नहीं है। इसके विपरीत, ऐलो के इस देशो से बाहर जाने और उत्तर-पश्चिम की ओर से सिधु पार के देशो मे फैल जाने का वर्णन है। ऋग्वेद (10/75) मे गगा से लेकर नदियो की सूची पूर्व से उत्तर-पश्चिम की ओर बढती हुई दी गयी है, इस नदी की सूची से ऐलों के उत्तर-पश्चिमी

के बाहर उनके विस्तार को प्रमाणित करती है। इसी प्रकार, ऋग्वेदीय दाशराज्ञ युद्ध मे उत्तर पाचाल मे घुसकर दिग्विजय करने का वर्णन हे। यह इस मत के भी अनुकूल हे कि ऋग्वेद का अधिकाश भाग गगा-यमुना की अतर्वेदी के ऊपरी भाग मे रचा गया।

12 आर्य मध्य एशिया अथवा किसी अन्य देश से भारतवर्ष मे आये हे, यह तर्क हास्यास्पद है। आर्यो ने सप्तसिधु से बाहर के निवासियो को अत्यत घृणापूर्वक दृष्टि से देखा और उन्हे यदि ऐसे म्लेच्छ देशो से आये होते तो कभी भी इन देशो को इस दृष्टि से नही देखते अब यह कहना कि आर्य म्लेच्छ हो गया वे स्वय म्लेच्छ देशो से है, यह घोषणा युक्ति सगत नही हे। लार्ड एलफिन्स्टन इस सबध मे भारत का इतिहास भाग 1, पृष्ठ 95 मे लिखते हे, ‘‘यह कहना कि हिन्दुओ की उत्पत्ति विदेशो मे हुई हे पूर्णत तथ्यहीन है, क्योकि न तो स्मृति-ग्रथो मे ओर मेरा विश्वास है, न वेदो मे ओर न किसी अन्य ग्रथ मे, जो स्मृति ग्रथो एव वेद वाड्मय की अपेक्षा अधिक प्राचीन हो, आर्यो के सबध मे भारतवर्ष से बाहर अन्य किसी देश की ओर कोई सकेत है। यहा तक कि पुरा कथाशास्त्र भी इसे हिमालय पर्वतमाला से आगे नही देता। हिमालय पर्वतमाला के अतिरिक्त जिसको उन्होने देवताओ का निवास स्थान बताया है। उस हिमालय से देखने सुनने और पढने मे नही आती। इससे भी यही झलकता है कि आर्यो का मूल स्थान हिमालय ही था।

13 इस पुस्तक के पृष्ठ 26 पर लिखते हे, मानव जाति का वह शक्तिशाली अभियान जिसने पजाब की अनुल्लघनीय दीवारो को पार किया, विश्व की नेतिकता की वृद्धि मे अपने लोक-कल्याणकारी उद्देश्य की पूर्ति के लिए यूरोप और एशिया की ओर अपने निश्चित राजपथो से होकर बढता गया, पश्चिमोत्तर मे सिधु को पार कर जो उत्पीडित मानव समुदाय आया वह विज्ञान और कला के बीजो को भी साथ लेता गया। ब्राह्मण और बोद्ध धर्म से आज भी एशिया का बृहत्तर भाग प्रभावित हे।

ब्राह्मण धर्म और बौद्ध धर्म के दीर्घकालीन सघर्षो से पराजित बौद्धधर्म अपने उत्पीडको से दूर बैक्ट्रिया, फारस, एशिया, माइनर, यूनान, फैनिशिया और ग्रेट ब्रिटेन को चला था आर अपने प्राचीन ऋषि पूर्वजों की श्रद्धा, आश्चर्यजनक व्यवसायकुशलता एव ज्योतिष ओर तत्र-मत्र विद्याओ की असाधारण क्षमता भी साथ लेता गया।

पश्चिमी विश्व में आर्यसभ्यता के प्रमाण

यह भी आश्चयजनक सत्य है कि पश्चिमी ससार मे भारतीय आर्यो के पहुँचने और उसकी सभ्यता और सस्कृति के पुष्ट प्रमाण मिले है। इन तथ्यो को उजागर करने वाले इतिहासकार ओर भाषाविद् भी पश्चिमी दुनिया के ही जाने-माने विद्वान है।

‘‘नेशन्स ऑफ ऐन्टिवेटी’’ के जग विख्यात लेखक कुक टेलर ने अपनी प्रसिद्ध कृति स्टूडेन्ट मेन्युअल ऑफ एनशियन्ट हिस्ट्री’’ मे इस प्रकार लिखते है –

14 मेरा ऐसा अनुमान् ह कि मिश्री सभ्यता को हिन्दुओ से प्रेरणा मिली होगी, इन दोनो जातियो द्वारा स्थापित सस्थाओ मे असदिग्ध रूप से अनेक समानताये दिल्ली से लेकर अफ्रीका के अतिम छोर तक, जहा आर्य लोग नील नदी तथा मिश्री सीमा के दक्षिणी छोर

तक पहुँच चुके थे, उनके द्वारा छोटे-छोटे उपनिवेशो की स्थापना के पुष्ट प्रमाण मिलते है। वण व्यवस्था इस जाति मे ओर हिन्दुओ मे एक-सी हे। श्री थोटन भी भारत के इतिहास म स्वीकार करते हे कि नील नदी की घाटी मे जब पिरामिडो के निर्माण म अल्पकाल ही हुआ था। आधुनिक सभ्यता की जन्मभूमि यूनान ओर इटली जब अध सभ्यो का ही निवास स्थान था, तब भारन समृद्धिशाली ओर गौरवपूर्ण हो चुका था।

"कुक टेलर" जेसा पश्चिमी विद्वान, एव इतिहास जब यह स्वीकार करता हे कि भारतीय आर्यो का वचस्व मिश्र देश ओर अफ्रीका तक पहुँच चुका था, तो यह ससार के इतिहासकारो के लिए एक चुनोती थी। परतु उनके ऐसे निणयो ने विश्व के इतिहासकारो को नये सिरे से सोचने के लिए विवश किया आर कालान्तर मे "इस सोच" का अत्यत लाभदायक परिणाम भी निकला।

अमेरिका मे भी आर्यो के उपनिवेश

अमेरिका म भी आर्यो के उपनिवेश स्थापिन हो गये थे। इस तथ्य को सत्य प्रमाणित करने वाले प्रसिद्ध विद्वान एव इनिहामकार ' कोलमेन" का भी विशेष योगदान हे। उन्होने अपनी पुम्तक "हिन्दू मेथालोजी" के पृष्ठ 350 पर इस तथ्य पर प्रकाश डाला हे।

15 जमन के प्रसिद्ध यात्री ओर वैज्ञानिक बेरन हम्बोल्ट अमरिका मे विद्यमान हिन्दू सभ्यता के अवशेषो के अस्तित्व का उल्लेख करते ह। मैकिस्को के निवासी, जिनकी सभ्यता बारहवी सदी नक उन्नति पर थी, एस देवता की पूजा करते थे, जिसका धड मनुष्य का आर सिर हाथी का था। बरन हम्बोल्ट के कथनानुसार स्पष्टत वह हिन्दुओ का गणेश हे। 'मेन्युअल ऑफ हिस्टोरिकल डेवलपमेट ऑफ आर्ट' मे डॉ० जफी, अमेरिका के प्राचीन भवन समूहो मे कइ आश्चयजनक मदिरो, दुर्गो, पुलो ओर नहरो का उल्लेख करते हे, जो आर्यो द्वारा निमिन ह। सर विलियम जोन्स एशियाटिक रिसर्चीज वाल्यूम, के पृष्ठ 436 पर लिखते हे कि राम को सीता का पति आर सूयवशी बताया गया हे। यह बान अत्यत आश्चर्यजनक हे कि पेरू प्रदेश के लोग अपनी उत्पत्ति "रामसित्व" से बताकर गर्व अनुभव करते हे आर राम-सीता के नाम से उत्सव भी मनाते हे। इससे हमारा अनुमान हे कि दक्षिणी अमेरिका को आय जाति ने ही बसाया था, जो सुदूर एशिया से चलकर यहा, राम का जीवन इतिहास तथा रीति व्यवहार अपने साथ लेती आयी थी।

16 मेक्सिको निवासियो क उत्सव, चार युगो का काल विभाजन, सगोत्री सपिड विवाह, देवतावाद, नारियो पर नियत्रण, बलिप्रथा, मूर्तिपूजन, स्थापत्यकला, सूर्य चद्र पर आधारित ग्रह विज्ञान, शवो का दाहसस्कार आदि सपूण सस्कृति पर भारतीय प्रभाव स्पष्ट है। चमनलाल ने अपने हिन्दू इडिया ग्रथ मे इस तथ्य को सचित्र एव सप्रमाण सिद्ध किया हे कि मैक्सिको के लोगो पर आय जाति का पूर्ण प्रभाव हे। वहा तक आय पहुँचे थे।

17 एल एम जेकोलियट अपनी पुस्तक "बाईबल इन इडिया" के पृष्ठ 20 पर इस प्रकार उल्लेख करते हुए लिखते हे, "कुछ इतिहासकारो का मन हे कि भारत ने मिस्र से उनकी वणव्यवस्था, भाषा ओर कानून लिए हे, जबकि मिस्र ने ही सब कुछ भारत से लिया

है।" इस प्रकार इस ससार मे ऐसी कोई जाति नही है, जो धर्म एव सभ्यता की प्राचीनता के सबध मे हिन्दुओ की बराबरी कर सके। थौर्टन अपने "भारत का इतिहास" मे लिखते है कि जब नील नदी के क्षेत्र मिश्र मे पिरामिडो को बने हुए थोडा ही समय व्यतीत हुआ था, और यूनान और इटली मे, जो आज आधुनिक सभ्यता के आगे माने जाते है, अर्द्धसभ्य लोग रहते थे, उस समय भारतवर्ष सर्वसम्पन्न और सभ्यना के पूर्ण शिखर पर आसीन हो चुका था।

18 श्रीमती विसेट "आन इडिया एण्ड इट्स मिशन" मे लिखती हे कि यूनान या रोम से भारत अधिक प्राचीन हे। यह भारत उस समय भी प्राचीन था जब मिश्र का जन्म हुआ था। यह भारत उस समय प्राचीन था, जब चाल्डिया की उत्पत्ति हुई थी। इस भारत का इतिहास जब सहस्रो शताब्दियो तक पहुँच चुका था, तब फारस ने कार्य क्षेत्र मे पदार्पण किया था।

पश्चिमी देशो ने भी भारत को गुरु माना

यही भी एक आश्चर्यजनक सत्य है कि जिस पश्चिमी एशिया और यूरोप के देशो से भारत के आर्यो का आगमन होने की बात पश्चिमी विद्वान करते है—उसी पश्चिमी क्षेत्र के विद्वानो ने भारत को अपना गुरु माना है। ऐसे देशो के विद्वान भारत से ज्ञान प्राप्त करते थे। उन्होने (पश्चिमी देशो ने) भारत से आदिकाल, मध्यकाल और उत्तरकाल से अब तक विविध प्रकार की शिक्षा प्राप्त की। काशी की तरह तक्षशिला भी भारतीय आर्यो की शिक्षा का केन्द्र था। इस केन्द्र मे पश्चिमी एशिया से यूरोप तक के विद्यार्थी भी अध्ययन करने आते थे।

कविराज रत्नाकर शास्त्री अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "भारत के प्राणाचार्य" के पृष्ठ 196 में भारतीय आयुर्वेद के सबध मे लिखते हुए एक पर्शियन राजवैद्य का रोचक वर्णन प्रस्तुत करते है। उस तथ्य को उद्धृत करना आवश्यक हे, ईसा के चार सौ वर्ष पूर्व पर्शियन (ईरान) सम्राट के राजवैद्य करेसियस ने भारतवर्ष के सबध में एक पुस्तक लिखी थी। इस पुस्तक के जो भाग अब तक उपलब्ध होते है, उनसे भारतीय चिकित्सा पद्धति पर बहुत प्रकाश पडता है। करेसियस के वर्णन से इस परिणाम पर पहुँचा जासकता हे कि उस समय तक भी ईरान, यूनान और मिश्र आदि पाश्चात्य देश चिकित्सा शास्त्र भारतीयो से ही सीखा करते थे। इस बात की सत्यता को प्रमाणित करने के लिए कविराज रत्नाकर शास्त्री ने हर्नल का एक उदाहरण भी प्रस्तुत किया है, "यह बात भी पूर्णत प्रमाणित हो गई हे कि ग्रीस मे चिकित्सा पद्धति का जन्मदाता हिपोक्रेटिस था। उसका जन्म ईसा पूर्व 460 वर्ष पहले कासनगर (ग्रीस) मे हुआ था। हिपोक्रेटिस ने भारत मे आकर चिकित्सा शास्त्र पढकर यूनानी चिकित्सा विधि को स्थापित किया था। हिपोक्रेटिस ने एक पुस्तक "डी भौरविस यूलिक्रम लिव" नाम से लिखी थी जिसमे मुख की दुगन्ध समाप्त करने के उपायो मे किन्ही भारतीय औषधियो का उल्लेख किया गया है।

यूनानी चिकित्सा पद्धति मे आयुर्वेद मे वर्णित रोग ओर उनके निदानो का वर्णन कुछ

शब्दो के हेर-फेर के साथ मिलता है। यूनानी चिकित्सा मे कुछ ऐसे भी शब्द है जिनके नामो मे ओर आयुर्वेद के नामो मे पर्याप्त समानता है –

आयुर्वेद	**यूनानी**
जटामासी	जतमानसी
पिप्पली	पेपेरी
त्रिफला	इत्रिफल
कुष्ठ	कोस्तस्
शर्करा	सकरून
शृगवेर	जिजिवेर

यूनानी क्षेत्र मे अनेक शब्द है, जिनका सीधा-सीधा सबध आयुर्वेद से है। इससे भी स्पष्ट है कि भारत का प्रभाव हर क्षेत्र मे गहराइ से पडा है।

पश्चिमी देशो के इतिहासकार यह तथ्य स्वीकार करते है कि हिपोक्रेटिस से पहले भी अनेक ग्रीक विद्वान भारत मे आते रहे हे और भारत से विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर अपने देश मे आकर उन विद्याओ का प्रचार-प्रसार करते रहे है। एम्पीडोक्लीस ईसा पूर्व 495-435 का ऐसा ही एक विद्वान था जो हिपोक्रेटिस (400 ईसा पूर्व) से पहले भारत आया था। हिस्ट्री ऑफ हिन्दू केमिस्ट्री के लेखक पी० सी० रे ने लिखा हे कि वह भारत के पश्चिमी भागो मे कई वर्ष तक भारतीय विद्याओ का अध्ययन करता रहा हे।

ग्रीक के प्रसिद्ध विद्वान पाथागोरस (ईसा पूर्व 582-470 पी सी) भी भारत आये थे। भारतीय विचारो, शास्त्रो का विधिवत ज्ञान प्राप्त कर उन्होने ग्रीस मे जाकर प्रचार-प्रसार किया था। इस सबध मे श्लेगल और पोकाक के कथन उदाहरणीय है।

मोर्य साम्राज्य के इतिहास के पृष्ठ 286 से 289 तक यह विवरण मिलता है कि ग्रीस (यूनान) के लोग भारत को अपना गुरु मानते थे और भारतीय शास्त्रो से पर्याप्त शिक्षा ग्रहण करते थे। इस बात को ग्रीस के एक विद्वान "डीटस" ने भी सहर्ष स्वीकारा था।

यास्क, पाणिनी और बुद्ध के समय तक "सूत्रकाल" इस कालखड तक ग्रीस आदि पश्चिमी देशो मे भारतीय आयुर्वेद का पूर्ण प्रभाव जम चुका था। "ससार का इतिहास" के हिन्दी अनुवाद के पृष्ठ 116 से 119 पर पूर्ण विवरण लिखा हुआ है कि ईसा पूर्व सत्रहवी शताब्दी से लेकर ईसा पूर्व आठवी शताब्दी के बीच आयुर्वेद का प्रभाव मिश्र, मेसोपोटामिया, सीरिया, बेबीलोन, क्रीट और ग्रीस (यूनान) मे पूर्णत फैल चुका था और ये सभी देश आर्यो के मूल देश भारत को गुरु मानने लगे थे।

बहुत पुरानी बाते छोड भी दे तो ईसा की आठवी शताब्दी का ही उदाहरण है जिससे स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि ग्रीस (यूनान) आदि देश भारत के उपनिवेश थे। और उन देशो के विद्वान भारत मे आकर शिक्षा ग्रहण करते थे। सुश्रुत के सहपाठी "काकायन" बाहलीक देश के रहने वाले थे। बाहलीक देश आज बेबीलोनिया का विशेष अग है।

आत्रेय पुनर्वसु के समय काकायन एक प्रौढ विद्वान हो गये थे। आत्रेय पुनर्वसु की

अध्यक्षता मे चैत्ररथ नामक उपवन मे होने वाले आयुर्वेद के महासम्मेलन मे काकायन भी सम्मिलित हुए थे। वहा "वाहलीक भिषजावर" कहकर काकायन का नाम बडी प्रतिष्ठा के साथ लिया गया हे। वाहलीक देश के वैद्यो मे सर्वश्रेष्ठ होने का यह श्रेय काकायन को मिला ही इसलिये था कि उन्होने भगवान् धन्वन्तरि दिवोदास का शल्यविज्ञान मेसोपोटामिया के वैज्ञानिक सम्प्रदाय को सिखाया था। आखिर काकायन ने वह विज्ञान सुश्रुत के साथ भगवान् दिवोदास धन्वन्तरि के चरणो मे बेठकर ही सीखा था। आपको आज भी शल्यशास्त्र के वे उज्जवल सिद्धान्त सुश्रुत सहिता मे देखने को मिलेगे, जिनसे बैबीलोन ओर मिश्र आदि पश्चिमीय देशो ने प्रकाश प्राप्त किया था।

इस सबध मे प्रसिद्ध शोधकर्ता जी० एन० मुखोपाध्याय का निष्कष भी उदाहरणीय है, "सर्जिकल इन्स्ट्रयूमेन्टस ऑफ दी हिन्दूज" मुखोपाध्याय ने ओर "मेडिसन ऑफ एन्शियट इडिया" मे हर्नल ने स्पष्ट किया कि ग्रीस देश के शल्य चिकित्सा सबधी यन्त्र और शास्त्र प्राय वे ही है जो सुश्रुत ने अपनी सहिता मे लिखे हे। सुश्रुत ने अपने जिन सहाध्यायियो का उल्लेख किया है। उनमे पुष्कलावतक, करवीर्य, औरभ्र नाम देश-सबधी है, जिनमे हम जान सकते है, कि सुश्रुत सहिता के विज्ञान ने कितने विस्तृत भू-भाग को शल्यशास्त्र का प्रकाश पहुँचाया था। पुष्कलावती नामक नगरी गाधार देश (वर्तमान गधार) की राजधानी थी, जो आजकल अफगानिस्तान मे है।

बहुत बाद तक भी ग्रीस जैसे देश भारत को अपना मार्गदर्शक मानते रहे है। इन देशो मे अनेक ऐसे चिकित्सक हुए है जिनका भारत मे आना-जाना रहा है। ऐसे भिषको मे "काकायन" बाहलीक चिकित्सक, पौष्कलावत, पुष्कलावती (चारसद्दा) के भिषक तथा औरभ्र उर वेवीलोन के भिषक (चिकित्सक) थे जो निरन्तर भारत मे आकर आयुर्वेद आदि प्राचीन साहित्य का अध्ययन करने आते थे।

पारसी धर्मग्रथ अवेस्ता मे भी दिवोदास, सुश्रुत, करवीर्य आदि आयुर्वेदाचार्यो का उल्लेख है बल्कि इन आयुर्वेदाचार्यो को पुरदृषद्धती तथा आम नदी के तट वाले क्षेत्र का निवासी भी माना गया है। अत ग्रीस मे पूर्णत भारतीय वाङ्मय का प्रभाव था ओर यह प्रभाव समस्त यूरोपीय देशो तक फैल चुका था।

जब हम ग्रीस (यूनान) की बात करते है तो बेबीलोनिया, सीरिया और समस्त पश्चिमी पर्शिया के छोटे-छोटे देश उसी मे आ जाते हैं। ठीक इस तरह जैसे "मौय साम्राज्य का इतिहास" पृष्ठ 141 पर यह लिखा हुआ है कि भारतवर्ष का नाम लेने के साथ अफगानिस्तान, बिलोचीस्तान और पर्शिया का बोध स्पष्ट रूप से हो जाता हे। क्योकि ये सभी प्रदेश-भारत के ही अग थे।

इसी मदर्भ मे जर्मन ह्यूगो की खोजपूर्ण रिपोट का भी विशेष महत्त्व है। 1907 ई० मे जमन—विद्वान् ह्यूगो विकलर को तुर्की के बोगजकोई गॉव मे मिट्टी की पट्टियो पर खुदे हुए मितानी राजवश के कुछ सधिपत्र प्राप्त हुए है जो ईसवी पूर्व 14वी शताब्दी के है। उनमे मित्तर, वरुण, इन्दर एव नासत्य आदि ऋग्वैदिक देवताओ का आह्वान किया गया है। इन पट्टियो मे फिलस्तीन के राजाओ का नाम सुबन्ध, ऋतोतम, मातृवान तथा मितानी

के राजा का नाम दशरथ लिखा हुआ है। मिश्र के साथ इस राजवश के वैवाहिक सबधो के कारण उस युग मे मिश्र के इतिहास मे भी दशरथ आदि उक्त राजाओ का ऐतिहासिक अस्तित्व प्रमाणित हो जाता हे। इससे स्पष्ट है कि आज से साढे तीन हजार वष पूर्व सुदूर एशिया माइनर तक के अनेक देश ईरान, मेसोपोटामिया, अरब फिलिस्तीन मिश्र और तुर्की भारतीय सस्कृति से प्रभावित थे।

अब तक के अध्ययन से हमे यह बात अच्छी तरह ज्ञात हो गई है कि भारत और आर्यो के सबध मे पश्चिमी विद्वानो की सोच मे पयाप्त अन्तर आया है। यह भी स्पष्ट हे कि ऋग्वेद को विश्व के सभी विद्वान प्राचीनतम पुस्तक मानने लगे हे।

हमाग उद्देश्य यह भी हे कि "ऋग्वेद" को आधार मानकर पश्चिमी देशो के सबध मे जानकारी की जाय कि "ऋग्वेद" का प्रभाव क्षेत्र पश्चिमी ससार मे कहा तक था ओर भारतीय आर्यो का वर्चस्व किन-किन देशो तक फैला हुआ था।

अपनी ओर से आत्म-गर्वोक्ति करना उचित नही है। इसलिये हमने डॉ० रामविलास शमा द्वारा किये गये अध्ययन का आधार लिया हे ताकि "ऋग्वेद" के तथ्यो की स्पष्ट जानकारी प्रत्येक पाठक का प्राप्त हो जाय।

ऋग्वेद काल से ही भारत का वर्चस्व

डॉ० रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक "पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद" मे अनेक ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किये है जिनसे स्पष्ट हो जाता हे कि पश्चिमी एशिया मे भारतीय आर्यो का ऋग्वेदकाल से ही वचस्व था। ऋग्वेदकालीन भारतीय सभ्यता एव सस्कृति का प्रभाव पश्चिमी एशिया के सभी देशो मे था और वहा भारतीय आर्यो के उपनिवेश थे।

डॉ० रामविलास शमा ने अपनी पुस्तक "पश्चिमी एशिया ओर ऋग्वेद" के तीसरे अध्याय ' पश्चिमी एशिया" मे आर्यो का प्रभाव विस्तार (पृष्ठ 71) मे महत्त्वपूण सूचना दी हे जिनको उन्ही के शब्दो मे इस अध्याय मे अक्षरश साभार उद्धृत कर रहे हे

पश्चिमी एशिया मे आर्य देवता और भारतीय रथ

पार्जिटर सभवत पहले व्यक्ति हे जिन्होने पश्चिमी एशिया मे भारतीय आर्यो के प्रसार की बात कही थी। भारत पर आर्यो के आक्रमण और उत्तर-पश्चिमी मार्गो से भारत मे उनके प्रवेश का सिद्धात वह अस्वीकार करते थे। 1922 मे प्रकाशित "भारत की प्राचीन ऐतिहासिक परपरा" ग्रथ मे उन्होने लिखा था कि भारतीय ऋषि केवल मध्य हिमालय क्षेत्र को पवित्र मानते थे, उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र को नही। उन्हाने ध्यान दिलाया कि ऋग्वेद मे नदियो का क्रम पूर्व से पश्चिम को है (10 75)। धारणा यह हे कि जब ऋग्वेद के सूक्त रचे गए थे, तब आय उत्तर-पश्चिम से प्रवेश करके पजाब होते हुए सरस्वती-यमुना तक पहुँचे थे। अत "यह बडे आश्चय की बात हे कि सूक्त मे नदियो का क्रम उनकी प्रगति के अनुरूप नही रखा गया वरन् गगा से आरभ करके—जहॉ अभी वे पहुँचे भी न थे—उल्टा रखा गया हे।" पार्जिटर, 'एन्शेट इडियन हिस्टोरिकल ट्रेडिशन, पृष्ठ 298)।

हित्ती-मितन्नी सधि के बारे में पार्जिटर का कहना था कि इसमे मित्र वरुण इद्र और नासत्यो के नाम भारतीय आर्य देवताओ के है। सधि का समय 1400 ई० पू० माना गया है। इन देवो के उपासक मितन्नी जन वहाँ और पहले, "सभवत सोलहवी सदी के अतिम चरण मे" पहुँचे होगे (एन्शेट हिस्टौरिकल ट्रैडिशन, पृष्ठ 300) इन तथ्यो से निष्कर्ष यह निकला कि भारत से बहिर्गामी जन-अभियान पद्रहवी सदी के पहले शुरू हो गया था। अत "आर्य और उनके देवता सोलहवी सदी से पहले भारत मे विद्यमान थे।"

आर्यों का भारत से बाहर जाना

पार्जिटर ने इस बात पर बहुत जोर दिया है कि भारत की साहित्य-परपरा मे जहाँ आर्यो के आक्रमण की ओर कही भी सकेत नही है, वहाँ उनके भारत के बाहर जाने का उल्लेख स्पष्ट है। उन्होने लिखा है, "भारतीय परपरा को अफगानिस्तान से भारत पर ऐल अथवा आर्य आक्रमण का कुछ भी पता नही है, न वहाँ से पूर्व की ओर क्रमश प्रगति का उसे कुछ पता है। दूसरी ओर उसकी स्पष्ट घोषणा है कि दुह्यूजनो का ऐल बहिर्प्रवाह उत्तर पश्चिम से होकर आगे के देशो में हुआ, वहाँ उन्होने विभिन्न राज्यो की स्थापना की और इस तरह उन जातियो के बीच अपने ही भारतीय धर्म का प्रवेश कराया" (पार्जिटर ए० हि० ट्रे० पृष्ठ 298) पौराणिक वशावलियो के आधार पर पार्जिटर ने हिसाब लगाया कि दुह्यूजनो का बहिर्प्रवाह 1600 ई० पू० के आसपास हुआ होगा और ये प्रवासी अपने देवताओ के नाम को ठीक बनाए रहे पर जब राजा और उनकी भाषा भारत से अलग पडते गए, तब स्वभावत उन्होने अपने नामो मे परिवर्तन किया। (पार्जिटर, ए० हि० ट्रेडिशन पृष्ठ 301) द वेदिक एज मे भारतीय इतिहास-परपरा का विवरण देते हुए पुसाल्कर ने पार्जिटर की बात दोहराई है। दुह्यूजन राजस्थान से उत्तर-पश्चिमी पजाब मे खदेडे गए, "कुछ समय बाद जनसख्या के बहुत बढने पर वे भारत की सीमाएँ पार कर गए और उत्तर के म्लेच्छ प्रदेशो मे उन्होने अनेक राज्य कायम किए और (सभवत) भारत के सीमातो से आगे वे आर्य सस्कृति ले गए" (आर० सी० मजूमदार, 'द वेदिक एज" पृष्ठ 279)।

भारतीय इतिहास-परपरा से अलग हटकर आधुनिक इतिहास-परपरा के अनुसार उत्तर भारत मे आर्य बस्तियों का विवेचन करते हुए पुसाल्कर ने दुह्यूजनो के बारे मे दो महत्त्वपूर्ण बातें कहीं है (1) वे पुरू, यदु आदि चार गणो के साथ मिलकर भरतो से लडे थे। मजूमदार द वेदिक एज पृष्ठ 247 (2) ऋग्वेदोत्तरकाल मे, अन्य सहिताओ तथा ब्राह्मणो, उपनिषदो के समय, अन्य चार गणो के साथ दुह्यू कही "पृष्ठभूमि मे पीछे चले जाते है" (मजूमदार द वेदिक एज पृष्ठ 252) पीछे चले जाने का कारण भरतो से युद्ध मे उनकी पराजय हो सकती है। वैदिक परपरा के विश्लेषण से जो इतिहास बनता है उसके अनुसार ऋग्वेद के बाद दुह्यूजन भारतीय रगमच से बाहर हो जाते है। पौराणिक परपरा से जो इतिहास बनता है, उसके अनुसार दुह्यूजन भारत के बाहर जाकर अपने राज्य कायम करते है। भरतो और गणो का युद्ध हुआ था। युद्ध मे वे जीते नहीं, उन्हे पीछे ही हटना पडा। सप्तसिन्धु क्षेत्र मे भरतों की दिग्विजय भारत से अनेक आर्य गणो के बाहर जाने का कारण हो सकती

है। इसे हम भारतीय आर्यो का प्रथम अभियान कह सकते है। सुमेर और भारत की सस्कृतियो मे जो प्राचीन समानताएँ है, उनका सबध इस अभियान से हो सकता है। फिर महाभारत युद्ध हुआ। इसमे बहुत से उत्तर-पश्चिमी ओर पूर्वीजन सम्मिलित थे। कौरव पक्ष की पराजय के बाद, सभव है, इनमे अनेक जनो को भारत से बाहर जाना पडा हो। यह आर्यो का द्वितीय अभियान हागा, हित्ती-भितन्नी आदि सभ्यताओ के प्रसार से इसका सबध हो सकता है।

पार्जिटर ने इस बात पर जोर दिया था कि हित्ती-मितन्नी सधि मे कई वैदिक देवो के नाम एक साथ आए है। उनका कहना था, "देवताओं के नाम एकल रूप मे महत्त्वपूर्ण न हो, यह सभव है, पर चारो का एक साथ होना उसके भारतीय उद्भव का ऐसा पजीकृत साक्ष्य है कि उसे टीका-टिप्पणी से उडाया नही जा सकता"। (पार्जिटर, एन्शेट इंडियन हिस्टौरिकल ट्रैडिशन पृष्ठ 300)।

गूर्ने का महत्त्वपूर्ण विचार

अधिकाश विद्वान टीका-टिप्पणी से उसे उडाते रहे, परन्तु सभी नही। एक गौरवपूर्ण गूर्ने ने हित्तियो पर अपनी पुस्तक मे माना है कि इद्र, वरुण, आदि भारतीय आर्य देवता हे और वे आर्यो के साथ ही वहाँ पहुँचे थे। सधि मे उल्लिखित इन देवताओ के अतिरिक्त बोगाजकुइ मे चार पट्टिकाओ पर "एक विम्तृत रचना घोडो को प्रशिक्षित करने और उन्हे जलवायु के अनुकूल बनाने पर" मिली। (ओ० आर० गूर्ने, द हिट्टाइटस पृष्ठ 104-5 इसके लेखक मितन्नी राज्य के किककुति नाम के व्यक्ति थे (जो अवश्य ही रथचालक अथवा अश्व प्रशिक्षक रहे होगे) गूर्ने कहते है "इस रचना में कुछ पारिभाषिक शब्द मिलते हैं जो ऐसी भाषा के है जो सस्कृत से सबंधित है। सस्कृत उत्तर भारत के आर्यो की प्राचीन भाषा है। अन्य अभिलेखो से हमे अब पता है कि मितन्नी के शासक भारतीय आर्य देवताओ के यथा इद्र वरुण और युगल नासत्यो के, उपासक थे, और उनके व्यक्ति नामो से उसी प्रकार के स्त्रोतो का उद्घाटन होता है। अत हमे यह निष्कर्ष निकालना होगा कि यह आर्य गणशाखा पश्चिम की ओर बढती हुई अपने साथ अश्व प्रजनन का विशिष्ट ज्ञान लाई थी और उसी से पश्चिमी एशिया के लोगो ने यह कला सीखी थी। यह बात महत्त्वपूर्ण है कि बैबिलोन के कस्सी शासको के नामो का एक अश भारतीय देव नामों से निर्मित पाया जाता है। (ओ० आर० गूर्ने, द हिट्टाइट्स पृष्ठ 105)।

गूर्ने इस बात की चिन्ता नहीं करते कि उस समय भारतीय आर्य पश्चिमी एशिया मे नही हो सकते थे। उन्होने मितन्नी साक्ष्य से वही निष्कर्ष निकाला है जो उससे अनिवार्यत निकलता है। अश्वविद्या, रथचालन विद्या के प्रसग मे गूर्ने का कुछ बाते ध्यान देने योग्य है "हित्ती साम्राज्य तथा अन्य समकालीन राज्यों की शक्ति का आधार एक नए आयुध का सघन विकास था। यह था हल्का रथ जिसे घोडे खींचते थे। (1600 ई० पू० के कुछ ही समय बाद वह समस्त पश्चिमी एशिया मे दिखाई देने लगा था। वैसे, सामरिक रथ कोई नई चीज नही था। सुमरी लोगो के पास दो पहियो वाले और चार पहियो वाले, दो तरह के रथ थे। पर ये भारी होते थे, इनके पहिए ठोस, अराविहीन थे और ऐसा प्रतीत

होता है कि उन्हे खीचने के लिए जगली गधो से काम लिया जाता था"। (गूर्ने) सुमेर के लोग मुख्य रूप से सदा पेदल सेना का भरोसा करते थे। इसके बाद जो वहाँ अमोरी राज्य कायम हुआ, उसमे लगता है, युद्ध के लिए घोडो से काम नही लिया गया। असीरिया के व्यापारी गाडी आदि खीचने के लिए घोडो से काम लेते थे पर उनका रथ वही चार पहियो वाला सुमेरी ढग का था। घोडो से खीचा जाने वाला, हल्का, अरायुक्त पहियो वाला रथ। अमोरी शासको के पतन के बाद लगभग एक ही समय कस्सियो के बेबिलोन, अठारहवे राजवश के मिस्र और मितन्नी के नए राज्य मे प्रकट होता है। "इसने युद्ध के स्वरूप मे क्रातिकारी परिवर्तन कर दिया, अब से युद्ध मे द्रुत गति निर्णयकारी उपकरण बन गई"। (गूर्ने द हिट्टाइट्स पृष्ठ 104) इस अचानक विकास के कारण का बोगाजगुइ के अभिलेखो से पता चल जाता है।

गूर्ने के विवरण से एक बात समझ मे आने लगती है कि अधिकाश विद्वान जिसे भारत मे आर्यो के प्रवेश का समय माने बैठे है, वह वास्तव मे उनके भारत से बाहर, प्रभाव विस्तार का समय है। इस प्रभाव-विस्तार का एक केन्द्र इद्र-वरुण उपासको का मितन्नी राज्य था। पिगॉट मानते हे कि पद्रहवी सदी ई० पू० के अत तक मितन्नी लोग मिस्र को "रथो का निर्यात करने लगे थे" (एस० पिगॉट, प्रिहिस्टैरिक इडियन पृष्ठ 277)।

डॉ० रामविलास ने "ख" शीर्षक "सूर्य का प्रतीक" देकर गूर्ने की पुस्तक (द हिट्टाइटस) का आधार लेकर ऋग्वेदकालीन महत्त्वपूण सूचना (पृष्ठ 75) दी हे।

सूर्यबिंब का प्रतीक (भारतीय आर्यो का प्रभाव)

गूर्ने की पुस्तक से हित्ती सस्कृति के भारतीय स्त्रोत का एक प्रमाण ओर मिलता है, "शिल्प मे अकित प्रत्येक हित्ती राजा के सिर पर" पखयुक्त सूर्यबिब। (गूर्ने पृष्ठ 146) मिस्र मे यह बिब बादशाहत का प्रतीक था और उसका उपयोग मितन्नी शासक भी करते थे। इराक से तुर्की, तुर्की से मिस्र तक राजस्व का सूचक सूर्यबिब था और इसका सबध ऋग्वेद से है। गूर्ने कहते हैं "मितन्नी के राजाओं से लगता है यह प्रतीक पहले अपनाया ओर उसे स्तभ पर टिके हुए आकाश प्रतीक की धारणा का अग बनाया जेसी कि वह ऋग्वेद मे वर्णित हे (गूर्ने, द हिट्टाइट्स पृष्ठ 212) स्तभ पर टिका हुआ आकाश यह धारणा ऋग्वेद मे है, प्रतीक रूप मे यह धारणा मितन्नी राजाओ के सूर्यबिब मे है। इद्र, वरुण, दवनाम, रथ विद्या के पारिभाषिक शब्द इनके साथ यह आकाश सबधी प्रतीक—ये सब तथ्य मितन्नी राजाओ के भारतीय मूल को पुष्ट कग्ने है।

गूर्ने स्तभ पर टिके आकाश का सबध ऋग्वेद से कायम कर सके, यह उनकी बहुत अच्छी सूझ हे। किन्तु पखो वाला सूयबिब, इसका सबध भी ऋग्वेद से है। सूर्य पक्षी (पतग 10 177 1-2) है, वह सबल पखो वाला (सुपर्ण 5 473) हे। मितन्नी से मिस्र को रथो का निर्यात हुआ था। आगे-पीछे वहा से, अथवा सीधे भारत से, पखो वाले सूर्यबिब का नियात भी हुआ होगा। हित्तियो के शिल्प मे श्येन पक्षी भी अकित है। गूर्ने ऋग्वेद से इसका

सबध भी नही देखते। उनका विचार है, हित्तियो ने बहुत से विषय सीरिया से अत अप्रत्यक्ष रूप मे मेसोपोटामिया से लिए। इनमे श्येन युगल का प्रतीक भी है। (गूर्ने, पृष्ठ 211) ऋग्वेद मे सूय को पक्षी कहा गया है। रघु श्येन (5 45 9) वह द्रुतगामी श्येन है। हित्तियो ने श्येन का प्रतीक सीरिया से पाया हो, इसकी सभावना कम है। सीरिया ने उसे मेसोपोटामिया से पाया हो, यह सभव है, मेसोपोटामिया ने उसे भारत से पाया हो, यह भी सभव हे। एक हित्ती कथा के अनुसार कृषि का सवर्धन करने वाले देव तेलिपिन खो गए। तब सूर्यदेव ने उन्हे ढूँढने को श्येन पक्षी भेजा (गूर्ने द हिट्टाइट्स पृष्ठ 184-85) यहाँ श्येन और सूर्य का सबध स्पष्ट है।

पखयुक्त सूर्यबिब मितन्नी लोगो ने पहले अपनाया, हित्तियो ने बाद को। इस बिब को मितिन्नयो ने खभे पर टिके आकाश से मिलाया। ऋग्वेद मे वरुण के लिए कहा गया है य स्कम्भेन वि रोदसी आधारयत्—जो खभे से आकाश और पृथ्वी को अलग किए हुए है ग्रफिथ, 8,41,10। होमर के काव्य मे "अतलस् नाम का देत्य अपने कधो पर उन बडे खभो को उठाए है जो धरती और आकाश को अलग किए है।" (ऑदुस्सेइआ, 1 53)। जेब ने होमर पर अपनी पुस्तक मे अतलस् का अर्थ बताया है उठाए रखने वाला। लिडेल ओर स्कॉट के कोश मे अतलस् का एक अर्थ है आकाश के खभो का उठाए रखने वाला पुराना देवता, दूसरा अर्थ है आकाश का खभा यह दूसरा अर्थ ही शब्द का मूल अर्थ प्रतीत होता यूनान के तरुण राजकुमार जब रथ विद्या सीखने हित्तियो की राजधानी मे ठहरते थे, तब सभव हे, खभे पर टिके आकाश की धारणा उन्होने वहा से प्राप्त की हो।

बेबीलोन मे भारतीय प्रतीक

सूर्यबिब का उपयोग बेबीलोन के कस्सी शासको ने भी किया था। इनकी भाषा इडोयूरोपियन परिवार की नही है उसमे इस इडोयूरोपियन परिवार के शब्दो का प्रवेश हुआ था। जॉर्ज रूप के अनुसार इसका प्रमाण कस्सी देवमडल मे शूरिअश् (सूर्य), मरूत्तश् (मरूत) जैसे "आय देवता हे (आर० सी० जेब, इन्ट्रोडक्शन टू होमर पृष्ठ 39) बरो ने कस्सी वश के एक राजा अबिस्तश् का उल्लेख किया है। इसका सस्कृत रूप होगा "अभिरथ- (युद्ध में) रथो का सामना करने वाला" (जर० रू एन्शिण्ट इराक पृष्ठ-227 28) केवल सूर्य और मरूत् नही, भारतीय रथ भी वहाँ पहुँचते है, वरन् उनके एक शासक का अभिरथ जैसा नाम न होता। कस्सी शासको के ये रथ अवश्य ही सुमेरी रथो से भिन्न थे। ये शासक जब दूसरो को भूमि देते थे तब एक प्रस्तर खड पर भूमि पाने वाले का नाम, उसके अधिकार, भूमि का क्षेत्रफल आदि अकित करा देते थे। दान की पुष्टि के लिए वे उस पर देवता की छवि अथवा उसका प्रतीक अकित कराते थे। इन्हीं मे एक था सूर्यबिब (टी० बरो, द सस्कृत लैग्वेज पृष्ठ—27-28) रथ और सूयबिब का प्रसार मिस्र और यूनान से लेकर बैबीलोन (इराक) तक हे। यह भारतीय आर्यो के प्रभाव-विस्तार का प्रमाण है। बैबीलोन में कस्सी शासको ने नई रथ विद्या का प्रसाद किया। रू कहते हे, निकट पूर्व के युद्ध क्षेत्रो मे तीव्रगामी अश्वकर्षित रथो के अविभाव, ने, जैसा कि प्रत्याशित था, युद्ध-कौशल मे क्राति कर दी।

साथ ही भारवाही गदर्भो के स्थान पर अवश्कर्षित शकटो के व्यवहार ने व्यापारिक परिवहन को अधिक सरल और द्रुतगामी बना दिया।" (रू, एन्शेण्ट इराक पृष्ठ 231) परिवहन के नए साधनों का व्यवहार इसलिए हुआ कि कस्सी व्यापार की प्रगति पर ध्यान देते थे।

कस्सियो ने बेबीलोन पर 1595 से लेकर 1157 तक—438 वर्षो तक-राज्य किया। मितन्नी राज्य इराक से लकर भूमध्यसागर तक फैला था। उत्तरी इराक के शासक 1500 से लेकर 1360 इ० पू० तक मितन्नी राजाओ की प्रभुसत्ता स्वीकार करते रहे थे ओर फिलिस्तीन उनके प्रभाव मे था (जी० रू, एन्शण्ट इराक, पृष्ठ 230) इराक, सीरिया फिलिस्तीन ये सब सामी भाषाएँ बोलने वालो के क्षेत्र थे। शनाब्दियो तक यहा मितन्नी राजाओ की प्रभुसत्ता रही, इसलिए सामी भाषाआ मे भारतीय मूल के शब्द मिले, तो यह स्वाभाविक होगा। मितन्नी राज्य-शक्ति के हास के बाद यह सारा क्षेत्र हित्तियो के नियत्रण मे आ गया। सत्रहवी सदी इ० पू० के आरभ मे इनका राज्य स्थापित हा गया था। पन्द्रहवी सदी के मध्य स वह राज्य विस्तृत होकर विशाल साम्राज्य बन गया। यह साम्राज्य इराक से फिलिस्तीन तक फला हुआ था। 1190 इ० पू० मे उसका अत हुआ परन्तु छोटे-छाटे हित्ती राज्य बने रहे ओर हित्तिया के सास्कृतिक प्रभाव मे कभी न आई। रू कहते हे, "हित्ती सम्राट जो प्रभाव सीरिया मे लाए थे, वह उनके बाद लगभग पॉच सो वर्षो तक बना रहा"। (जी० रू, एन्शेण्ट इराक पृष्ठ 235-36) और गूर्ने का मत हैं, हित्ती साम्राज्य क दक्षिण पूर्वी प्रातो मे हित्ती सस्कृति का अद्भुत साध्य प्रकाश फेला रहा जिसकी अवधि पॉच शताब्दियो से कम न थी और उन पर भारतीय सस्कृति की छाप थी।

देवपूजा के भारतीय रूप

हित्ती राज्य के लोग चार आर्य भाषाएँ बोलते थे, इससे मानना चाहिए कि उनके सामाजिक जीवन म अनेक समानताओ के साथ मित्रताएँ भी थी। हडप्पा राज्य मे मन्दिर नही थे, ऋग्वेद मे मंदिर नही हे, परन्तु हित्ती साम्राज्य मे अनेक मन्दिर थे इन मन्दिरो मे पशुओ की बलि दी जाती थी और समय से "ठाकुरजी को नहलाया, धुलाया और भोजन भी कराया जाता था। पशुबलि की प्रथा तो व्यापक ओर प्राचीन है किन्तु ठाकुरजी के स्नान, भोजन वाली प्रथा—यह भी कम-से-कम तीन हजार साल पुरानी जान पडती है। गूर्ने का दिया हुआ विवरण इस प्रकार है, "मन्दिर देवता का आवास था, पुजारी उसके आवासीय कमचारी थे। जहॉ तक अभिलेखो से हम समझ पाते है, यह सरल धारणा हित्तियो के समूचे मन्दिर सबधी कमकाड का आधार थी। मदिर के कर्मचारियो का यह कर्तव्य था कि वे प्रतिदिन एक सुनिश्चित रीति के अनुसार देवता की शारीरिक आवश्यकताओ का ध्यान रख। उसे नहलाना-धुलाना, वस्त्र पहनाना, भोजन और पेय देना तथा नृत्य ओर सगीत से उसका मनोरजन करना। देनिक कायक्रम सभी का जाना पहचाना है, इस भावना के कारण उसकी ओर यदा-कदा ही सकेत किया जाता हे।" वे देवता के शरीर को भीतरी प्रकोष्ठ मे नहलाते है, उसका अभिषक करते है और उसे सुन्दर वस्त्र पहनाते है।

देवत्व के जीवित स्वरूप, भोजन पाइए और तुम तुष्ट होइए, पान कीजिए ओर सन्तुष्ट

होइए। इस सबध म एक अत्यत मूल्यवान पट्टिका वह है जिसमे पुजारियो और मन्दिर कमचारियो के लिए अनुशासनात्मक आदेशो की सूची है, यद्यपि इसमे क्रियाओ पर उतना ध्यान नही, उन्हे सपन्न करने की विधि पर अधिक जोर दिया गया है। क्रियाएँ कर्मकाण्ड करने वालो को नितात स्वच्छ ओर कर्मकाण्ड की रीति के अनुसार शुद्ध होना चाहिए। यदि किसी प्रकार की अशुद्धि से उनका सपक हुआ हो अथवा यदि किसी स्त्री के साथ उन्होने शयन किया हो, तो जब तक शुद्धि के लिए वे आवश्यक क्रियाएँ न करले, तब तक उन्हे देवता के निकट न आना चाहिए। जो भोजन पान देवता को समर्पित है, किसी भी कारण उसका अन्य उपयोग न होना चाहिए। सामान्यजनो के साथ उसे बॉट लेना चाहिए। मन्दिर के अनुशासन की मॉग थी कि प्रत्येक कमचारी रात्रि में मदिर लौट आए चाहे सध्या वह नगर मे बिताए। अपनी पत्नी के साथ सारी रात बितान का दड था मृत्यु। रात को फेरी लगाने ओर अग्नि को देखते रहने के बारे मे भी नियमावली थी (गूर्ने, द हिट्टाइट्स, पृष्ठ 39) दड की कठोरता को छोडकर सब-कुछ ऐसा है जिससे भारत के लोग अच्छी तरह परिचित है। जिप्पबद के ऋतुदेव का सबोधन हटा दिया जाए तो यह विश्वास करना कठिन होगा कि यह सब भारत के बाहर भी कहीं होता था, वह भी ईरान, इराक पार करके तुर्की के उत्तरी भाग मे ' या तो यह सारा आचार-विचार भारत से वहॉ पहुँचा था या फिर वहॉ से भारत आया। दोना जगह उसका स्वतत्र विकास हुआ हो या दोनो के भिन्न स्त्रोत हो, इसकी सभावना कम हे। गूर्ने के विवरण मे अग्नि को देखते रहने से सबंधित नियमो की ओर सकेत है। इससे प्रतीत होता है कि हित्ती राज्य मे अग्नि-पूजा का चलन भी था।

हित्ती राजाओ के नाम के साथ कुछ प्रशसात्मक शब्द जोडे जाते थे, वे भारत की याद दिलात है। राजा "देव या देवी का प्रिय" है। (गूर्ने, पृष्ठ 149-50) सम्राट अशोक इसी प्रकार देवानाप्रिय थे।

डॉ० शमा ने अपनी पुस्तक "पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद" मे आर्यो के उपनिवेश स्थापित होने का विवरण अध्याय तीनके पृष्ठ 85 से 91 तक मे किया है। इन पृष्ठो मे अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकाश मे आय है।

फिलिस्तीन, सीरिया मे आर्य सामत

मिस्र, सुमेर भारत-प्राचीन सभ्यता के ये तीन मुख्य केन्द्र थे और ये तीनो परस्पर सबद्ध थे। मिस्र और सुमेर मे भारत से निर्यात की हुई अनेक वस्तुएँ मिली है और सुमेर मे तो भारतीय व्यापारियो के उपनिवेश भी थे। मिस्र से भारत का सबध अनेक प्रकार का रहा है। मितन्नी और हित्ती राजाओ से मिस्र ने कभी युद्ध किया, कभी सधि की, यह भी सपर्क का एक रूप था। सीरिया और फिलिस्तीन के अनेक सामतो के नाम भारतीय उद्भव के माने गए हैं ओर ये सामत मिस्र के अधीन थे। यह सपर्क का अन्य रूप था। बाइबिल की सास्कृतिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करने के लिए अमरीकी विद्वान् जेम्स बी प्रिचार्ड ने 1950 मे प्राचीन अभिलेखो का एक सकलन प्रकाशित किया। पॉच साल बाद उन्होंने इसका सशोधित ओर पारिवर्धित सस्करण निकाला। इसूमे मिस्री और सुमेरी अभिलेखो के साथ

हित्ती अभिलेख भी है। सकलन इस धारणा की पुष्टि करता है कि भारत से लेकर मिस्र तक एक विशाल अफ्रीकी-एशिया भूखण्ड की सस्कृतियॉ एक-दूसरे को प्रभावित करती रही है। बाइबिल की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि समझने के लिए इसकी जानकारी आवश्यक हे।

प्रिचार्ड (जे० बी० प्रिचाड एन्शेट नियर इस्टन टेक्ट्स, पृष्ठ 369-73) ने फिल्स्तिान, सीरिया और फिनीशिया के सामतो द्वारा मिस्र के राजाओ को लिखे हुए अनेक पत्र दिए है। इन राजाओ-अमेनूहोतेप् तृतीय और अखेन् अतोन् का शासन काल 1413 से लेकर 1363 ई० पू० तक माना गया है। इन पत्रो मे जो नाम आए है, उनमे अनेक भारतीय आर्य भाषाओ के हे। पत्रा के नीचे पाद-टिप्पणियो मे प्रिचाड ने इन नामो के "इडोआर्यन" होने की आर कई बार ध्यान दिलाया है। फिलिस्तीन के एक सामत का नाम है इदरूत। प्रिचार्ड के अनुसार "इस सामत का वही इडोआयन नाम है जो उसके समकालीन ऋग्वेद के इद्रोत अथवा इद्रौत का।" प्रिचार्ड, एन्शेण्ट नि० ई० टैक्ट्स पृष्ठ 485) इस टिप्पणी मे "समकालीन" शब्द बहुत दिलचस्प है। आर्य लोग अपनी मूल निवास भूमि से या तो भारत पहुँचे और तुरन्त पश्चिमी एशिया की यात्रा करते हुए फिलिस्तीन आ गए, इस तरह एक ही समय मे भारत और फिलिस्तीन के दो व्यक्तियो का एक ही नाम हुआ। या फिर कुछ आय फिलिस्तीन मे रह गए और उन्ही के से नामो वाले दूसरे आर्य भारत पहुँचे। किन्तु इस स्थिति मे फिलिस्तीन मे प्राप्त नाम को "इडोआर्यन" कहना उचित न होगा। "इडोआर्यन" वह होता जो भारत मे आकर बस गया हो।

मिस्र के अधीन दमिश्क के राजा बीर्यवज के सिलसिले में प्रिचार्ड ने लिखा है, "सभी व्यक्तिवाचक नाम (शुत को छोडकर) इडो-आयन हे" शुत (प्रिचार्ड के अनुसार उच्चारण में सुत) मिस्री अधिकारी था। सभव है, मागधिवृत्ति के अनुसार किसी भारतीय आर्य ने सुत को शुत बना दिया हो। उसी पत्र मे एक स्थान का नाम मग्दल आया है। प्रिचार्ड ने बताया है कि बाइबिल में यही नाम मिग्दोल (निर्गमन 14 2) रूप मे है। सभव है मग्दल का सबध मर्गो से हो। मगध में आधारभूत गणवाचक शब्दमूल मग ही है। एक अन्य स्थान है मेगिद्दो। यहा के राजा बिरिदिय का नाम "इस समय के अधिकाश अन्य उत्तरी फिलिस्तीनी राजवशीय नामो की तरह इडोआर्यन है।" (प्रिचार्ड वही पृष्ठ 485 पर यहॉ मेगिद्दो भी मग्दल की तरह मगो से सबद्ध हो सकता है। एक व्यक्तिवाचक नाम शुवर्दत) भी शुत की तरह मागधीवृत्ति का परिचायक हो सकता है। "बिरश्शेन नाम भी इडोआर्यन है। उसी पुस्तक के पृष्ठ 490 पर यहॉ भी उसी वृत्ति का परिचय मिलता है।

भारतीय आर्य नाम धारण किए पश्चिमी एशिया के ये सामत कब से वहॉ बसे हुए थे, इसका ब्यौरा नहीं मिलता। ईसा० पू० दूसरी सहस्त्राब्दी के मध्य मे भारतीय आर्य सामत फिलिस्तीन और सीरिया मे बसे हुए थे, यह तथ्य निर्विवाद है, और मिस्री राजाओ, राजकर्मचारियो आदि से उनका घनिष्ठ सपर्क था। सामतो के पत्र सामी भाषा मे लिखे गए है। उनके नाम भारतीय आर्य भाषाओ के है। मिस्र की प्राचीन भाषा मे कुछ सामी विशेषताऍ हे पर वह भिन्न (हामी) कुल की भाषा है। दूसरी सहस्त्राब्दी मे हामी, सामी तथा आर्य इन तीन भाषा परिवारो को हम परस्पर सपर्क मे आते देख सकते है। केब्रिज एन्शेट हिस्ट्री

मे आलब्राइट तथा लबडिन बागाजकुड, अमना आदि स्थानो मे प्राप्त सामग्री के आधार पर कहते हे कि दूसरी सहस्त्राब्दी ई० पू० मे दक्खिन पश्चिमी एशिया मे इडाआयन बोली जाती थी। इसके बोलने वाले उन देवताओ की उपासना करते थे जो "विशिष्ट रूप मे (वेदिक) थे। वे सख्यासूचक उन शब्दा का व्यवहार करत थे जो "विशिष्ट भारतीय रूप" हे। जिन शब्दो का सीधा या दूर का सबध घोडो के नस्ली सवधन, उनके प्रशिक्षण तथा रथो की दोड से हे, वे ' अधिकतर विशिष्ट इडोआयन उद्‌भव के हे।" इसके सिवा सो व्यक्तिवाचक नाम मिल ह, ये लगभग 1700 ओर 1250 ई० पू० के बीच के हे। "ये निश्चित रूप से या सभवत इडोइरानियन हे इनम कुछ विशुद्ध वैदिक हे यथा पुरातन" इद्रोत जा अपनी पट्टिकाओ मे इदरूत बनकर प्रकट हुआ है। "यह सारी सामग्री कीलाक्षरी लिपि मे हे। इस लिपि म अनेक खामियाँ हे। इस कारण जहाँ अनेक व्युत्पत्तियाँ सभव हा, वहाँ किसी एक को सुनिश्चित करना सग्ल नही होता। लेकिन प्रमाण सामग्री बराबर बढ रही है, इसलिए यह कोइ बहुत बडी कठिनाइ नही हे।" इनम कुछ नाम ईरानी हो सकने हे परन्तु एक भी सदिग्ध रूप ऐसा नही ह जहाँ उसकी भारतीय उत्पत्ति ही सभव न हो। द केम्ब्रिज एन्शेट हिस्ट्री खड-1, भाग-1 पृष्ठ—143-144।

इस विवरण से स्पष्ट हाता हं कि इसा पू० दूसरी सहम्त्राब्दी के मध्य म भारतीय मूल के आय पश्चिमी एशिया मे फेले हुए थे। ये इडोईरानियन शाखा के घुमतू आर्य नही है, ये भारतीय आर्य हे और ऋग्वेद की रचना के बाद भारत से बाहर गए है। इसीलिए कुछ नामो के मूल रूप ऋग्वेद मे ह, उनके परिवर्तित रूप पश्चिमी एशिया के अभिलेखो मे हे। ये आय भारत से बाहर इस भूखण्ड मे सामती शासको की भूमिका निबाहते हे और सामाजिक विकास क्रम मे यह भूमिका कबीलो के घुमतू जीवन से बहुत आगे की मंजिल है। उक्त लेखको ने उस इतिहास ग्रथ मे आगे बताया है कि इडोआर्यन नाम मे प्राचीनतम जयलुति, एक मदा सरदार का है जिन्होने लगभग सत्रहवीं सदी ई० पू० के मध्य में सीरिया के राजनीतिक ओर सैनिक मामलो मे महत्त्वपूव भूमिका निबाही थी। इसके कुछ ही समय बाद हमे "खुर्री" सरदारो का गुट मिलता हे जिनके नाम निश्चित या सभावित रूप मे इडोआर्यन है और सोलहवी सदी मे मितन्नी के राजवश के सस्थापक किर्त का नाम, तेरहवी सदी तक उसके उत्तराधिकारियो के नामो की तरह, इडोआर्यन हे। 'द कैब्रिज ऐन्शेण्ट हिस्ट्री खड-1, भाग-1, पृष्ठ 144 दूसरी सहस्त्राब्दी इ० पू० मे भाग्तीय आर्य पश्चिमी एशिया मे सामती व्यवस्था का प्रसार कर रहे है। यह व्यवस्था उनके वहाँ पहुँचने से पहले भारत मे जन्म ले चुकी है ओर उसका विशेष सबध अरायुक्त नए ढग के रथो और घोडो के सवर्धन प्रशिक्षण से है। जेसा कि उक्त लेखको ने कहा है "इनमे बहुत से नाम घोडो और रथो के प्रसग मे आए हे। अरायुक्त रथचक्र का आविष्कार कुछ ही समय पहले हुआ था। पहले से कहीं अधिक तीव्र गति इस रथचक्र से सभव हुइ हे। उमकी असाधारण लोकप्रियता से यही आशा की जा सकती थी कि भारतीय नाम रथ सचालन ओर अश्वसवर्धन के प्रसग मे प्राप्त हो।"

अरायुक्त रथचक्र का उल्लेख ऋग्वेद मे अनेक स्थानों पर है। भारत में इस नए रथ का व्यवहार बडे पेमाने पर हो चुका था, उसके बाद ही वह बाहर पहुँचा। लेकिन व्हीलर

की तरह आलब्राइट ओर लबडिन मानते हे कि सिन्धु घाटी की सभ्यता का अन्तिम रूप म विनाश "इडोआर्यन आक्रमण" से हुआ और यह घटना लगभग 1800 ई० पू० की या शायद उससे कुछ बाद की हे। भारत से दूर सीरिया मे जो पहला भारतीय नाम मिलता हे वह सत्रहवीं सदी के मध्य का हे। व्हीलर के सामने सत्रहवी सदी के इन भारतीय आर्य नामा की समस्या नही थी। उन्होने आर्यो के आक्रमण का समय 1500 ई० पू० के आसपास निधारित किया। आलब्राइट आर लबडिन के सामने यह समस्या थी। उन्होने उस आक्रमण का समय 1800 इ० पू० के आसपास माना। अठारहवी सदी सत्रहवी से बहुत दूर नही ह। यदि आक्रमण की घटना 1800 से कुछ बाद की हे तो वह सत्रहवी सदी के ओर भी नजदीक खिसक आती हैं। इतनी जल्दी भारत विजय करके वही आर्य सीरिया के राजनीतिक ओर सनिक मामले निपटाने कैसे पहुँच गए।

मिस्र मे हिक्सो शासन

प्रसिद्ध इतिहासकार टॉयनबी का मत है कि तीन हजार साल बाद जो काम तुर्को ने किया था, वही काम ईसा पूव दूसरी सहस्त्राब्दी के आरभ मे आर्यो ने किया। यूरोप-एशिया के स्तेपी मदानो से तुर्को के एक समुदाय ने उत्तर-पश्चिमी दर्रो से भारत मे प्रवेश किया, दूसरा समुदाय इरान होता हुआ अनातोलिया पहुँचा। इसी तरह आर्यो के एक समूह ने हिदू कुश पार करक भारत मे प्रवेश किया, उनके अन्य समूह पश्चिमी एशिया पहुँचे और सीरिया के स्वामी बने। "सत्रहवी सदी ईसा पूव के प्रारभिक वर्षो म उन्होने मिस्र को जीतने के लिए सीरिया का उपयोग आधार भूमि के रूप मे किया।" ए० ए० टॉयनवी, ए स्टडी ऑफ हिस्ट्री, खड-1, पृष्ठ 106। टॉयनवी जानते है कि मितन्नी के शासक मित्र, वरुण, इद्र और नासत्य, इन आय देवो के उपासक थे। इनका विशेष सबध भारत ओर ऋग्वेद से है, इस बारे म उन्होने कुछ नहीं कहा। अन्य विवेचन जहॉ इडोयूरोपियनो का बात करते हे, वहॉ टॉयनवी केवल आर्यो का नाम लेते है। टॉयनवी ए स्टडी ऑफ हिस्ट्री, खड-1 पृष्ठ-105 पर लिखते हे कि आर्य ईरान ओर इराक होते हुए सीरिया पहुँचे इस तरह एक सीमा तक उनके विवेचन से इडोइरानियन शाखा की धारणा निरस्त हो जाती हे।

सत्रहवीं सदी इ० पू० के आरभ मे विदेशी आक्रमणकारियो ने मिस्र पर अधिकार कर लिया। उन्होंने वहॉ डेढ सौ साल तक शासन किया। इन्हे हिक्सोस् कहा जाता है। प्रिचार्ड के अनुसार यह यूनानी शब्द सभवत मिस्त्री हेकऊ-खसुत् से बना है और मिस्त्री शब्दो का अर्थ हे विदेशो के शासक। जे० बी० प्रिचाड की पुस्तक एन्शेट नियर ईस्टर्न टैक्टस के पृष्ठ 20 का उदाहरण देखे। ईरान-इराक होते हुए वे सीरिया पहुँचे" और वहॉ से उन्होने मिस्र पर अधिकार जमा लिया। मिस्री इन बबर युद्धपतियो को हिक्सोस् कहते थे। वे जिस साम्राज्य पर शासन करते थे उसमे मिस्र और सीरिया के अलावा शायद मेसोपोटामिया भी था। यह साम्राज्य सभवत (तुर्क सुल्तान) सलादीन के साम्राज्य के समान विस्तृत था और निश्चय ही उसके समान अस्थायी भी था।" टॉयनवी ने उसे सुमेर-अक्कद साम्राज्य का आय उत्तराधिकारी कहा है। अतर यह है कि सुमेर-अक्कद साम्राज्य मे मिस्र नहीं था,

उत्तराधिकारी साम्राज्य मे मिस्र भी था। वास्तव मे इराक से मिस्र तक किसी केन्द्रबद्ध साम्राज्य के अस्तित्त्व का प्रमाण नहीं है। किन्तु दूसरी सहस्त्राब्दी इ० पू० मे आय विशाल भूखड के अनेक राज्यो पर शासन करते थे, यह निश्चित है। यह भी सभव हे कि जेसे सुमेर मे भारतीय व्यापारियो के उपनिवेश थ वेसे ही उपनिवेश सीरिया और म्प्सि म भी रहे हा और हिक्सोस आक्रमण के पहले से रहे हो। मिस्र मे सूर्यदेव की पूजा के इतिहास से यह धारणा पुष्ट होती हे कि आर्यो के उपनिवेशा ने मिस्री सस्कृति को प्रभावित किया था।

मिस्र के राजा देवता के प्रत्यक्ष रूप उसके अवतार अथवा पुत्र माने जाते थे व धार्मिक कृत्यो मे मुख्या पुरोहित होते थे। मिस्री राजवश मे सूर्य की पूजा आरभ से ही प्रचलित न थी, उसका चलन तीसरे राजवश से हुआ और उसे पूर्ण प्रतिष्ठा मिली पॉचवें राजवश मे (एम० ए० मरे, द स्लेण्डर दैट वाज इजिप्ट पृष्ठ 119) पहले सूर्य की पूजा पर राजा का विशेष अधिकार था। यही एक देव ऐसे थे जिन्हे वह अपने से श्रेष्ठ मानता था। आर्यो के शासन के बाद राजा के विशेषाधिकार मे परिवतन हुआ। मागरिट मरे का कहना है,"लगता है कि अठारहवे राजवश तक किसी निम्नस्तरीय व्यक्ति मे साहस न था कि राजा के देवता को पूजे, किन्तु हिक्सोस् अधिकार के दोगन मिस्र मे एक परिवर्तन आया। अठारहवे वश के योद्धा-राजाओ ने अपने सैनिको के साथ अभियान के खतरो ओर कठिनाइयो का सामना किया था वे पूर्वकाल के अलग-थलग रहने वाले देव राजाओ की तुलना म अधिकार मानवीय और उदार थे। (मरे की उपरोक्त पुस्तक पृष्ठ 118 पर) मुख्य बात यह कि कुछ समय के लिए सूर्य के सबध मे प्रबुद्ध मिस्री जनो की मूल धारणा ही बदल गई। मागरिट मरे के अनुसार सूय उष्मा का स्रोत था प्रकाश का नहीं। सघन अधकार मे सूय की यात्रा के विवरण से यह धारणा पुष्ट हो जाती है। लगता है कि पहले पहल (राजा) अखेनातोन् अथवा उनके परामशदाताओ ने जाना कि उष्मा के साथ सूर्य प्रकाश का स्रोत भी है।" (मरे की पुस्तक ट स्लेण्डर दैट वाज इजिप्ट के पृष्ठ 119 को देखें)

अठारहवीं से सोलहवीं सदी ई० पू० के बीच रचे स्रोत्र मे सूय के लिए कहा गया है "जो दोनो भूखडों को प्रकाशित करता है और शातिपूर्वक आकाश को पार करता है।" (प्रिचार्ड ऐन्शेण्ट निअर ईम्टर्न टेक्सट पृष्ठ 369)

पद्रहवीं से चौदहवीं सदी के बीच के अन्य स्रोत के बारे मे प्रिचार्ड ने अपनी उक्त पुस्तक के पृष्ठ 367 मे लिखा है"साम्राज्य की तथा अतर्राष्ट्रीय सपर्को की शक्तियॉ मिस्र को अमर्ना क्राति से पहले ही विश्ववाद की ओर तथा एकेश्वरवाद के आंशिक रुझान की ओर प्रवृत्त कर रही थीं।" जो अतर्राष्ट्रीय सपर्क मिस्रियो को इस दिशा मे प्रेरित कर रहे थे, वे अवश्य ही भारतीय आर्यो से सपर्क बताने वाले सबध रहे हागे। अमर्ना क्राति राजा अमेनूहोतेम् चतुर्थ ने की थी। इन्होने थेबेस् नगर छोडकर तेल् एल् अमर्ना मे अपनी राजधानी बनाई थी। प्रिचार्ड के शब्दो मे "धर्म, राजनीति, कला और साहित्य मे" अमर्ना क्राति ने मिस्र की परपरागत और जड जीवन पद्धतियों से स्पष्ट विच्छेद के लिए प्रयत्न किया था।" इस प्रयत्न मे सूर्य की नई उपासना पद्धति शामिल है। मिस्र मे अनेक देवताओ की पूजा होती थी। इन्हे सूर्य से जोडा गया, मानो वे सब उस एक देव के अश हो। पुराने

देवता अमोन् (थेबेस् के मेघरूप देव) सूयवाचकरे के साथ जुडकर अमोन् रे बने। सेबेक्(मकर देव) सेबेक् रे कहलाए। हिक्सास् को निकालने के बाद मिस्र मे जो "नया राज्य" कायम हुआ, उसमे मागरिट मरे) द स्लेण्डर देट वाज इजिप्ट के पृष्ठ118) के अनुसार" सूर्योपासना सभी अधिकारिक कमकाण्ड मे फेल गइ, जहॉ तक सभव था, पूजा की विशेष रीतियो मे परिवतन हुआ, ओर पूजा का बहुत कुछ मानक रूप स्थिर किया गया।"

प्रिचाड के अनुसार (एन्शेट निअर ईस्टनन्टेक्टस पृष्ठ 369) राजा अमेन् होतेप् चतुथ ने अपना नाम बदल कर अख्-एन-अतोन् रखा। सूयबिब को अतोन् कहा जाता था, अखेन्-अनोन् का अर्थ हुआ सूय का सेवक। बिब को सूर्य का प्रतीक बनाकर अखन्-अतोन् ने देवता के मानवीय रूप को त्याग, आकाश मे उनके प्रत्यक्ष जीवनदायी रूप तथा प्रकाश की व्याप्ति पर बल दिया। चौदहवीं शताब्दी इ० पू० मे रचे हुए सूर्य के एक स्तोत्र के अनेक अश ऋग्वेद तथा उपनिषदो मे सूर्य के प्रत्यक्ष रूप और उसकी व्याप्ति का स्मरण कराते हे। प्रिचाड न अपने ग्रथ"एन्शेट निअर इस्टर्न टेक्टस के पृष्ठ 370 पर वह अश इस प्रकार उद्धृत किया है

तुम आकाश के क्षितिज पर भव्य रूप में प्रकट होते हो,
हे जीवत अतोन् तुम जीवन का प्रारभ हो।
पूर्वी क्षितिज पर जब तुम उदय होते हो,
अपने रूप से तुम हर प्रदेश को भर देते हो।

प्रिचार्ड का मत है कि अतोन् की उपासना राजा तक सीमित थीं। राजा के दरबारी जन तो राजा को ही पूजते थे ओर अधिकाश मिस्री जनता या तो नए मत को जानती न थी या उसकी विरोधी थी। मागरिट मरे का कहना है कि सूर्य की पूजा पर राजा का अधिकार था। यद्यपि आगे चलकर कुछ अभिजातो ने उसे अपना लिया पर" वह जनता का धर्म कभी नहीं बनी। उसका पूर्ण विकास अखेन्-अतोन् के शासन मे हुआ।

आर्यो के शासन काल के दौरान ओर उसके बाद मिस्र के धर्म और वहॉ की सस्कृति म महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए, यह तथ्य असंदिग्ध है। इस प्रसग मे मागरिट (द स्लेण्डर दैट वाज इजिष्ट पृष्ठ 99) ने मिस्री धर्म के विकास की जो तीन मजिले गिनाई हे, वे ध्यान देने योग्य हे। पहली मजिल प्रागैतिहासिक काल की है। उसमे मृत्यु के बाद जी उठने वाले देवता की पूजा का चलन हुआ। विदेशी सस्कृति के प्रभाव से विदेशी विचारो को आत्मसात् करने के ज्ञान की वृद्धि से और इसके फलस्वरूप रहन-सहन के मानदड के उन्नत होने से सभ्यता के विकास मे वृद्धि हुई। नए विचारो का यह समन्वय ओसिरिस् की पूजा मे व्यक्त हुआ। मिस्र के आस पास इस समय कोई ऐसा देश न था जो अपनी सभ्यता से मिस्र को प्रभावित करता। पूणकी ओर ऐसे केवल दो देश थे सुमेर और भारत, जिनके विचारो को आत्मसात् करके मिस्र उन्नति कर सकता था। यह सभव है कि भारत ने सुमेर के साथ, सुमेर के माध्यम से अथवा सीधे मिस्र को प्रभावित किया हो।

दूसरी मंजिल मे राजवशो का अभ्युदय हुआ। उत्तर के राजाओ का देवता होरस्-श्येन

था, दक्षिण के राजाओ का सेतेखू-मकर मरे के अनुसार (द स्लेण्डर दैट वाज इजिप्ट पृष्ठ 99-118) मिस्र के दोनो भागो के एकीकरण के साथ वे दोनो देवता ओसिरिस् के देवतत्र मे शामिल कर लिए गए। तीसरी मंजिल मे "सूर्योपासना का आयात हुआ", आयात इसलिए कि मिस्र मे वषा बहुत ही कम होती थी, और सूर्य को शत्रुभाव से देखा जाता था। यह अत्यत आश्चर्य की बात है कि जिस देश मे सूर्य को शत्रुभाव से देखा जाता था उसमे शताब्दियो तक सूर्योपासना का चलन बना रहा। मार्गरिट मरे का विचार है कि सूर्योपासना का आयात सभवत किसी उत्तरी बादलो वाले देश से हुआ होगा। उत्तर के एसे किसी सभ्य देश की ओर लेखिका ने सकेत नहीं किया जहॉ से इस उपासना का आयात हो सकता हो। सारी सभावनाऍ पूव मे भारत की ओर सकेत करती है। अखेनू-अतोनू के शासन मे सूय-पूजा का पूण विकास हुआ, इसका कारण मिस्र पर हिक्सोस् कहलाने वाले आर्य शासको का प्रभाव ही हो सकता है।

राजा के देवता अलग, प्रजा के देवता अलग, इस स्थिति मे परिवतन हुआ मार्गरिट मरे के अनुसार, हिक्सोस शासन के दौरान। सूर्योपासक राजा अखेनू-अतोनू ने जो अमर्ना क्राति की, उसका प्रयत्न था कि धम, राजनीति, कला और साहित्य मे मिस्र की परपरागत और जड जीवन पद्धतियो से स्पष्ट नाता तोडा जाए। अतोनू सबधी स्रोत इस प्रयत्न का फल था। अमर्ना क्राति का प्रभाव मिस्र तक सीमित नहीं रहा। बाइबिल के एक अश का नाम है भजन सहिता। प्रिचाड ने बताया है कि इसके एक सौ चौथे भजन तथा अतानू स्रोत मे भाव साम्य और शब्द साम्य अनेक बार लक्ष्य किया गया है ओर यह भी तर्क किया गया है कि दोनो मे प्रत्यक्ष सबध है—ओर टॉयनवी (ए स्टडी ऑफ हिस्ट्री खड-1 भाग-1) के अनुसार उन्नीसवीं से सोलहवीं सदी ई० पू० के बीच का समय सीरिया के इतिहास मे आय प्रवासियो के प्रभुत्व का समय है जो हिक्सोस् नाम से जाने जाते हे।" आर्यो का प्रभाव सीरिया से फिलिस्तीन पहुॅच सकता था और मिस्र से होकर भी। इस प्रभाव से पश्चिमी एशिया और मिस्र के लोगो का चिंतन उनका आचारण परिवर्तित हुआ, यह निष्कर्ष तर्कसगत प्रतीत होता हे।

डॉ० रामविलास शर्मा ने पश्चिमी विद्वानो की कृतियो और ऋग्वेद की ऋचाओ के माध्यम से यह भी प्रमाणित कर लिया है कि ग्रिस, सुमेर और भारत की "सृष्टि" सबधी विचारधारा मे पर्याप्त समानता है। प्रिचार्ड के ग्रथ "एन्शेट निअर ईस्टर्न टैक्टस" मे पृष्ठ 3 आगे इसी प्रकार के अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये गये है।

भारत, सुमेर और मिस्र की सास्कृतिक एकता के सबध मे डॉ० रामविलास शर्मा ने ऋग्वेद के मत्रो के उदाहरण देकर यह प्रमाणित कर दिया हे कि भारत से पश्चिमोत्तर देशो मे गये हुये आर्यो ने वहॉ की सभ्यता और सस्कृति को इस प्रकार प्रभावित किया कि सभी देश "भारतीय आर्य सस्कृतिमय" हो गये।

सामाजिक विकास के क्षेत्र मे भी भारतीय आर्यो का विशेष योगदान रहा है। भाषा की दृष्टि से वैदिक सस्कृत ने प्राय सभी भाषाओ को जन्म दिया अथवा उन भाषाओ का सस्कार किया। यह तथ्य अब पूणत मान्य हो गया हे कि ग्रीक लेटिन भाषाओ की जननी

वदिक सस्कृत ही है।

पश्चिमी देशो के इतिहासकार और विद्वान यह कदापि स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं थे कि विश्व की सवप्रथम सस्कृति एव सभ्यता—भारत की भूमि की देन है। आर्यो का मूल स्थान भारत है। ऐसे अनेक पश्चिमी देशो के इतिहासकारो एव विद्वानो न अनेक मनगटन्त तथ्यो का सहारा लेकर यह सिद्ध करने का निरतर प्रयास किया कि आर्यो का मूल स्थान यूरोप अथवा पश्चिमी एशिया के देश हे।

परन्नु, ऐसे विद्वान, यह सिद्ध एव प्रमाणित करने मे पूर्णत असफल रहे कि "ऋग्वेद" की रचना यूरोप या पश्चिमी एशिया मे की गई। जिस देश के ऋषियो ने विश्व की प्रथम कृति "ऋग्वेद" की रचना की—वही देश ससार का पहला सभ्य देश है। उस देश मे आर्यो का मूल स्थान भी हे। ऐसे तथ्यो ने पश्चिमी विद्वानो की सोच पर भी गहरा प्रभाव डाला। जबसे एसी धारणा ने बल पकडना शुरू किया नो सहमते हुये पश्चिमी विद्वान एव इतिहास कार भी यह मानने के लिये विवश होते गये कि आर्यो का मूल स्थान भारतवर्ष ही है।

सन् 1922 मे यूरोप के प्रसिद्ध विद्वान पार्जिटर ने खुलकर इस धारणा का विरोध किया कि "आर्यो ने उत्तर पश्चिम से आकर भारत मे प्रवेश किया था। उन्होने कहा कि पहले एशिया से भारत मे आय नहीं गये, बल्कि भारत के आर्यो ने पश्चिम एशिया के देशो मे आकर आर्य सस्कृति का प्रचार-प्रसार किया। उन्होने ही यह बात भी स्वीकार की थी कि आर्यो का कहीं भी और किसी इतिहास मे भी यह विवरण नहीं मिलता कि आर्य यूरोप आदि देशों से भारन आये, जबकि ऐसे अनेक उदाहरण यूरोप और मध्य एशिया के इतिहासो मे भरे पडे हे कि भारनीय आर्य भारत से कई बार अलग-अलग समूहो मे और विभिन्न कालखडो म पश्चिमी देशों मे आये ओर उन्होने उन देशो मे जाकर अपनी विशिष्ट सस्कृति का प्रचार-प्रसार ही नहीं किया बल्कि अपने अनेक उपनिवेश" भी स्थापित किये।

पार्जिटर की बात का समर्थन करते हुये सन् 1928 में लैगडन ने भी यह प्रमाणित किया कि आर्यो का मूल स्थान भारत ही है। इधर नित नये प्रमाण मिलते जा रहे हैं कि आर्यो का मूलस्थान भारत ही है ओर भारत मे ही आर्य पश्चिमी एव पूर्वी देशो मे गये। बल्कि उनकी ही सताने, यूरोप, मध्य एशिया और पूर्वी देशो मे निवास कर रही है। अग्रेज भी अब अपने पूर्वजो की मूलस्थान भारत को स्वीकार करने लगे है। लार्ड कर्जन और मेक्समूलर आदि कुछ विद्वानो की स्पष्टोक्ति को हम इस अध्याय मे उद्धृत कर चुके है।

पश्चिमी देशो के विद्वान एव इतिहासकार अब जमकर शोधपत्रो के माध्यम से यह सिद्ध करने पर लगे है कि आर्यो का मूलस्थान भारत ही है और आर्यो ने ही विश्व को जागृति का सदेश दिया हे। अब सब अपने को आर्यजाति का वशज बताने लगे है और अपना सबध भारत से स्पष्ट रूप से जोडने लगे है। इधर ब्रिजेट अर्लाचन और रेमड अलचिन (1968) से लेकर कौलिन रेनफ्रीव (1989) तक के पुरातत्त्वज्ञ, इतिहासकार एव प्राचीन साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान और विश्व के भाषाविद् भारत की मूल्यवान कृति "ऋग्वेद" से लेकर पौराणिक साहित्य का गभीर अध्ययन करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँच गये है कि भारत ही आर्यो का अर्थात विश्वभर मे फैले हुये आर्यो का मूलस्थान है।

''पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद के यशस्वी लेखक डॉ० रामविलास शर्मा का अध्ययन भी इसी दिशा का एक महत्त्वपूर्ण स्तभ है जिससे ससार के विद्वानो एव भाषाविदों की ऑखे खुल जाती है।

आर्यो का मूल स्थान सप्त सिन्धु (सप्तसैधव)

अब विश्व के अधिकाश विद्वान एव इतिहासकार यह मानने लगे हे कि आर्यो का मूल स्थान आर्यावर्त्त ही हे और यह भी स्वीकार करने लगे हे कि आयावर्त्त मे जहॉ सप्त सिन्धु है—वही आय जाति का जन्म स्थान है। अब तक के निष्कर्षो के आधार पर यह भी स्वीकार किया जाता रहा हे कि आर्यावर्त्त का सप्तसिन्धु वाला अचल वतमान पजाब मे हे। इस तर्क के पीछे अनेक इतिहासकारो ने पजाब की पॉच नदियो के साथ नद ''सिन्धु'' का उल्लेख अवश्य हे। इसी ''सिन्धु'' नदी का आधार मानकर अधिकाश विद्वानो ने पजाब अचल को ही आर्यो का मूलस्थान ''सप्तसिन्धु'' (सप्तसैधव) मान लिया था। अविनाश चन्द्र दास, नारायण पावगी और डॉ सपूर्णानन्द जैसे प्रसिद्ध विद्वान भी पजाब अचल को ही ''सप्तसिन्धु'' स्वीकार करते है।

अब इस मान्यता को लेकर भी विवाद हो गया। कुछ भारतीय और विदेशी इतिहासकारो ने यह प्रश्न उठाया है कि यदि ऋग्वेद को ही आधार मानकर यह निर्णय लेना है तो सपूर्ण ऋग्वेद का गहराई से अध्ययन करने के पश्चात् ''सप्तसिन्धु'' क्षेत्र की स्पष्ट पहचान कर लेनी चाहिये। ऐसे विद्वानो का तर्क था कि पहले पजाब के साथ ''ऋग्वेदिक सप्तसिन्धु'' की भौगोलिक, ऐतिहामिक, धार्मिक एव सामाजिक वास्तविकता को जान लेना चाहिये। इस पर दृष्टि डाले बिना पजाब को सप्तसिन्धु वाला क्षेत्र मानना उचित नहीं है। इन सिद्धातों का कहना था कि ऋग्वेदकालीन स्थितियो की पजाब से कुछ भी समानता नहीं मिलती।

स्वामी दयानन्द, प्रो बेनफे, प्रो वेबर, श्री एटकिन्सन अलबेरुनी, श्री भगवद्दत, श्री जयचन्द्र विद्यालकार ओर श्री रामदास गौड के कथनो से जो ध्वनि निकलती है, उसके अनुसार आर्यो का आदि देश पजाब नहीं वरन् मध्य हिमालय मे, गगा-सरस्वती के आस पास, कैलाश-''मानसरोवर का क्षेत्र है। भोगोलिक तथ्यो ने इसी अचल का प्राचीन नाम हिमवत, स्वर्ग, ब्रह्मावर्त्त, कुरू, कैलाश केदारखड तथा वर्तमान नाम गढवाल अथवा उत्तराखड स्पष्ट किया है। इसी अचल को सात महत्त्वपूर्ण देव नदियो का उद्गम एव सधिस्थल होने के कारण ''सप्तसिन्धु'' भी कहा गया है।

वेदो के प्रकाड पडित दयानन्द सरस्वती, एटकिन्सन और जयचन्द्र विद्यालकार जैसे विद्वानो ने मध्य हिमालय (गढवाल-कुमायूँ) के कई मार्गो से ऋषिकेश से कैलाश-मानसरोवर तक की यात्राये कीं और यह निर्णय लिया कि आर्यो का मूल निवास उत्तराखड (वर्तमान गढवाल और कुमायूँ) से लेकर वर्तमान तिब्बत के कैलाश-मानसरोवर तक का भूभाग होना चाहिये। इन विद्वानो ने ऋग्वेदिक स्थापनाओ का तुलनात्मक अध्ययन भी किया और यह निष्कर्ष निकाला कि समस्त उत्तराखड से लेकर कैलाश-मानसरोवर वाला क्षेत्र, आदि मानव एव विभिन्न प्रकार की वनस्पतियो का जन्मदाता भी है। यहीं आर्यजाति का जन्म स्थान है।

परन्तु, विश्व के इतिहासकारो ने इस तर्क को मान्यता नही दी और यही मानते रहे कि आर्यो का मूल स्थान सप्तसिन्धु है और वह सप्तसिन्धु पजाब मे ही हे। इस सदर्भ मे ऐसा निश्चय सा हो गया था कि पजाब ही आर्यो का मूलस्थान है।

सप्तसिन्धु के सबध मे नया मोड

परन्तु, कुछ वष पहले वेदो के व्याख्याता हरिराम धस्माना ने "वेदमाता" पुस्तक को लिखकर ऋग्वेद के विद्वानो को "सप्तसिन्धु" के क्षेत्र के विषय मे सोचने के लिए विवश कर दिया हे। क्याकि "हरिराम धस्माना" ने अनेक ऋग्वैदिक उद्धरणो द्वारा, आर्यो के आदि दश क सबध मे एक नया रहस्योद्घाटन किया है। उनके कथनानुसार गढवाल की अलकनन्दा ही ऋग्वेदिक सिन्धु है, जिसमे सप्तसिन्धु (गढवाल की सप्त सरिताएँ सरस्वती, धौली, नदाकिनी, पिडर, मदाकिनी, नयार) सधि करती है तथा ऋग्वेद मे वर्णित अन्य 90 एव 99 नदियॉ एव धाराएँ भी इसी मे आकर मिलती है। उनके निष्कर्ष अधिक तर्कसगत और विचारणीय हे। केप्टेन शूरवीर सिह पवार, ने भी अमृत बाजार पत्रिका, मई, 1958 मे एक लेख लिखा था जिसमे उन्होने अनेक भौगोलिक एव ऐतिहासिक वास्तविकताओ के आधार पर, कई भूगर्भविशेषज्ञो, पुरातत्त्वान्वेषियो एव इतिहासकारो के तर्कसगत प्रमाण प्रस्तुत करके वतमान गढवाल को ही आर्यो का मूलस्थान प्रमाणित किया है।

इसी क्रम मे विख्यात कवि, इतिहासकार एव विद्वान भजनसिह "सिह" ने "आर्यो का आदि निवास मध्यहिमालय" नामक पुस्तक की रचना कर यह सिद्ध करने का पूर्ण प्रयास किया है कि आर्यो का मूल स्थान-उत्तराखड वाला क्षेत्र और वर्तमान तिब्बत का कैलाश मानसरोवर वाला अचल ही आर्यो का मूल स्थान है।

"आर्यो के आदि निवास मध्य हिमालय" के प्रकाशन के बाद विद्वानो मे यह चर्चा होने लगी कि ऋग्वेद आदि भारतीय वाडमय मे मध्य हिमालय का विशेष महत्त्व है। इसमे तनिक भी सदेह नहीं है कि आर्यो ने इस अचल को श्रद्धा की दृष्टि से देखा ही नहीं अपितु इस अचल को देवभूमि, तपोभूमि आदि नाम देकर—अत मे स्वर्गभूमि होने का गौरव प्रदान किया है।

इसलिये यह आवश्यक हो गया है कि "सप्तसिन्धु" के विषय मे विस्तार से जानकारी प्राप्त की जाए। सबसे पहले "सरस्वती नदी" के सबध मे जानकागी प्राप्त करना इसलिये अपेक्षित हो गया हे कि इसी ऋग्वेदिक सरस्वती के मूलस्थान की स्पष्ट जानकारी आर्यो के मूल निवास की पहचान करवा सकती है ओर यह इसलिये भी आवश्यक है कि ऋग्वेद मे सरस्वती का बार-बार उल्लेख हुआ है।

ऋग्वैदिक सरस्वती

वैदिक साहित्य मे "सरस्वती" का आदर उत्तर वैदिक युग की गगा से भी अधिक माना जाता था। ऋग्वेद के कई सूक्तो मे "वृहद्देवता" के रूप मे "सरस्वती नदी का स्तवन"—ऋग्वेदिक आर्यो की क्रीडाभूमि थी।

परन्तु जिस देवनदी सरस्वती का ऋग्वेदिक काल की सप्तसिन्धुओ मे महत्त्व एव वणन है, उसके भोगोलिक अस्तित्त्व का अभी तक कोई ठोस निर्णय नहीं हो पाया हे।

ऋग्वेद मे सरस्वती को सिन्धुमाता (सरस्वती, सत्पथी, सिन्धु माता ऋग्वेद—7 36 6) माताओ मे श्रेष्ठ माता, नदियों मे श्रेष्ठ नदी, देवियो मे श्रेष्ठ देवी(अम्बित मे नदी से देवितये सरस्वति-ऋग्वेद 2 41 16) और ऋषियो द्वारा सेवित (सप्तस्वसा सुजुष्टा/सरस्वती स्तोभ्या भूत/ऋ 6 61 10) कहा गया है। इसी सरस्वती को सप्तसिन्धु मे जो जलराशि हे-उस जलराशि की उत्पादिका और सपूर्ण ज्ञान को जागृत (महो अर्ण सरस्वती प्रचेतयति केतुना ऋग्वेद 1 3 12) करने वाली बताया गया है।

प्रश्न यही है कि ऐसी पवित्र नदी भारत मे कहॉ है और उसका स्वरूप क्या था ? इस सबध मे ऋग्वेद के उदाहरण देकर वस्तुस्थिति का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

"सरस्वती सूक्त" (ऋ०6/61) मे अनेक बार सरस्वती का नाम आया है, परन्तु किसी भी मत्र मे सरस्वती के साथ सिन्धु का उल्लेख नहीं है, क्योकि आगे चलकर सप्त सरिताओ के सयोग से स्वय सरस्वती ही सिन्धु बन जाती हे। इसी सूक्त के मत्र 12 की व्याख्या मे आचार्य सायण ने उसको त्रिलोकव्यापिनी गगा आदि सप्त सरिताओ से युक्ता कहकर, उसके साथ गगा का जो नाम दिया वह अकारण नहीं हे। उससे भी गगा के साथ सरस्वती की भौगोलिक एव आध्यात्मिक स्थिति स्पष्ट हो जाती हे। इस प्रकार, प्राचीन आर्यो द्वारा सरस्वती जिस आध्यात्मिक स्थान पर प्रतिष्ठित थी, उनकी सन्तति द्वारा वह आज भी गगा जी के नाम से अपने उसी मूलस्थान पर प्रतिष्ठित है। ऋग्वेद के "कौतकी ब्राह्मण"(7/6) मे वर्णन है कि उत्तरी भूभाग मे, वाणी की देवी सरस्वती का वास है। इसीलिए सरस्वती के अध्ययन के लिए जो लोग वहॉ जाते है उनका उपदेश लोग श्रद्धापूर्वक सुनते है। सरस्वती नदी का यह तटवर्ती भूभाग अष्ट वसुओ, सप्त ऋषियो का तपस्थान और वैवस्वत मनु का भी शरणस्थल था। इसीलिए आर्यो ने इस भूमि को "स्वर्ग" भी कहा है। देवनदी सरस्वती का यह पावन क्षेत्र प्राचीन आर्यो के अनेक यज्ञ-यागो की देवभूमि है।

ऋग्वेद(6/61/2) मे वर्णित है "नदी रूप मे प्रकट होकर सरस्वती ने अपनी वेगवती और विशाल तरगो से ऊॅचे पवतो को इस प्रकार मग्न कर दिया है, जिस प्रकार जडो को खोदने वाले मिट्टी के ढेरो और टीलो को तोड डालते है। आओ' हम रक्षा के लिए, स्तुति ओर यज्ञ द्वारा दोनो तटो का विनाश करनेवाली इस सरस्वती की परिचर्या करे।" इसी सूक्त के मत्र 7 मे सरस्वती को भीषण (घोरा) हिरण्यमय रथ पर आरुढ और शत्रुघातिनी, मत्र 8 मे इसे अपरिमित, अकुटिल, दीप्त और अप्रतिहगति, जलवर्षक-वेग एव प्रचड शब्द कर विचरनेवाली (अमश्चरति रोरूवत्) कहा गया है।

सरस्वती ही सिन्धु है

ऋग्वेद मे जल का विशेष महत्त्व है। इसीलिये ऋग्वेद मे कहा गया है कि जल से भरी हुई नदियॉ मेरी रक्षा करे (अवनुमा सिन्धुव पिन्वमाना' ऋ० 6,52,4) इस प्रार्थना के बाद "सरस्वती" से प्रार्थना की गई है कि हे "सरस्वती" तुम नदियो के जल से पूणत भरी

गइ हा (सरस्वती सिन्धु भि पिन्वमाना, ऋ- 6, 52, 6)

सरस्वती के सदर्भ मे "सिन्धुभि" का वही अर्थ हे जो "सिन्धव" का अथ है। अथात् सरस्वती मे सभी नदियो के जल भर जाने से उसका नाम "सिन्धु" पड गया। ग्रिफिथ ने इस ऋग्वेद की इस ऋचा का अनुवाद इस प्रकार किया है

Saraswatı, who swells with rıvers

सहायक नदियों के जल से समृद्ध होने वाली सरस्वती ह और इसलिए उसका नाम "सिन्धु" भी हे। ऐसी विशेषताओ वाली सरस्वती नदी का अस्तित्व समतल पजाब, राजपूताना, कुरुक्षेत्र तथा प्रयागराज मे स्थापित करना हमे पूणन उपहासास्पद लगता है।

सप्तसिन्धु क्षत्र मे सरस्वती को सिन्धु कहा गया है, उसका यह स्थान देवकृत हे ऋग्वेद (3, 33, 4) मे यही लिखा है "अनु योनि देवकृत चरन्ती"

उत्तुग हिमालय से चलकर समुद्र तक पहुँचने वाली इस पवित्र नदी सरस्वती ने चन्द्रवशीय राजा नहुष की प्रार्थना को सुनकर सहस्रो वर्षो के लिये घी ओर दूध की व्यवस्था कर दी थी। ऋग्वेद (7, 95, 2) मे इस प्रकार वर्णन है

एकाचेतत् सरस्वती नदीना शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात्।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृत पयो दुदुहे नाहुषाय।।

यहॉ हेमवन्त और शिशिर की एक जैसी ऋतु होती है—वहीं सरस्वती का पावन क्षेत्र हे। यह वही क्षेत्र हे जहॉ माथव विदेघ ओर उसके पुरोहित रहूगण गौतम ने सबसे पहले अग्नि प्रज्ज्वलिन की थी। इसका विवरण ऐत ब्राह्मण (11, 1, 15, 26, 2) मे इस प्रकार दिया हुआ हैं

पचतबो हेमत शिशरयो समासने तावान सवत्सर ।

"महाभारत" (शल्यपर्व) मे सप्तसरस्वती का उल्लेख है, जिनमे दो विशाला ओर विमलोदका हिमालय की उपत्यकाओ मे बहती है। विशालो के निकट बहनेवाली यही सरस्वती है। "महाभारत" मे ही बदरिकाश्रम मे सरस्वती के तट पर भगवान् कृष्ण द्वारा बारह वर्ष कठिन तपस्या करने का उल्लेख है। महाभारत आरण्यकपर्व के अनुसार, उत्तर दिशा मे वर्णित यमुनानदी के साथ सरस्वती का उल्लेख हे

सरस्वती पुण्यवहा हृदिनी वनमालिनी।
समुद्रगा महादेगा यमुनायत्र पाडवा।। (8812)
तत्रैव भरतो राजा चक्रवर्ती महाशया ।
सरस्वती नदी सद्भि सतत पार्थ पूजिता।। (8819)

इसी प्रकार "महाभारत" (वन०111/10-11 तथा 161/43, 51) के अनुसार, कैलाश म गधमादन पवत पर सरस्वती का अभिषेक किया या था। शल्यपर्व (27/28, 31 मे स्पष्टत इसी सरस्वती के तट पर कुबेर द्वारा कुबेरतीर्थ मे देवत्व प्राप्त करने का उल्लेख हे। भीष्मपर्व (6128, 50) मे लिखा है कि ब्रह्मलोक से उतर कर त्रिपथगामिनी गगा सात धाराओ

(सप्तसिन्धुओं) मे विभक्त हुइ। इन सातो में सिन्धु और अलकनदा व सरस्वती सम्मिलित ह। "महाभारत" (आदि 19/19/21 और भीष्म 6/48) मे वर्णित है कि सरस्वती गगा की सात धाराओ मे मुख्य धारा हे, जिसका जल पीने से पाप तत्काल नष्ट हो जाते हे। भीष्मपव (9/14) के अनुसार सरस्वती उन पवित्र देवनदियो मे एक है, जिनका पवित्र जल भाग्तवासी पीते हे। यह स्पष्ट है कि भारतवासी गगा-जल पीते है, जिसकी मूल द्दारा स्वय सरस्वती नदी का जल, जो इतिहासकारो को अब तक दिखायी ही न दिया, वहॉ के जल को पवित्र समझकर भारतवासी नहीं पीते। सरस्वती ब्रह्मसर मे प्रकट होती हे (शल्यपर्व 42129)। सरस्वती ओर अलकनदा के सगम केशवप्रयाग म देवता भगवान् केशव की उपासना करते है (वनपर्व 82/ 124, 127)। अलकापुरी के अतगत मानसरोवर और सरस्वती नदी मे विहार करते हुए पुरुरवा ने उवशी के साथ सहस्रो वर्ष व्यतीत किये थे। इससे भी अलकापुरी के निकट सरस्वती की स्थिति स्पष्ट होती हे

सहत्व साव निपतिरलकाया चैत्ररथादि वनेष्वमल
पदमखडेषु मानसादि सरस्वती रमपीयेषु रममाण
षष्टिवर्ष सहस्रत्राण्यनुदिन प्रवर्द्धमान प्रमादो अ नयत

—विष्णु पुराण 4/6/48

ऋग्वेदिक सरस्वती की इस भौगोलिक स्थिति को पूर्णत स्पष्ट करने के लिए अत मे कृष्णद्वैपायन वेदव्यास का प्रमाण देना पर्याप्त है। वेदव्यास अपनी प्रसिद्ध "व्यासगुफा" मे बेठकर "महाभारत" (जयकाव्य) का आरभ करते हुए, इसी क्षेत्र के मुख्य-मुख्य अधिष्ठाताओ-ऋषि नर-नारायण एव अतिनिकट बहती हुए पुण्यतोया सरस्वती को सवप्रथम नमस्कार करते है

नारायण नमस्कृत्य नरचैव नरोत्तपम्।
देवीं सरस्वतीं व्यास ततो जयमुदीरयेत्।।

इन तथ्यो का स्पष्ट अर्थ यह है कि सरस्वती वेदो की मुख्य नदी है और अलकनदा उसकी सहायक नदी है। आज दोनों मिलकर गगा कहलाती हैं। इसीलिए ऋग्वेद मे, सबसे अधिक बार सरस्वती का उल्लेख किया गया है और गगा का अल्प, क्योंकि सबकी माता, शीर्षस्थान पर बहने वाली मूलधारा सरस्वती है और उसी मे अलकानदा-गगा आदि सप्त सरिताओ का जल विलीन होता है।

आधुनिक प्रमाण

ऋग्वेदिक सरस्वती के भोगोलिक अस्तित्व तथा उसके सप्तसिन्धुओ मे श्रेष्ठतम एव प्रथम होने की पुष्टि मे हम सरस्वती के अन्वेषको का ध्यान महापंडित राहुलसाकृत्यायन-रचित "हिमालय परिचय" की ओर भी आकर्षित करते है। राहुल जी स्वय सरस्वती के तट पर उपस्थित होकर लिखते है "माणा गॉव के आगे सरस्वती (अलकनदा की बडी शाखा) पर एक बडी चट्टान पुल की तरह पडी हुई है। लोगो ने इसका नाम "भीमसेन का पुल" रख

लिया हे। एक ऐसा ही पुल कुछ दूर आगे भी है। तिब्बत का रास्ता सरस्वती के किनारे-किनारे जाता हे। सरस्वती के उस पार तिब्बत या "हूयदेश" है (पृ 479)। राहुल जी के इस कथन से जहॉ सरस्वती की प्रखरता एव गगा आदि सप्तसिन्धुओ की सबसे ऊपरी धारा होने की पुष्टि होती है, वहॉ उससे मनु के इस कथन की भी प्रामाणिकता सिद्ध हो जाती है कि सरस्वती के उस पार म्लेच्छो का देश है। (म्लेच्छदेशतत पर) पुष्टि हो जाती है तथा इससे यह भी स्पष्ट हो जाता हे कि ऋग्वेदिक सरस्वती को आज भी सरस्वती कहते है और वह आज गगा नाम से विख्यात हे। ऋग्वेदिक सरस्वती की विवादास्पद स्थिति को राहुल जी ने ओर भी स्पष्ट करने के लिए लिखा है—"यदि किसी नदी की मुख्य शाखा वही हो सकती हे, जो सबसे अधिक लम्बी हो और जिसमे पानी अधिक आता हो, तो इसमे संदेह नहीं, कि हमारी गगा की मुख्य धारा अलकनदा हे, और माणा के पास मिलने वाली दो धाराओ मे भी अलकनदा नहीं बल्कि सरस्वती को ही मुख्यधारा मानना पडेगा, जो कि माना सुमेरू के शिखर डाडे से आती है" (पृ 466)। राहुल जी ने सरस्वती को भौगोलिक स्थिनि के सबध मे अपने दूसरे ग्रथ "कुमायूँ" (पृष्ठ 26) मे भी यही उद्गार प्रकट किए ह। एक पुतगाली पादरी अद्रादे भी, जो सन् 1624 मे माणा होकर तिब्बत गया था, सरस्वती को गगा का मूल स्रोत मानता है।

सरस्वती (सिन्धु) का स्थान गगा ने लिया

ऐसा प्रतीत होता है कि पुराण काल मे गगा का महत्त्व अधिक बढ गया और सरस्वती का उतना आदर नहीं रह पाया। इसीलिये मुख्य नदी सरस्वती का स्थान गगा ने ले लिया। ऋग्वेद आदि ग्रथो मे सरस्वती का जितना गुणगान किया गया है— कालातर मे वह सारा यशगान गगा के नाम से होने लगा। क्योकि यह तथ्य पूर्णत स्वीकार किया जाने लगा था कि "सरस्वती" ही गगा है। अनेक नदियो के जल को समेटने के कारण सरस्वती का नाम "सिन्धु" पड गया था जो सिन्धु नाम कालातर मे सपूर्ण गगा को मिला। पोराणिक काल मे गगा का महत्त्व इतना बढ गया कि सिन्धु नाम भी गोण हो गया और "गगा" ही उसका पवित्र-पावनी स्वरूप बन गया। हमारा यह मानना है कि पहले अलकनदा ही सरस्वती की मुख्यधारा थी। केशव प्रयाग मे सरस्वती की भेट अलकनदा से हुई। सरस्वती अपने साथ विष्णुप्रयाग मे धवल (धौली) गगा को साथ लेकर नदप्रयाग मे नदाकिनी और कणप्रयाग मे पिडर से भेटकर आगे बढ जाती है। रुद्रप्रयाग मे सरस्वती की भेट केदार भूमि की प्रसिद्ध नदी मदाकिनी से होती हे।

तब तक सरस्वती ही सिन्धु थी। पोराणिक साहित्य मे स्पष्ट उल्लेख है कि समर के पुत्रो की मृत आत्माओ को मुक्ति दिलाने हेतु राजा भगीरथ स्वर्ग से गगा को उतारकर मृत्युलोक मे लाये थे। वही धारा "भागीरथी" गोमुख से गगोत्तरी होकर टिकरी मे भिलगना के जल को साथ लेकर देवप्रयाग मे सरस्वती नामक सिन्धु से सगम बना लेती है ओर आगे चलकर व्यासघाट मे नयार नदी भी इस धारा मे मिल जाती है।

परन्तु, पोराणिक काल के बदलते हुये वातावरण ने सरस्वती से अधिक अलकनदा

को महत्त्व देना शुरू किया और गगा को सारा श्रेय देकर उस प्राचीन अर्थात् ऋग्वेदिक सरस्वती को महत्त्वहीन बना दिया। तब से अलकनदा और भागीरथी के सगम देवप्रयाग से गगा का स्वरूप निर्धारित किया गया। वास्तविकता यही है कि पुराणकाल से पहले सरस्वती ही प्रमुख नदी थी। जल प्रलय के बाद आर्यो ने इस समस्त क्षेत्र को स्वर्गभूमि घोषित कर दिया। इसलिये गगा-आर्यो की मुक्तिदाता नदी बन गई।

इन तमाम तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है कि ऋग्वेदिक सरस्वती आज भी बदरिकाश्रम के निकट केशव प्रयाग मे बडे वेग से अलकनदा से सगम करती है और वही ऋग्वेदिक सरस्वती कालातर मे अलकनदा का महत्त्व बढाती हुई—अत मे गगा बन जाती है।

सप्तसिन्धु का देश पजाब या मध्य हिमालय

अभी तक अधिकाश इतिहासकार और प्राचीन साहित्य के मर्मज्ञ यही मानते है कि आर्यो का सप्तसिन्धु वाला प्रदेश-पजाब है। परन्तु गहराई से अध्ययन करने के पश्चात् यह स्पष्ट आभास हो जाता है कि ऋग्वेद वाला सप्तसैधव पजाब मे न होकर हिमालय के मध्यभाग मे स्थित था और उसका क्षेत्र वर्तमान गढवाल, कुमायूँ से लेकर केलाश-मानसरोवर तक फेला हुआ था। भजनसिह "सिह" द्वारा लिखित "आर्यो का आदि निवास मध्य हिमालय" के पृष्ठ 86 से सप्तसिन्धु देश के विषय मे उनके जो विचार है—उन्हे हम अक्षरश उद्धृत करते हुये-उनका आभार मानते है।

ऋग्वेद (10/75/5,6) मे सप्तसिन्धु देश की गगा-यमुना-सरस्वती का सर्वप्रथम उल्लेख हुआ हे ओर उनके बाद अन्य नदियो का। इससे सिद्ध होता है कि आर्यो के आदि देश मे गगा-यमुना-सरस्वती ही महत्त्वपूर्ण नदियॉ थीं, और उन्हीं के प्रवाह क्षेत्रान्तर्गत आर्यो का आदिवेश सप्तसिन्धु था।

आर्यो के आदि देश सप्तसिन्धु मे सप्त प्रमुख नदियो के अतिरिक्त त्रिसप्त, नवति (90) ओर नवनवति (99) नदिया भी बहती थीं। "सिन्धु" शब्द का निर्वचन "निरुक्त" खड 26 मे तीव्रगामी से है (सिन्धु स्यन्दनात्)। यह नदी जाति के लिए अत्यन्त प्राचीन योगरूढ शब्द हे। निरूक्तकाल मे "सिन्धु" शब्द तीव्र प्रवाह के कारण पर्वत-प्रदेशो मे प्रवाहित प्रत्येक नदी के लिए प्रयुक्त होता था। सिन्धु नदी और समुद्र मे अनेक नदिया संधि करती है। इस कारण सिन्धु नदी ओर समुद्र सिन्ध के पर्याय है। सप्तसिन्धु से भी स्पष्टत सात नदियो का बोध होता है, किसी सिन्धु नाम की विशेष नदी का नहीं। इसी प्रकार जहॉ सात सरिताओ की जलराशि एकत्र हो, उस देश का नाम सप्तसिन्धव है।

पजाब पचनद अथात् पॉच नदियो का देश है। वहॉ सिन्धु के अतिरिक्त रावी, चिनाव, झेलम, व्यास ओर सतलज बहती हे, परन्तु आज वहॉ सिन्धु के अतिरिक्त इन नदियो मे से किसी का वेदिक नाम प्रचलित नहीं हे। जब सप्तसिन्धु की छ नदियॉ, परूष्णी, शुतुद्री, विपाशा, असिक्नी ओर वितस्ता पजाब मे अपने वैदिक नाम से प्रचलित नहीं है तो वे पजाब की वर्तमान सतलज, व्यास, चिनाव और झेलम है, इस तथ्य मे भी सदेह है। वहॉ केवल

सिन्धु का ही नाम अपरिवर्तित रहा है, यह धारणा युक्तियुक्त नहीं है। यदि वितस्ता, असिक्नी, विपाशा, परूष्णी और शुतुद्री पजाब की वर्तमान नदी है, जिनका उल्लेख आर्य ऋषियो द्वारा ऋग्वेद मे गगा, यमुना, सरस्वती के पश्चात् हुआ है, तो उससे यह भी प्रमाणित होता है कि आय लोग पूव से, गगा-यमुना के देश से, पश्चिम की ओर बसते गये है, न कि पश्चिम देशो से पूव की ओर आकर बसे है। आज नहीं इसा से तीन सौ वर्ष पूव सम्राट चन्द्रगुप्त के युग मे भी उनका वैदिक नाम प्रचलित नहीं था। यूनानियो ने रावी को "हाइड्राटीज" ओर व्यास को "हिफानिस" लिखा हे। लोकमान्य तिलक को पजाब के सप्तसिन्धु कहने मे सदेह हुआ था। इसीलिए उन्होने अपनी पुस्तक "आकटिक होम इन द वेदाज" के पृष्ठ 230 पर लिखा हे

"पजाब, पॉच नदियो का देश हे, सात का नहीं। इन सरिताओ मे कोई समान गुणो ओर नाम वाली दो सहायक नदियो को अपनी इच्छानुसार जोड लेने से हम इनकी सख्या यद्यपि सात सरिताओ तक बढाकर ले जा सकेगे।" ओर ऐसे बलपूवक नदियो की सख्या बढाने मे मेक्समूलर का नाम सवसे ऊपर है। उनका समर्थन पुसालकर महोदय ने भी किया ह। "दि वेदिक एज" पृष्ठ 248 पर पुसालकर ने पजाब की पॉच नदियो के साथ सिन्धु और सरस्वती नदिया को भी जोडकर सप्तसिन्धु क्षेत्र घोषित कर दिया। परन्तु आर्यो के आदि देश पजाब वाली स्थापना तर्कसगत नही हे क्योकि पजाब मे "सिन्धु नदी" के नाम से ही इतिहासकार ऋग्वेदिक आर्यो के मूलस्थान के सबध मे अनेक निराधार कल्पनाओ के चक्कर मे पड गये। तिलक सप्तसिन्धु की नदियो को देवनदियो की सज्ञा देते है। परन्तु न तो पजाब की ओर न उत्तरी ध्रुव की नदियॉ देवनदियो की भाति पूज्य एव प्रतिष्ठित रही है और न ही कभी भारतीय वाडमय मे पजाब या उत्तरी ध्रुव की नदियो को देवनदी कहा गया है। इसलिये यह तर्क भी गले से नहीं उतरता।

पजाब सप्तसिन्धु के समर्थक इतिहासकार स्वय पजाब मे, सप्त सरिताओ के अतिरिक्त, वहॉ 21, 90, तथा 99 अन्य नदियों के भौगोलिक अस्तित्त्व का स्पष्टीकरण देने मे असमर्थ रहे है। सिन्धु नदी के पजाब प्रात पर ही केद्रित रहने के कारण उन्होने ऋग्वेद मे वर्णित अन्य सब तथ्यो की खोज मे पजाब से बाहर अन्यत्र जाने का प्रयास नहीं किया। इससे यह भी स्पष्ट है कि उन्होने केवल अनुमानो के आधार पर कुछ मिलते-जुलते नामो को लेकर पजाब मे ही सप्तसिन्धु की कल्पना कर डाली है।

ऋग्वेद मे यह स्पष्ट है कि उक्त सब सरिताऍ हिमाच्छादित पर्वतीय प्रदेश मे बहती थीं और वे सब, विशेषत सप्तसरिताऍ, पर्वतीय अचल मे ही सिन्धु नदी मे सधि करती थीं अथात् इन सबके सधिस्थल पजाब की भॉति समभूमि मे ही नहीं, वरन् पर्वत प्रदेश मे थे, जिसका नाम सप्तसिन्धु था। गढवाल का यह हिमाच्छादित पर्वत प्रदेश नदियो का देश है। इतिहासकारो द्वारा जिन्हे आर्यावर्त्त मे 99 ऋग्वेदिक नदियॉ प्राप्त नहीं हुई, वे अलकनदा (सिन्धु) मे सधि करने वाली सप्तसिन्धु की उन सात देवनदियो के अतिरिक्त यत्र-तत्र प्रवाहित शेष 90 एव 99 ऋग्वैदिक नदियो का उत्तराखड के गढवाल अचल मे आकर प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते है। आर्यो की इन्हीं देवनदियो के पवित्र सगमस्थलो पर

प्राचीनकाल से अनेक वेदमत्र पॉच प्रयागा की स्थापना की पुष्टि करते है। पजाब की नदियो के सगमो पर, वेद-प्रतिपादित आय-जाति के ऐसे तीर्थस्थानो का सर्वथा अभाव है। इस बात से यह सिद्ध हो जाता है कि जब पजाब के किसी भी सगम मे कोइ तीर्थ नहीं हे तो वहॉ की ऐतिहासिक प्राचीनता को अप्रमाणित कर देते है।

किसी बात का बार-बार वर्णन उसकी लोकप्रियता का परिचायक है। ऋग्वेद मे सबसे अधिक बार जिस नदी का वर्णन आया है, वह नदी सरस्वती है। परन्तु पजाब मे उसका भी भोगोलिक अस्तित्व आज नहीं है। इतिहासकारो द्वारा उसकी प्राचीन भौगोलिक स्थिति की कल्पना, पजाब मे सप्तसिन्धु की स्थापना के समर्थन मे केवल अनुमान मात्र है। सरस्वती के पश्चात्, क्रमानुसार सिन्धु गगा (सायण की गणनानुसार), सरयू (कुमायॅू की नदी जो गढवाल के तटवर्ती क्षेत्र से निकलती है), परुष्णी, यमुना गोमती, अशुमती ओर विपाशा है। इन नौ नदियो मे सिन्धु, परुष्णी (रावी) ओर विपाशा (व्यास) पजाब मे बतलायी जाती है। यदि पजाब सप्त सिन्धु होता तो ऋग्वेद मे पजाब की, आर्जिकीया शुतुद्री (सतलत), असिक्नी, सरस्वती, गगा, सरयू, यमुना, गोमी और अशुमती आदि से प्रथम एव अधिक बार उल्लेख हुआ हाता। यदि केवल परुष्णी और विपाशा भी जिनका ऋग्वेद में (सरस्वती, गगा ओर सरयू से कम होते हुए भी) क्रमश चार और तीन बार उल्लेख हुआ हे, अपने वैदिक नाम से पजाब मे प्रसिद्ध होती तो वहॉ की सिन्धु नदी को भी, वैदिक सिन्धु घोषित करने मे कोई आपत्ति नहीं थी। शुतुद्री (सतलज) और असिक्नी (चिनाव) का दो बार और वितस्ता (झेलम) का तो केवल एक बार ही नाम आया है। आर्यो ने जिस देश की नदियो का इतना कम वर्णन किया हो, उसको आर्यो का आदि देश घोषित करना उचित नहीं है।

ऋग्वेद (5/53/9) मे मरुतों के देश मे रसा, अनितभा, कुभा, कसु, सिन्धु और जलमयी सरयू का उल्लेख हे। पजाब की सिन्धु के साथ इन नदियो का ऐतिहासिक अस्तित्व नहीं हे। जो सरयू नदी जलमयी विशेषण से प्रतिष्ठित की गयी है, वह साधारण नदी नहीं है। उसका पजाब प्रात मे भौगोलिक अस्तित्व ही नहीं है। फारसी धर्मग्रथों में भी सिन्धु के साथ सरस्वती (हरह्वती) और सरयू (हरैयू) का उल्लेख हे, परन्तु शुतुद्री, असिक्नी और वितस्ता का नहीं। ऋग्वेद (10/44/7) मे भी सिन्धु से पूर्व सरस्वती के साथ घृत और वृहद् सहित त्वरापूर्वक बहती हुइ, देवी और मातृरूपिणी बडी नदियो के साथ जिस सरयू का उल्लेख हुआ हे उस महत्त्वपूर्ण नदी सरयू का भी पजाब मे सर्वथा अभाव है बल्कि सरयू वहॉ की नदी है ही नहीं।

ऋग्वेद (3/33/1, 2/3/5) से प्रमाणित होता है कि विश्वामित्र सरस्वती नदी से आगे सिन्धु के देश को गये थे। वे विपाशा और शुतुद्री (ऋ 3/33/1) के सगम पर पहुॅचे और उनको पार कर उन्होने सिन्धु को पार करने का प्रयत्न किया। यदि शुतुद्री पजाब की सतलज और विपाशा व्यास है तो सिन्धु तक पहुॅचने से पूर्व, उसमे रावी, चिनाव और झेलम आदि नदियो को पार करने का वर्णन अवश्य हुआ होता। इसीलिए सायण ने यहॉ पर सिन्धु का अर्थ पजाब की सिन्धु नदी नहीं किया है। सप्तसिन्धु मे सिन्धु, सरस्वती और रसा के साथ सरयू का भी नाम है। इस नाम की नदियॉं इतिहासकारो को पजाब-प्रात मे नहीं मिलतीं।

डॉ मूर के मतानुसार अनितभा, रसा और श्वेता सिन्धु की नदियॉ है। इस प्रकार पजाब मे सिन्धु के अतिरिक्त सरस्वती, सरयू और गोमती का अस्तित्व भी अप्रामाणिक है। इसीलिए तिलक पॉच नदियो के देश पजाब को सप्तसिन्धु देश बनाने के लिए, इसमे दो और नदियो का नाम जोडने की युक्ति को कृत्रिम युक्ति कहते है। इतना ही नहीं, तिलक सप्त-सिन्धु की सरिताआ को स्वर्ग-नदियॉ मानते है, जिसका साराश यह है कि सप्तसिन्धु की सप्त सरिताओ के प्रति आर्यो का महत् भक्तिभाव था। परन्तु इस प्रकार की भक्तिभाव वाली नदियो का पजाब की पॉच नदियो मे भी कोई स्थान नहीं हे जबकि उत्तराखड की सभी नदियो को देवनदी कहा गया हे। भाष्यकार महीधर ने भी (ऋ 8/6/28) गगा के सगमस्थलो पर मेधावी आयविप्रो की उत्पत्ति बतलायी हे।

ऋग्वेद मे जिन बारह स्थानो पर सप्त सरिताओ का वर्णन आता है उन सब मे सायण ने केवल "गगा आदि सात नदियॉ" लिखकर गगा के अतिरिक्त किसी अन्य नदी का नाम नहीं दिया है। ऋग्वेद (6/61/12) मे सरस्वती को गगा आदि सप्त सरिताओ से सयुक्त नदी कहा गया है। सरस्वती नदी के साथ केवल गगा आदि सात नदियां का उल्लेख है (ऋ 5/42/12), गगा के अतिरिक्त अन्य नदियो का उल्लेख नहीं है। सायण ने मातृरूप गगा आदि सात नदियो का नाम लिखकर गगा को अन्य नदियो से अधिक आदर प्रदान किया हे (ऋ)8/85/1) बालखिल्य सूक्त(6/4) मे स्रस्वती ओर गगा आदि सात नदियो का ही उल्लेख है। अन्य किसी नदी का सिन्धु तक का भी, उल्लेख नहीं किया है। ऋग्वेद (10/43/3) मे गगा आदि सात नदियो को कृषि की वृद्धि करने वाली कहा गया है। वहॉ (ऋ 10/104/8) स्पष्ट किया हे कि "हे इद्र। रमणीय और अमित गति वाली गगा आदि सात नदियो के द्वारा तुमने शत्रुपुरियो को नष्ट करके सिन्धु को (सिन्धु से तात्पर्य पहले सरस्वती फिर गगा) बढाया। तुमन मनुष्यो के उपकार के लिए 99 नदियो का भी मार्ग प्रशस्त किया।" इस सूक्त मे भी गगा के अतिरिक्त सायण ने अन्य नदियो का उल्लेख न करके गगा को ही प्रमुखता दी है। यही नही, इस मत्र मे गगा आदि सात नदियो के द्वारा, सिन्धु के बढाये जाने के उल्लेख से यह भी प्रमाणित होता है कि गगा आदि सात सरिताएँ सिन्धु मे ही सधि करती थीं। इस दृष्टि से भी वह सिन्धु पजाब की सिन्धु नदी नहीं वरन् मध्य हिमालय क्षेत्र की अलकनदा है। जो कालातर मे गगा नाम से विख्यात हुई है। इसी क्षेत्र मे जो अन्य 99 नदियो का वणन है, उससे भी स्पष्ट है कि आर्यो का आदि देश नदियो का देश था। इसमे गगा आदि सात प्रमुख नदियो के साथ 99 नदियॉ भी बहती थीं और यह भौगोलिक तथ्य पजाब पर नहीं वरन् पूर्णत उत्तराखड के सपूर्ण० अचल और अधिकाश रूप मे वर्तमान गढवाल पर घटित होता है।

ऋग्वेद के "नदी सूक्त" (10/75) मे सिन्धु के स्तवन के तुरत बाद (सरस्वती, शुतुद्री, परूष्णी, असिक्नी, मरूद्वृधा, वितस्ता, सुषोमा और आर्जिकीया से पूर्व) गगा और यमुना का नाम आता है और यह कदापि अकारण नहीं है। यदि शुतुद्र, परूष्णी, असिक्नी, वितस्ता आर आर्जिकीया पजाब की रावी, चिनाव, व्यास आदि वर्तमान नदियॉ है तो गगा, जमुना और सरस्वती के मत्र 5 मे उनका उल्लेख, न होकर मत्र 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8 और

9 मे सिन्धु के साथ कहीं भी उनका उल्लेख किया जाता, क्योकि वे वर्तमान पजाब और उसकी सिन्धु की एकमात्र सहायक नदियॉ है। गगा, यमुना के साथ जिन उक्त नदियो का "नदीसूक्त" मे वर्णन है, उनका आज किसी प्रकार भी पजाब की सिन्धु नदी से भौगोलिक सबध नही है। क्योकि "नदी सूक्त" मे शुतुद्री, परूष्णी, असिक्नी, मरुदृवृधा, वितस्ता, सुषोमा ओर आर्जिकीया का सिन्धु के साथ नहीं वरन् गगा और यमुना के साथ उल्लेख किया गया है। अत उनका भोगोलिक अस्तित्त्व भी सिन्धु नदी के साथ नहीं वरन् गगा-यमुना के क्षेत्र मे ही खाजना युक्तियुक्त है।

पजाब ही सिन्धुनदी के तट पर आर्य सस्कृति के प्राचीन स्मारको का सवथा अभाव ही ह, परन्तु अलकनदा का यह क्षेत्र आय-तीर्थो से परिपूण हे। "महाभारत"(वनपूर्व) मे धोम्य और लोमश ऋषि द्वारा बदरी विशाल की तीर्थयात्रा मे यमुनोत्री-गगोत्री का कोई उल्लेख नहीं हे। आय जाति के समक्ष सदियो से भागीरथी से अधिक अलकनदा का सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एव आध्यात्मिक महत्त्व सर्वविदित है आर इसका कारण केवल यही हे कि अलकनदा ही ऋग्वेदिक आर्यो के आदि देश सप्तसिन्धु एव आर्यावत्त को श्री-सपन्न करने वाली सिन्धु हे।

"दवी भागवत" (सप्तमस्कन्ध, अ० 6) के अनुसार गगा ओर सरस्वती दोनो सौत हे। केशवप्रयाग मे प्रखर प्रवाहिनी सरस्वती ओर गगा का यह गर्जन तर्जन स्वत प्रमाणित हे। "देवी भागवत' (9/12) मे अलकनदा नदी को ही स्पष्टत गगा कहा गया है।

"वेद धरातल" मे श्री गिरीशचन्द्र अवस्थी भी पजाब को सप्तसिन्धु नहीं मानते और न वहॉ की पॉच नदियो मे सरस्वती और सिन्धु को सम्मिलित करते है। उनके कथनानुसार, "सिन्धु एक सामान्य नदी का नाम है, इसके लिए सुषोमा शब्द भी प्रयुक्त किया गया है। श्वेता (श्वेतग्रावरी) का जल श्वेत होने से उसको श्वेता कहते है (इसका वर्तमान नाम धौली है)। यह सिन्धु (अलकनदा) की सहायक नदी हैं। पजाब की सिन्धु उत्तराभिमुखी कहीं नहीं हे। सिन्धु और गगा दोनो को तीन स्थानो पर क्रमश पृथ्वी, अतरिक्ष और द्युलोक तथा स्वर्ग, पाताल और पृथ्वी पर साथ-साथ होकर बहने वाली कहा गया है। पृथ्वी पर गगा की ही भॉति सिन्धु की सात (नदियों) धाराओ का उल्लेख हे।

सरस्वती और अलकनदा (गगा) के साथ-साथ बहने का विवरण तो हिमालय के सतोपथ और मेरु क्षेत्र मे स्पष्ट दिखाई देता है परन्तु पजाब वाली सिन्धु का इस प्रदेश मे कोई नाम निशान भी नही है। इस तथ्य से भी यही प्रमाणित होता है कि सरस्वती ही मूलरूप से सिन्धु बनी जो बाद मे अलकनदा और अत मे गगा बनकर सबका उद्धार करने वाली देवनदी बन गई।

ऋग्वैदिक सरयू और गोमती

ऋग्वेद (10/64/9) मे भी 21 महती और तरगशालिनी नदियो मे केवल सरस्वती, सरयू और सिन्धु का ही साथ-साथ नाम आया है और उन्हे ही यज्ञ मे रक्षार्थ आमंत्रित किया गया है। प्रथम दोनो नदियॉ पजाब मे नहीं है, वरन् वे मध्य हिमालय मे है। तृतीय

सिन्धु को अलकनदा न मानकर इतनी नदियो को लाघकर, पजाब मे उसकी खोज करने जाना युक्तियुक्त नहीं है। ऋग्वेद मे वर्णित सरस्वती नदी अत्यत प्रखर प्रवाहिनी असामान्य नदी हे। पर्वतों को खड-खड करने वाली, आर्य जाति की परमपूज्या इस असाधारण नदी का पजाब प्रात मे, जैसा कि इतिहासकार कहते है—नाम और अस्तित्त्व, आर्यजाति के जीवित रहते पूर्णत लोप हो जाना आश्चर्यजनक है। पारसी धर्मग्रथो मे भी सरस्वती और सरयू (हरह्वती) और (हरैयू) का उल्लेख है। उक्त दोनो सरिताएँ आज भी उत्तराखड के कुमायूँ अचल मे रिक्त है।

गोमती को कुछ इतिहासकार सिन्धु की पश्चिमी सहायक गोमल कहते है, जो नितान्त भ्रम फैलाने वाला तथ्य है। ऋग्वेद मे तीन बार गोमती नदी का स्पष्टत उल्लेख है। गोमती हिमवान् पर्वत से बहती थी। स्पष्ट है कि रथवीति हिमवान् पर्वत मे गोमती के तीर निवास करता है (ऋ 5/61/1, 9)। पुन अनुशासन 30/18 मे लिखा है कि आर्यनरेश दिवोदास की नगरी का एक छोर गगा के उत्तर तट पर था और दूसरा गोमती के दक्षिण तट तक फैला हुआ था अर्थात् गढवाल और कुमायूँ दोनो प्रदेश आर्य नरेश दिवोरस के राज्यान्तर्गत थे। वस्तुत गोमती और सरयू दोनो का उद्गमस्थल गढवाल की पूर्वोत्तर हिम श्रेणियॉ ही है। वे आज भी "कुमायूँ" से बहती है। गोमती बागेश्वर (अल्मोडा) मे सरयू नदी मे मिल जाती है। उसके तट पर बैजनाथ आदि पुरातात्त्विक महत्त्व के अनेक मदिर स्थित है। आज भी सर्वसाधारण मे उसका ऋग्वैदिक नाम (गोमती) प्रचलित है।

सिन्धु पहले सरस्वती फिर अलकनदा और अत मे गगा के रूप मे

ऐसे तथ्य पूर्णत सिद्ध करते है कि ऋग्वेद मे वर्णित "सिन्धु" और कोई नदी न होकर अलकनदा ही है जो पुराणकाल मे गगा बनकर आर्य जाति की पुण्यतम् नदी बन गई थी। वास्तव मे, वही "सिन्धु" भी है। एक तथ्य इस सबध मे और भी है। ऋग्वेद के "नदी सूक्त" म प्रारम्भिक मत्रों मे "सिन्धु" का प्रमुखता से उल्लेख किया हुआ मिलता है। परन्तु मत्र—5 मे "गगा" का उल्लेख हो जाने के बाद के मत्रो मे "सिन्धु" का अलग से कोई उल्लेख नहीं हुआ है। इस तथ्य का स्पष्ट यह अर्थ हुआ कि गगा मे ही सभी नदियो का सगम हो जाता है तो वह नदी स्वय ही "सिन्धु" नाम सार्थक कर देती है। ऋग्वेद मे स्पष्ट हैं कि ' सिन्धु" मे प्राय सभी नदियॉ सगम करती हुइ सागर से जा मिलती है और यह तथ्य "गगा" के माध्यम से पूर्णत सिद्ध और प्रमाणित हो जाता है कि सभी महत्त्वपूर्ण नदियॉ गगा से सगम करती हुई—अपार जल राशि को लेकर अत मे "सागर" मे समा जाती है। इसलिये सिन्धु का प्रथम रूप बदरिकाश्रम के समीप वाली और केशवप्रयाग मे अलकनदा से सगम करने वाली सरस्वती हे। दूसरे चरण मे वही सिन्धु अलकनदा के रूप "सिन्धु" नाम से प्रसिद्ध हो जाती है ओर अत मे "गगा" के पवित्र स्वरूप के कारण ऋग्वेद की "सिन्धु" नदी गगा बनकर विश्व मे विख्यात हो जाती है।

उत्तराखड के वर्तमान गढवाल में ही "सरस्वती" का मूल स्रोत है। "गगा" गढवाल मे ही अपना नाम पा लेती है। देवप्रयाग से "गगा" का अस्तित्त्व पूर्णत स्थापित हो जाता

है। "सिन्धु" अर्थात् प्रथम चरण की सिन्धु सरस्वती मे पहले-पहल (1) अलकनदा का सगम केशवप्रयाग मे, (2) विष्णु प्रयाग मे धोली (श्वेता) से (3) नद प्रयाग मे नदाकिनी से (4) कर्णप्रयाग मे पिडर से, (5) रुद्रप्रयाग मे मदाकिनी से (6) देवप्रयाग में भागीरथी से और व्यासघाट मे नाबालिका (नयार) से सगम हो जाता है। इन सात नदियो के अलावा ऋषिगगा, गणेशगगा, विष्णुगगा, रुद्रगगा, लक्ष्मणगगा, पातालगगा, गरुडगगा, कचनगगा क्षीरगगा ओर जाडगगा आदि सैकडो गगाओ (नदियों) का जल और पर्याप्त अतराल के बाद सरयू ओर गोमती का जल भी सरस्वती में समाकर सिन्धु का नाम सार्थक करती है। यह सिन्धु रूप पहले अलकनदा और अत मे "गगा" नाम सार्थक कर—ऋग्वेद के "सिन्धु" का पयाय बन जाती हे। इस तथ्य को अब विश्व के अधिकाश विद्वान समझने लगे है ओर ऋग्वेद की सिन्धु नदी को गगा मानने लगे है।

ऋग्वेद मे भी सिन्धु, पजाब की नदी नहीं

ऋग्वेद के उद्धरणो से भी स्पष्ट है कि सात नदियो मे जिस नदी का नाम सिन्धु है, वह पजाब की वतमान सिन्धु कदापि नहीं। लोकमान्य तिलक भी पजाब की पॉच नदियो को देवनदी तथा सप्तसिन्धु देशातर्गत नहीं मानते। क्योकि ऋग्वेद (1/32/12, 1/102/2,1/191/14, 2/12/12, 6/7/6) मे जहॉ-जहॉ सप्त सरिताओ का वर्णन आया है, वहॉ कहीं भी सिन्धु नदी का नाम नहीं आया है। केवल सात नदियो का ही उल्लेख है। ऋग्वेद (1/32/12) मे सिन्धु शब्द अवश्य है परन्तु वह भी स्पष्टत नदी के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। इन मत्रो के अतिरिक्त ऋ० 6/61/12, 8/85/1, 9/6/4, 10/43/3, 10/194/8 मे जिन सातो सरिताओ का उल्लेख है, उन सब मे भी कहीं सिन्धु का नामोल्लेख नही है वहॉ पर आचाय सायण ने "सिन्धु" शब्द की सर्वथा उपेक्षा कर, केवल गगा का ही प्राचीन परपरा प्राप्त अर्थ सिन्धु नाम से किया है। इससे यह स्पष्ट है कि आचार्य सायण के समय (1400 ई तक) पजाब की सिन्धु, सप्तसिन्धु की सप्तसिन्धुओ मे सम्मिलित नहीं थी वग्न् सायण और उसके पूर्वकालीन वेदभाष्यकारो के मतानुसार आर्यो का वह सप्तसिन्धु देश गगा का वह क्षेत्र था जहॉ अलकनदा (गगा) तथा उसकी ऊपरी धारा सरस्वती नदी के साथ, उसकी सात, इक्कीस, नब्बे तथा निन्यानवे सहायक नदियॉ अलग-अलग स्थानो पर हिमालय के क्षेत्रो मे ही सगम करती है और यह निर्विवाद तथ्य है कि आचार्य सायण के पूव समस्त वेद-भाष्यकारो ने सिन्धु शब्द का अर्थ "गगा" ही किया है और सप्तसिन्धु की सात सरिताओ मे देवनदी गगा को प्रमुखता दी है, क्योकि आचार्य सायण ने स्पष्ट कहा है कि उन्होने प्राचीन भाष्यकारो के अनुकूल परम्परा-प्राप्त ऋग्वेद के मत्रो का अर्थ किया हे। सायण के इस अर्थ से यह स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है की आर्यो का "सप्तसेधव" प्रदेश उत्तराखड का वर्तमान गढवाल अचल ही है।

यह भी उल्लेखनीय तथ्य है कि ऋग्वेद के "सरस्वती स्तवन" (6/61/12) मे भी, जहॉ सरस्वती को गगा आदि सप्त सरिताओ से युक्त कहा गया है उसमे सिन्धु का नाम कहीं नही आया है। ऋ 9/6/4 मे भी सरस्वती के पश्चात् गगा आदि सात नदियो का

ही उल्लेख हे, सिन्धुनदी का नाम-निर्देश तक नहीं है। गगा और सरस्वती देवनदी कहलाती है परन्तु पजाब की सिन्धु को कोई भी और कभी भी देवनदी नही कहता। वस्तुत पुराणो में अलकनदा (गगा) को स्वग से गिरनेवाली सप्तधाराओ से युक्त कहा गया है। अत उसका नाम सप्त सिन्धु उचित ही है।

ऋग्वद के प्रसिद्ध "नदी सूक्त" के मत्र 1 के अनुसार सिन्धु त्रिपथगगा है, परन्तु पजाब की सिन्धु को कोई भी "त्रिपथगा" नहीं कहता वरन् त्रिपथगा गगा का नाम है। "नदी सूक्त" के मत्र 2 के अनुसार अलकनदा (गगा) की ऊपरी एव मुख्य धारा सरस्वती भारत की सबसे बडी, सर्वाधिक पूज्य और सब सरिताओ के ऊपर विराजमान है। मत्र 3 के अनुसार उसके घोर गजन-तजन से ऐसा विदित होता हे कि आकाश से घोर वृष्टि हो रही है, क्योकि "सप्तसिन्धु" पर्वत प्रदेश मे था जिससे सरस्वती और अलकनदा के समान बडी नदी के गजन-तजन की प्रचडता सत्य हे। मत्र 4, 5, 6 के अनुसार वह सप्त त्रिसप्त, 90 और 99 नदी-धाराओ से सधि करती हुइ आगे बढती है। मत्र 7 के अनुसार वह नदियो मे सबसे अधिक वेगवती है। मत्र 8 के अनुसार वह हिरण्यगर्भा (हिरण्ययी), नित्य तरुणी, मधुवद्धक पुष्पो से आच्छादित रहती हे। इसी के तट पर अलकापुरी का प्रसिद्ध नदन कानन प्राकृतिक पुष्पोद्यान है। महाभारत वनपर्व (82/87) के अनुसार पसुधारा के निकट "सिन्धु-प्रभव" और "सिन्धुतम" तीर्थ है और वही स्थान सिन्धु का उद्गमस्थान है, जहॉ पर स्नान करने से प्रचुर स्वर्ण राशि प्राप्त होती है। इससे प्रमाणित होता है कि वेद व्यास भी सरस्वती और अलकनदा को ही सिन्धु मानते थे। इसीलिये उन्होने सरस्वती और अलकनदा के किनारे दोनो के सगम स्थान केशवप्रयाग मे व्यासगुफा मे बैठकर वेदो का सम्पादन और महाभारत की रचना की थी।

कश्मीर का जो विशिष्ट "नीलमत पुराण" है उसके पृष्ठ 394 मे स्पष्ट किया गया है कि सिन्धु नामक नदी "गगा" ही है। जो हिमालय के उत्तरी क्षेत्र से निकलती है।

एक उदाहरण यह भी है कि ऋग्वेद के "नदी सूक्त" (6, 61, 17) मे "सिन्धु को "त्रिपथगा" कहा गया है। परन्तु सायण ने पजाब की सिन्धु का कहीं भी उल्लेख नहीं किया, बल्कि सरस्वती नदी को ही त्रिलोकव्यापिनी "गगा" माना है। त्रिलोक व्यापिनी शब्द का अर्थ भी "त्रिपथगा" ही है। हिमालय की पवित्र-पावनी गगा को, सायण ने मातृरूप मे स्थापित कर—सात प्रमुख नदियो की सगम-स्थली बताकर उसका गौरव बढाया है अर्थात् हिमालय की प्रमुख सात नदियॉ "गगा" मे ही सधि कर विपुलजी राशि वाली "गगा" की सहायक बनकर गौरव पाती है। उन्हे व्यापक रूप मे सर्वत्र सम्मान दिलाने का कार्य ऋग्वेद से ही शुरू हो गया था। ऋग्वेद (8, 85, 1) मे व्यापक शब्द मे वही "त्रिपथगा" वाला अर्थ गाभीर्य समाया हुआ है।

आर्यों के सप्तसिन्धु की जलवायु

आर्यो के आदि स्थान के सबध मे भी ऋग्वेद आदि ग्रथो मे पयाप्त सूचनाये प्राप्त होती है। जलवायु के सबध मे विस्तार से जानकारी प्राप्त होती है। ऐसी सूचनाओ के कारण

आर्यो के आदि देश की भौगोलिक स्थिति का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है कि आर्यो का आदि देश किस क्षेत्र मे रहा होगा। इस सबध मे ऋग्वेद का ही पहला उदाहरण लेना उचित होगा।

आर्यो का आदि देश शीतप्रधान प्रदेश था (ऋ 3/7/1) इस तथ्य से प्राय सभी विश्व के इतिहासकार एकमत है। वहाँ दस मास की कडी शीत और केवल दो मास साधारण गर्मी रहती थी (ऋ 5/32/1)। यम वेवस्वत मनु उस शीतप्रधान प्रदेश के प्रथम नरेश थे। वर्ष की गणना पहले हिम शीतकाल (ऋ 5/54 15) से होती थी। कालातर मे पुन दक्षिण के कुछ समतल भू-भागो की ओर बढने के पश्चात् शरदऋतु से भी वर्षा की गणना होनी लगी। शरद ऋतु के प्रति आर्य-जाति की विशेष निष्ठा था। "जीवेम शरद शतम्" के आशीर्वाद द्वारा वे अपने स्नेही सुहृदो को शत शरद या "शत हिमा" तक जीने की कामना करते थे। ऋग्वेद मे वष अर्थ मे "शरद" शब्द का बीस से अधिक और "हिम" शब्द का दस से अधिक बार उल्लेख हुआ है। उसके पश्चात् गर्मियो के दो-तीन महीनो मे वसत ऋतु रहती थी जो सबसे छोटी ऋतु थी। इस प्रकार, सप्तसिन्धु मे शरद, हिमत और वसत तीन ऋतुओ का विशेष उल्लेख मिलता है। वहाँ वर्षा का भी आधिक्य था इसलिये वर्षा ऋतु का भी वणन मिलता है। आर्य ऋषियो को हिमालय अत्यत प्रिय था। वेदिक ऋचाओ मे सृष्टिकर्ता की महत्ता, हिमाच्छादित पर्वत बतलाते हैं (ऋ 10/121/4)। "हिमेनाग्नि, हिमेववासयो, हिम्वानान् हविष्मान्" कहकर उन्होने हिमालय के प्रति असीम श्रद्धा व्यक्त की है। अर्थववेद (12/1/11) मे भी "गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोअरण्य ते पृथिवि स्योनमस्तु" कहकर हिमालय की वदना की गई है।

हिमालय के शीत प्रधान अचल मे ही आर्यो का "सप्त सैधव" रहा होगा तभी आर्यो ने हिमालय की वदना पग-पग पर की है। "सप्त सिन्धु" अत्यधिक शीत प्रदेश था। इसीलिये आर्यो को "बारहो मास" अग्नि प्रज्ज्वलित कर रखनी पडती थी यह भी स्पष्ट है कि आर्य सविता, उषा आदि अग्नि के प्रतीको के विशेष पुजारी थे। अग्निदेव, देवताओ मे भी श्रेष्ठ देवता (ऋ 1,31, 1) समझे जाते थे। ऋग्वेद मे अग्नि के सबध मे सबसे अधिक मत्र लिखे गये है। ऋग्वेद के प्रथम मडल के सपूर्ण सूक्त मे अग्निदेव का आह्वान किया गया है।

गढवाल मे आज भी किसी भी शुभ कार्य को सपन्न करने से पहले "अग्नि देव' का आह्वान करने की सुदृढ परपरा है।

मौसम के अनुसार कई दिनो तक ऋग्वेद मे सरस्वती नदी के तट पर अनिवार्य यज्ञ-यागो द्वारा अग्नि प्रज्ज्वलित रखने की जो व्यवस्था थी, वह भी आर्यो के शीत-प्रधान प्रदेश मे रहने का सूचक है। ऋ 1/31/1 और 2/23/4 के अनुसार ऋषि अंगिरा द्वारा (त्वमग्ने प्रथमो अगिरा ऋषि) प्राचीनकाल मे सरस्वती नदी के क्षेत्र मे अग्नि, सघर्ष से उत्पन्न की गयी थी। इस स्थिति मे आर्यो का गर्म क्षेत्रो मे रहने का कोई प्रमाण मिलता ही नहीं फिर कुरुक्षेत्र और प्रयाग की सरस्वती के उष्ण तट-प्रदेश में वैदिक-आर्यो द्वारा परम पूज्य (देवो देवाना) अग्नि को प्रमुखता प्रदान करना सभव नहीं है अर्थात् सरस्वती का इन प्रदेशो मे होना कल्पना मात्र ही होगा।

पजाब मे हिमालय नहीं है। वहाँ वर्षा का भी अभाव रहता है। वह गर्म देश है। वहाँ

इस प्रकार की कठिन शीत की कल्पना भी नहीं हो सकती। आर्यो की प्राचीन पुस्तक "ऋग्वेद" में वर्णित सप्तसिन्धु की जलवायु और भौगोलिक स्थिति मे और वर्तमान पजाब मे आकाश-पाताल का अतर है। ऐसे विशिष्ट कारणो को देखते हुये श्री पावगी और श्री लोकमान्य को वेदो मे वर्णित जलवायु की खोज मे शीतप्रधान उत्तरी ध्रुव की कल्पना करनी पडी है। श्री अविनाशचन्द्र दास और डॉ सपूर्णानद ने जहॉ उत्तरी ध्रुव और मध्य ऐशियावाद का युक्तियुक्त खडन किया है, वहॉ उन्होने वैदिक परिस्थितियो के सर्वथा प्रतिकूल, पजाब की सिन्धु नदी पर केन्द्रित होने के कारण, पजाब को ही आर्य-जाति का मूल निवास "सप्तसिन्धु" बताकर, उक्त समस्या को विवादास्पद ही रहने दिया है। वे वर्तमान पजाब और प्राचीन पजाब (सप्तसिन्धु) की जलवायु आदि मे हजारो बरसो के भौतिक परिवर्तनो के कारण अतर होना बतलाकर, सतुष्ट हा जाते है। सिन्धु नदी के कारण वे सप्त-सिन्धु की खोज मे पजाब को छोडकर तनिक भी आगे-पीछे जाने का प्रयत्न नहीं करते। यद्यपि वे इस तथ्य को स्पष्टत स्वीकार करते है कि "वह स्थान वेदिक यम-सदन से मिलता-जुलता कोई स्थान था। पुराणो मे उत्तर-कुरु (गढवाल का उत्तरी क्षेत्र) जैसे प्रदेशो का जो वणन है वह भी इस प्रकार का हे"।

राधाकुमुद मुखर्जी हिदू सभ्यता (हिदी अनुवाद पृष्ठ 72) मे यह भी स्वीकार करते हे कि "ऋग्वेद के एक भाग मे जहॉ उषा क सूक्त है उनमे पजाब के अद्भुत सौदर्यशाली प्रात काल की झॉकी मिलती हे। लेकिन उसके अधिकाश भागो मे बादल और बिजली मेघो ओर पवर्तो से घनघोर वर्षा के रूप मे रुद्र प्रकृति का जो वर्णन हैं, वह वर्णन पजाब मे नहीं हे। वह वणन तो ब्रह्मावत के उस प्रदेश मे पाया जाता है जहॉ सरस्वती और वृषद्वती नदियॉ बहती हे। यहीं ऋग्वेद का अधिकाश भाग रचा होना चाहिए।" गढवाल की सरस्वती नदी के तट पर जहॉ वेदो की रचना हुइ हे—वहीं गढवाल मे एक ऐसा क्षेत्र है—जिसे "वेदनी बुयाल" के नाम से जाना जाता है। ऐसा कहा जाता है कि इस क्षेत्र मे वेदो की रचना करने वाले ऋषि निवास करते थे।

पजाब मे वेदो की रचना करने वाला न कोई क्षेत्र हे और न ही कोई ऐसी सरस्वती नदी है जहॉ अग्नि प्रज्ज्वलित कर आर्यो ने अनेक यज्ञ सपन्न किए हो।

ऋग्वेद आर्यो के अनेक प्राचीन आध्यात्मिक स्मारको से सपन्न हिमवत के बद्री-केदार क्षेत्र मे देवनदी सरस्वती, मदाकिनी और गगा के विस्तृत पार्श्ववर्ती भागो मे ऋग्वेद मे वर्णित भौगोलिक तथ्य एव जलवायु आज भी पूर्णत विद्यमान है। महापडित राहुल साकृत्यायन का यह कथन सत्य है "हिमालय श्रेणी की हिमानियों तथा हिमशिखरो के इस और साइबेरिया की तुद्रा की भॉति आठ मास धरती बर्फ से ढकी रहती है। 13,000 फुट से ऊपर ध्रुवकक्षीय जलवायु आ जाता है। यहॉ जाडा लम्बा और गर्मी का मौसम छोटा होता है, जिसके कारण अभी बफ अच्छी तरह पिघलने भी नहीं पाती कि नयी बर्फ पड जाती है। माणा और नीति गॉव यहॉ की उच्चतम उन्नताश की मानव बस्तियॉ है। वहॉ बसत बहुत छोटा होता है, जबकि उस समय थोडी गरमाहट मालूम पडती है। दिसम्बर से अप्रैल तक माणा और नीति के गॉव सफेद हिम की चादर के नीचे ढके मानव-शून्य हो जाते है।"

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि हिमाच्छादित बद्रीनाथ और केदारनाथ मदिर के कपाट जाडो मे छ मास बद रहते है। छ मास देवताओ द्वारा और छ मास मानवों द्वारा यहॉ जो पूजा करने का वर्णन है, उसमे यही भाव है। सर्वोच्च हिम-शिखरो से आच्छादित इसी क्षेत्र का नाम गधमादन, कैलाश और सुमेरु है। सुमेरु-पर्वत पर वेद और पुराणों मे वर्णित छ मास दिन और छ मास रात रहने की जो उपमा दी गयी है, जिसको लोकमान्य तिलक ने भी ध्रुव प्रदेश की पुष्टि मे उद्धृत किया है, इसमे यही भाव निहित है। दिन रात घने मेघो से आच्छादित रहने के कारण, वहॉ दिन मे भी रात्रि की तरह गहन अधकार छाया रहता है। इस प्रकार का वातावरण आज भी बद्री-केदार की भूमि मे स्पष्ट दृष्टिगोचर है।

उत्तराखड के गढवाल क्षेत्र के ऊपरी भाग मे जो हिम प्रधान भाग हिमालय के निकट है, उसमे नवम्बर से मई-जून तक आठ मास हेमत ऋतु का प्राधान्य बना रहता है। जून से अक्टूबर के अत तक वहॉ बसत रहता है। उस समय वहॉ सारी भूमि पुष्पमय दिखायी देती हे। 8,000 फुट से ऊपर वाले पर्वतो पर वर्षा ऋतु और बसत ऋतु मिश्रित रूप मे दिखायी देती हे। वाल्टन भी गजेटियर आफ ब्रिटिश गढवाल के पृष्ठ 28 पर लिखता है—"गढवाल के दक्षिण मे 7,000 फुट से ऊपर और उत्तर से 6,000 फुट से ऊपर, सारे वर्ष जलवायु शीत रहती है। वर्ष मे यहॉ तीन ऋतुऍ होती है। इन्हीं ऋतुओं शरद, हेमत ओर वसत का ऋग्वेद मे उल्लेख है। "जीवेम शरद शतम्" के अनुसार, शरद ऋतु के प्रति आज तक गढवाल मे वही श्रद्धा भाव पूर्ववत् सुरक्षित है जो ऋग्वेद के समय था।

पारसियो के धर्मग्रथ अवेस्ता के अनुसार तिलक आदि कई विद्वानो का मत है कि आर्य पहले ऐसे प्रदेश मे रहते थे, जहॉ सात मास गर्मी और पॉच मास सर्दी पडती थी, छ ऋतुऍ होती थीं, जलवायु अच्छा था और जनता सुखी थी। परन्तु जलप्लावन एव आकस्मिक हिमाच्छादन के कारण आर्य इस प्रदेश से भागकर ऐसे प्रदेश मे चले गये, जहॉ दस-दस मास का जाडा और दो मास की अल्प गर्मी पडती थी। वैवस्तव मनु सप्त-सिन्धु (गढवाल) के दक्षिण क्षेत्र मे बसे थे। उस युग मे इसका नाम दक्षिणगिरि था। दक्षिण गढवाल की जलवायु सात मास गर्म और पॉच मास ठडी रहती है। जलप्लावन के समय वैवस्वत मनु अपने विशिष्ट प्रयोजनो सहित उत्तर गढवाल मे पाच-छह हजार फुट से ऊपर उत्तरगिरि (शतपथ, ब्राह्मण, 1/8/6) प्रदेश की ओ भाग निकले थे जहॉ आज भी दस मास का कठिन शीत और दो मास की साधारण गर्मी पडती है। हेमत और शिशिर एक ही ऋतु समझी जाती है।

पारसियो के ही दूसरे धर्मग्रथ "हेन्दावस्ता" मे लिखा है कि आदि सृष्टि जिस भू-भाग मे हुई वहॉ दस मास शीत और दो मास गर्मी रहती थी। "जेन्दावस्ता" की आदि सृष्टि सप्तम वेवस्वत मनु के जल प्लावन मे उत्तरगिरि को जाने के पश्चात् प्रारभ होती है। सृष्टि का पुनर्निर्माण सप्तम मनु से भले ही आरभ हुआ हो, परन्तु सप्तसिन्धु मे, वह कई हजार वर्ष पूर्व स्वायम्भुव से प्रारभ हो चुका था। जेन्दावस्ता मे जहॉ एक वर्ष का दिन हो, वहॉ उसमे वर्णित, दस मास का शीत और दो मास की गर्मी का अर्थ कल्पनातीत है।

सप्तसिन्धु उत्तराखड और कैलास-मानसरोवर का क्षेत्र

ऊपर लिखे मभी तथ्य यह प्रमाणित करते है कि आर्यो का मूल निवास पजाब का क्षेत्र कदापि नहीं हो सकता। प्राचीन भारतीय वाडमय मे पजाब क्षेत्र को कोई महत्त्व नहीं दिया गया है। ऋग्वेद मे भी कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिलता कि वहॉ हमे आर्यो के मूल निवासी होने का कोइ आधार मिल सके।

भारत के प्राचीन साहित्य मे जो प्रमाण दिये गये है उनसे यह निष्कर्ष निकलता हे कि आर्यो का आदि निवास आज के उत्तराखड से लेकर वर्तमान तिब्बत के कैलाश-मानसरोवर वाले क्षेत्र मे था। इस भू-भाग के प्रति आर्यो का विशेष आकर्षण था।

हमारे इस निष्कष की पुष्टि तभी होगी जब हम आर्यो के उत्कर्ष की जीवत कथा पाठको के समक्ष प्रस्तुत करेगे। सरस्वती के निकट आदि मानव सभ्यता का भी जन्म हुआ। इस सबध मे "जल प्रलय" वाली घटना का उल्लेख करना आवश्यक हे। उत्तराखड के वतमान गढवाल अचल मे अनेक ऐसे उदाहरण है जिनसे आर्यो की उत्पत्ति सबधी धारणाओ की भी जानकारी हो जाती हे। क्योकि शतपथ आदि वैदिक वाड्मय मे प्रतिपादित जलप्लावन से सबधित उत्तरगिरि का वह "मनोरव सपणम्" नामक शरणस्थल भी यहीं गढवाल मे स्थित है, जहॉ दक्षिण (गिरि) से चलकर सप्तर्षियो की नाव जल-अवतरण तक ठहरी थी। मनोरव, मनु ओर माना मे शब्दसाम्य भी है और यह अतिम मानव बस्ती भी है।

श्री पावगी आदि इतिहासकारो ने जो लिखा है कि आर्य-जाति प्रालेय-प्रलय के समय वहॉ से उत्तरी ध्रुव मे गयी और फिर साधारण समय आने पर लौट आयी आर्यावर्त्त इसकी स्पष्ट सूचना देता है। इसका सीधा और सही अर्थ यह हे कि समस्त सप्तसिन्धु गिरिप्रदेश है। इसका उत्तरी भाग उत्तरगिरी, मध्यभाग अन्तर्गिरि और दक्षिण भाग दक्षिणगिरि कहलाता था। (महा भीष्मपव, 9/49)। उत्तरगिरि का अधिकाश भाग 12 हजार फुट ऊॅचे हिम-शिखरो से आच्छादित होने के कारण वहॉ की जलवायु उत्तरी ध्रुव की भॉति शीतप्रधान है। दक्षिणगिरि, उत्तरगिरि की अपेक्षा कुछ समतल है। वहॉ सरिता-तटो एव उपत्यकाओ की जलवायु अत्यधिक उष्ण है। लक्ष्मण झूला उपत्यका की ऊॅचाई केवल 1,000 फुट होने के कारण वहॉ की जलवायु अधिक उष्ण है। इस प्रकार 1,000 फुट से निम्न और 25, 600 फुट नक ऊॅचे स्थलो से आच्छादित होने के कारण इस पर्वत प्रदेश मे अत्यधिक शीत और अत्यधिक उष्ण दोनो प्रकार की जलवायु पायी जाती है। चार हजार से सात-आठ हजार फुट तक ऊॅचे क्षेत्रो मे यहॉ प्राय परिवर्तित हलके तापक्रम वाले शीतोष्ण जलवायु का भी बाहुल्य है, जो भूगर्भशास्त्री मेडलीकॅट एव ब्लैन्पैर्ड के मतानुसार विश्व मे जीवन शक्ति के सर्वप्रथम उत्पत्ति स्थल है।

आर्यों का मूल निवास और जलप्लावन

उपरोक्त विवरणो से यह बात पूर्णत स्पष्ट हो जाती है कि आर्यो का मूल निवास पजाब का मैदानी क्षेत्र न होकर हिमालय का वह भाग है—जहॉ गगा-यमुना ओर सरस्वती

का जन्म हुआ, जिस क्षेत्र मे गोतमी और सरयू का विस्तार हुआ और जिस क्षेत्र मे कैलाश-मानसरोवर जेसे अचल का अस्तित्त्व रहा हे—वही तत्कालीन "त्रिविष्टप" क्षेत्र आर्यो का मूल स्थान हे। यह तथ्य ऋग्वेद से लेकर पौराणिक साहित्य के आधार पर भी शतश प्रमाणित हो जाता है।

अनेक तथ्यो के आधार पर यह बात भी प्रमाणित हो जाती है कि भारत के प्राचीन "त्रिविष्टप" अथात् आज के गढवाल कुमाऊॅ और वर्तमान तिब्बत के कैलाश मानसरोवर क्षेत्र मे आर्यो का मूल निवास था—और इसी अचल से वे सर्वप्रथम पश्चिमोत्तर देशो मे गये। कालातर मे उनका सघर्ष उन्हीं अपने भारत से बाहर गये हुए आर्यो से हुआ। ओर उस सघर्ष मे उनका मुख्य केद्र पजाब का क्षेत्र रहा। सैकडो वर्षो तक यूनान आदि देशो के आर्यो का सघर्ष पजाब की भूमि मे होता रहा। पश्चिमोत्तर देशो मे बसे हुये आर्य जब पुन भारतवर्ष की ओर आते रहे, तब-तब युद्ध करते रहे। कभी विजयी हुये तो कभी पराजित हुये। परन्तु, उनका अपनी मूल भूमि के प्रति आकर्षण बना रहा। उनका राज्य विस्तार भी हुआ। ऐसी अवस्था मे इतिहासकारो ने अनुमान लगाया कि आर्यो का आदि निवास मध्य एशिया था और वे वहीं से भारत की ओर आये। परन्तु यह सिद्धात अब पूर्णत अमान्य हो गया है क्योकि ऐसे अनेक प्रमाण है जिनके निष्कर्षो ने यह प्रमाणित कर दिया है कि आर्यो का मूल निवास मध्य हिमालय का वह भाग है। जहॉ आज भी भारतीय सभ्यता सस्कृति तथा धर्म के समस्त चिह्न विद्यमान है। ऐसे विशिष्ट प्रमाणो के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी उदाहरण है। जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि आर्यो के द्वारा ही मानव जाति का विकास और उत्थान भी हुआ है।

"जलप्लावन" की घटना

"जलप्लावन" वाली एक ऐसी घटना है, जिनको ससार के सभी इतिहासकार स्वीकारते है कि विश्व मे एक बार ऐसा "जलप्रलय हुआ था—जिसने समस्त सृष्टि को नष्ट कर दिया था। फिर आदि मानव ने सृष्टि रचना कर विश्व को सवारा और सजाया है। और वह आदि सृष्टि की रचना करने वाला "मनु" ही था।

हमारे इस कथन की आलोचना हो सकती है कि हम ससार की मानव-उत्पत्ति का श्रेय भी भारत को ही देना चाहते है। अथवा दूसरे शब्दो मे कहे तो विश्व के सभी सभ्य सस्कारो को लेने का गौरव प्राप्त करना चाहते है। परन्तु, इसमे हमारा कोई दोष नहीं है। विश्व के इतिहासकार स्वय यह मानने लगे है कि भारत ही विश्व का ऐसा देश है जिसने ससार मे सर्वप्रथम ज्ञान प्राप्त कर दुनिया को सोचने-समझने की शक्ति प्रदान की। स्वय मेक्समूलर यह मानते है कि ससार मे ज्ञान को देने वाली ऋग्वेद से बढकर कोई दूसरी पुस्तक नहीं है जो मानवीय इतिहास को भी प्रस्तुत करती हो। इस तथ्य को विश्व के धर्मो की ऐतिहासिक परम्परा को ध्यान मे रखकर भी प्रमाणित किया जासकता है। विश्व के विशिष्ट धर्मो की प्राचीनता पर यदि दृष्टि डाले तो वस्तुस्थिति की स्पष्ट जानकारी हो जाती है।

गगाप्रसाद एम० ए० ने अपनी पुस्तक "धर्म का आदि स्रोत" के पृष्ठ 4 पर लिखा

है 'बौद्ध धम यहूदी मत से, यहूदी मत इसाई मत से ओर ईसाई मत मुसलमानी मत से अधिक प्राचीन है। इसी प्रकार वैदिक धर्म जरदुश्ती मत से और जरदुश्ती मत यहूदी मत से पूर्व का हे। जेन्दअवेस्ता (पारसियो की धर्मपुस्तक) बाइबिल के सबसे प्राचीन और प्रथम पॉच अध्यायो से जिनको पजनामा कहते है ओर जो ईसाइ और यहूदी दोनो की धर्मपुस्तक है, अधिक पुरान ग्रथ ह। प्रथम शताब्दी के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता प्लिनी के कथनानुसार इस पजनामा में वर्णित हअरत मूसा से, पारसी धम प्रवर्तक जरदुश्त कई हजार वर्ष पूर्व हुये हे।" उनके अनुसार", वेद ही सव धर्मो का मूल स्रोत है। यही वह स्रोत है, जिससे धार्मिक ज्ञान की धारा जरदुश्ती, बौद्ध यहूदी, ईसाइ और मुसलमानी मतो की नदियो मे होकर प्रवाहित हुई है। "अत यह निर्विवाद प्रमाणित हो चुका है—वेद और उनमे भी ऋग्वेद विश्व मे सबसे प्राचीन ग्रथ हे—आर वही विश्व के धर्मो का आदि स्रोत भी है।

"जलप्लावन" की गाथा

ऋग्वेद (ऋ० म०8 सूक्त 27-30) मे "जलप्लावन" अर्थात् जलप्रलय का विवरण है। ऋग्वेद मे जलप्लावन का वर्णन इस प्रकार हे

"अथर्ववेद" (19/39/8), "महाभारत"(वन पर्व, अ० 197, आरण्यकपर्व 185/4) "अग्निपुराण" (2/4/15), "मत्स्यपुराण" (2/16/19) और "श्रीभदभागवत्" (8/24) मे जलप्लावन की कथा हे। वैवस्वत मनु ने मत्स्य के निर्देशानुसार प्रलय के दिन नाव मे बीजादि रखकर सप्नर्षियो के साथ ब्राह्मी निशा मे, हिमवान के उत्तरगिरि प्रदेश म जिस शिखर पर नाव बॉधी उसको शतपथ ब्राह्मण मे "मनोरवसर्पण", महाभारत ओर पुराणों मे "नो बधन" और अथर्ववेद मे "नाव प्रभशन" कहा गया हे। "शतपथ मे" मनोरवसर्पण" स्थान पर नौका को वृक्ष पर (पर्वत शिखर पर नहीं) बॉधने का उल्लेख है।

शतपथ ब्राह्मण मे जलप्रलय की कथा का विवरण इस प्रकार है

मनु एक बार प्रात काल नदी तट पर हाथ-मुॅह धोरहे थे। उसी समय एक छोटी मछली उनके हाथ मे आ गइ। उस मछली ने मनु से कहा—मुझे पालो, एक दिन मे तुम्हारी रक्षा करूॅगी। मनु बोले—तुम मेरी रक्षा कैसे करोगी। मछली ने कहा—कुछ समय बाद भयकर तूफान आयेगा। समुद्र का जल, प्रलय का रूप धारण करेगा। समस्त जन ओर वनस्पतियो का नाश हो जायेगा। भरत जनो का भी अत हो जायेगा। ऐसे कठिन समय पर मे तुम्हारी रक्षा करूॅगी।

मनु ने पूछा—फिर मै तुम्हे कैसे पालूॅ। उस छोटी मछली ने कहा—छोटी मछली को बडी मछली खा जाती है, अत तुम मुझे पानी के घडे मे डालकर पालो। जब मे बडी हो जाऊॅगी तो मुझे समुद्र मे डाल देना। मछली के कथनानुसार मनु ने उसे पाला, फिर उसे समुद्र मे डाल दिया। जिस वर्ष के लिए मछली ने कहा था, उसी वर्ष मनु ने एक नाव बनाई ओर तूफान आने पर सात आदि ऋषियो ओर अनेकानेक बीजो को लेकर उस नाव मे बैठ गये वह मछली उस तूफान आने के समय तक बडी मछली बन गई थी। तूफान के आने के साथ ही वह नाव के पास तेरकर आयी। मनु ने उसके सींग से नाव की रस्सी

बॉध ली। इस तरह वह शीघ्र उत्तरी पहाड तक पहुॅच गये। मत्स्य ने कहा वृक्ष में नाव बॉध दो, जब जल कम हो जाए, तब नीचे उतर आना। समुद्र के पानी का विस्तार जब कम हुआ तो मनु धीरे-धीरे पहाड से नीचे उतर आए। पहाड के उस भाग को मनु का उतार कहते है।

इस विशिष्ट घटना का विवरण स्पष्टत ऋग्वेद और भागवत में भी मिलता है।

(अ) तम आसीत्मसा गूढमग्रे प्रकेत सलिलम् सर्वमा इदम्।।

ऋग्वेद, 10/129/3

(आ) तत समुद्रोअर्णव समुद्रादर्णवादधि सम्वत्सरो अजायत।

ऋग्वेद 10/190/1-2

(इ) तत· समुद्र उद्वेल सर्वत प्लावयन्महीम्।
वर्धमानो महामेघैर्वर्षद्भि समदृश्यत।। भागवत्, स्क० 8/24/41

भारत के ही नहीं, विश्व के सपूर्ण धार्मिक एव ऐतिहासिक वाङ्मय में एक महान् जलप्रलय का उल्लेख है। एक विशाल जलप्लावन हुआ। समुद्र का जल मर्यादा तोडकर भूमि पर आया। प्रचड मेघमाला आकाश मे उमड पडी और भीषण वषा से गिरते हुए जल मे चराचर डूब गये। सप्तर्षियो के साथ कुछ प्राणी बच गये। एक दिव्य नौका मे बैठकर किसी मछली के सहारे उन्होने उस जलप्लावन को पार करके नाव हिमालय पर सुमेर के किनारे लगा ली। मनु उन ऋषियो मे प्रमुख थे। बचे हुए उन लोगो ने अपनी सतति का विस्तार करते हुए एक समाज सस्था बना ली।

यह समाज "मनु" का समाज था। इस समाज का आदि पुरुष मनु ही था। यह तो सभी मानते है कि सृष्टि की रचना आदि पुरुष ने की थी। भारतीय वाडमय में उस आदि पुरुष को "मनु" नाम दिया गया है जबकि अन्यधर्मो ने अपने-अपने नाम देकर इस आदि पुरुष की धारणा को मान्यता दी हे।

मनु को "जेन्दअवेस्ता" मे विघनधत, विवहान यिम और बाइबल में नूह कहा गया है। "जेन्दअवेस्ता" मे यिम को भी आदि मनु की ही भॉति आदि पुरुष, प्रथम नरेश और सामाजिक व्यवस्था का प्रथम सस्थापक कहा गया है। बाइबल नूह के साथ उसके परिवार के जिन सात सदस्यो का उल्लेख है वे आर्य-साहित्य मे वर्णित सप्तर्षि है।

"ऋग्वेद" की भ्रात धारणा

अनेक विद्वान यह कहते है कि जलप्रलय का विवरण ऋग्वेद मे नहीं है। यह भ्रात धारणा है। परन्तु वास्तविकता यह है कि आमतौर पर जिस मनु का विवरण साहित्य मे प्रस्तुत किया गया है, वह ऋग्वेद मे नहीं है। केवल मात्र जलप्रलय का उल्लेख है। अथववेद मे जलप्रलय की सपूर्ण कथा है।

विद्वानो के भ्रम का कारण यह भी हो सकता है कि ऋग्वेद मे स्पष्टत शतपथ ब्राह्मण वाली उक्त कथा का उसमे उल्लेख नहीं है—परन्तु गभीर अध्ययन के बाद सत्यता का पूर्ण

ज्ञान हो जाता है। प्रलय के बाद जो मनु बच पाये थे। वह वैवस्वत मनु थे। जिनका विवरण ऋग्वेद मे है।

वैवस्वत मनु

भारतीय साहित्य म इस जलप्लावन की घटना के साथ जिस मनु का सबध है, वे सप्तम मनु हे। सप्तम मन्वतर को आरम्भ हुए भारतीय काल—गणनानुसार 12, 05, 33, 063 वर्ष हो चुके है। सप्तम मनु विवस्वान के पुत्र थे (10/14/1, 10/14/15, 10/58/13 10/60/10) इसलिए उन्हे वैवस्वत मनु भी कहा जाता है। उनको यम, धर्म, गधर्व भी कहते है (ऋ० 10/53/53)। वे दक्ष कन्या श्रद्धा के पति थे, इसलिए उनका उपनाम श्रद्धादेव भी है।

वेवस्वत मनु ऋग्वेद के मत्रद्रष्टा ऋषि है। वैवस्वत नम, ऋग्वेद 10/15 एव आठवे मडल के 27 से 31 सूक्तो के रचयिता है। उनका राज्य हरिद्वार से ऊपर समस्त पर्वत-प्रदेश मे था, जो उस समय सप्तसिन्धु देश कहलाता था। हरिद्वार के दक्षिण मे उस समय समुद्र लहराता था। उनकी राजधानी सप्तसिन्धु के दक्ष्णि मे कनखल के आस-पास कहीं थी जलप्लावन के अवसर पर प्रलय से त्राण पाने के लिये वे सप्तर्षियो एव विशिष्ट व्यक्तियो सहित नाव मे बैठकर दिव्य मत्स्य की सहायता से दक्षिण गिरि प्रदेश के उत्तरगिरि की ओर भागे। बद्रीधाम के निकट, सरस्वती और अलकनदा के तटवर्ती क्षेत्र मे किसी पर्वत-शिखर पर उन्होने अपनी नाव बॉध दी। लगभग सौ वर्ष से अधिक समय तक सरस्वती, अलकनदा और मदाकिनी नदियो का यह तटवर्ती क्षेत्र जो प्रलय जल से ऊपर रह गया था और जिसका पुराणो मे ब्रह्मवर्त नाम से उल्लेख किया गया वह क्षेत्र वैवस्तमनु का क्रीडास्थल रहा। ऋग्वेद (9/113/8) के कथनानुसार स्वर्ग के, उत्तम लोक मे जहॉ मदाकिनी आदि नदियॉ बहती है, मनु का आश्रम स्थल था। पुराणो ने हरिद्वार से उत्तर की भूमि को ही स्वर्ग कहा है। अलकनदा के इसी उत्तरी क्षेत्र मे मनु-पुत्री इला (ऋ० 2/35/5,10/95/10) मनु पुत्र सुद्युम्न' के नाम से रहती थी। इला से इस क्षेत्र मे ऐलवश व चन्द्रवश की उत्पत्ति हुई। उससे चन्द्रमा के पुत्र बुध ने चन्द्रवश के प्रवर्तक राजा पुरूरवा राजा को जन्मा। चन्द्रवशी राजाओ की राजधानी चान्दपुर (चन्द्रपुर) थी जहॉ प्राचीन गढ के अवशेष आज तक सुरक्षित है। चन्द्रमा के पुत्र बुध, बुध-अयन (बधाण) मे और पुरूरवा अलकनदा के तटवर्ती गन्धमादन क्षेत्र मे रहते थे।

आदि मनु स्वायम्भुव मनु

यह तो सवमान्य तथ्य है कि "मनु" से मानवो का जन्म हुआ। परन्तु वह कौन सा मनु है—जिससे सृष्टि की उत्पत्ति हुई। यह विचारणीय बिन्दु है। अत इस पर भी विचार कर लना आवश्यक है। जितने मन्वन्तर हुये-उतने मनु भी हुये है।

भारतीय वाड्मय मे वर्णित मन्वन्तरो मे आज का प्रथम स्वायम्भुव, द्वितीय स्वारोचिष तृतीय उत्तम, चतुर्थ तामस, पचम रेवत, षष्ठ चाक्षुष और सप्तम वेवस्वत नाम के सात

मनु और सात मन्वन्तर हो चुके है। स्वायम्भुव मनु को मानव का आदि पुरुष, राज्य-व्यवस्था का प्रथम प्रवर्तक एव धर्म का प्रथम सस्थापक कहा गया है। स्वायम्भुव मनु ही प्रथम आर्य नरेश थे, जिन्होने विश्व मे मानव स्वभाव के नैसर्गिक भेदो के अनुसार, उनके गुण, कर्म और स्वभाव के आधार पर, विभिन्न वर्णो मे समन्वयात्मक सतुलन के निमित्त "मनुस्मृति" द्वारा सर्वप्रथम प्रजातत्रात्मक वर्ण व्यवस्था स्थापित की। "मनुस्मृति" के रूप मे मनु की वह धर्म व्यवस्था आज भी हिन्दू साहित्य मे सुरक्षित है। इस सबध मे भारतीय वाङ्मय के कुछ उदाहरण इस प्रकार है

स्वायम्भुवो मनुर्धीमानिद शास्त्रमकल्पयत-मनु 1/102, स्वायम्भुवस्यास्य मनो -मनु० 16/161, अविशेषेण प्रभाणादाद। भवति धर्मत मिथनाना विसर्गादौ मनु स्वायम्भुवोऽब्रवीत-निरूक्त 31/4, मनु स्वायम्भुवाऽब्रवीत-मनु 6/54, 8/124, 8/158, महाभारत, आदिपर्व 73/9, शांतिपर्व 36/5, 139/103।

स्वायम्भुव मनु के समय भी उत्तर भारत के तराई क्षेत्र मे समुद्र था। अत मनु का निवास-स्थान भी उसके ऊपरी भाग शिवालिक पर्वतमाला के आस-पास के क्षेत्र में ही निश्चित हे। स्वायम्भुव मनु के साथ जिन सप्तर्षियो का उल्लेख है, उनके आश्रम, वेद और पुराणो के कथनानुसार हरिद्वार से ऊपर हिमालय उत्तरगिरि पर्वत प्रदेश मे थे।

विश्व के आर्य एव आर्येतर धर्मग्रन्थो मे मनु कई नामो से विख्यात है। कई विद्वानो के कथनानुसार मिस्र देश के प्रथम नरेश मेनीज और क्रीट द्वीप सम्राटो की सज्ञा "मैनोस" का उत्पत्ति-स्रोत मनु हे। बाइबिल ओर कुरान मे उसको ही आदम (आदि मनु) कहा गया है। अग्रेजी का "मैन" शब्द भी मनु का ही अपभ्रश है। मनु शब्द "मनुज" की आदि उत्पति का बोधक है। "मनु" किस प्राचीन साहित्य की मौलिक देन है, यह जानने से पूर्व यह जानना आवश्यक हे कि प्राचीन भारतीय वाङ्मय मे मनु का जितना विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता हे उतना विश्व के अन्य धर्म-ग्रन्थो मे नहीं मिलता। मनु मानव सृष्टि का प्रवर्तक, आदि पुरुष, समस्त मानव जाति के पिता माने जाते हैं (ऋ०1/80/16, 114/2, 2/33/13, 8/63/1)। ऋग्वेद मे बीस बार मनु का नाम आया है। सर्वप्रथम स्वायम्भुव मनु हुए। उनके बाद छ बार जलप्लावन हुआ, जिसमे सृष्टि विनष्ट होती गयी। शायद प्रलय कथा का वर्णन करने के लिए कुछ मनुष्य ही जीवित रह सके। प्रत्येक मन्वतर मे सृष्टि का आदि पुरुष "मनु" नाम से प्रसिद्ध हुआ। पुराणो मे इनकी वशावली मिलती है, परन्तु वैवस्वत मनु के अतिरिक्त, उनसे पूर्व के अन्य मनुओ का सपूर्ण जीवन वृत्त नहीं मिलता, जिनके जीवन काल मे हजारो वर्ष पूर्व छ मन्वन्तर व्यतीत हो चुके थे।

प्रलय काल के बाद वैवस्वत मनु

प्राचीन भारतीय वाङ्मय के अध्ययन के बाद यह पूर्णत प्रमाणित हो जाता है कि वेवस्वत मनु ही प्रलयोत्तरकालीन मानव समाज के आदि पुरुष है और पुराणो मे निर्दिष्ट सारे राजवश इन्हीं से प्रारभ होते है। वैदिक काल के प्रारम्भ मे उन्हे यम भी कहा गया

है। कुछ इतिहासकारो ने मनु वैवस्वत का राज्यकाल ईसा पूर्व 3110 वर्ष माना है। बेबीलोन के साहित्य मे निर्दिष्ट मेसोपोटामिया के जल-प्रलय का समय भी ईसा पूर्व 3100 वर्ष माना जाता है। 'शतपथ ब्राह्मण' मे वर्णित मनु वैवस्वत का जल-प्रलय भी इसी समय मे हुआ था, तब प्राचीन चरित्रकोष के पृष्ठ 605 और पृष्ठ 611-612 के अनुसार वैवस्वत मनु सरस्वती नदी के तट पर रहते थे।

प्राचीन भारतीय वाड्मय मे सात मनुओ या मन्वन्तरो का उल्लेख है। प्रत्येक मन्वन्तर आर्य-नरेश मनु से प्रारम्भ हुआ है। प्रथम मनु स्वायम्भुव के समय से अनेक पीढियो तक समस्त क्षेत्र मे एक ही व्यवस्था रही, जिसका नियमन प्रजापतियो द्वारा होता रहा। स्वायम्भुव मनु की पाँचवी पीढी मे व्यवस्था मे बाधा उत्पन्न हुई और आर्यो का विशाल सगठन छिन्न-भिन्न होने लगा। 29वी से 35वीं पीढी तक के प्रजापतियो के नाम भी पुराणो मे नहीं मिलते। इसके पश्चात् पियव्रत शाखा एक और प्रलय मे समाप्त हुई और उत्तानपाद शाखा के चाक्षुष, मनु पर विराजमान हुये। कुछ का अनुमान है कि चाक्षुष के पुत्रो, उर और पुरू ने सुमेर मे अपने नाम पर दो नगर बसाये थे। पुर को विलोविस्तान मे ''पहरा'' नामक गॉव के पास स्थापित माना जाता है। सिकदर के साथ आने वाले इतिहासकारो ने उर से पुर तक की साठ दिन की यात्रा का समय बताया था। अत एक नगर से दूसरे नगर तक जाने मे साठ दिन लगते थे।

चाक्षुष मनु से 35 पीढी पहले लगभग 4286 ई० पू० पुराणो के अनुसार आर्यो का सगठन भूमध्य सागर तक फैल चुका था। सुषा, किश (बेबीलोनिया) ओर सुमेरियन सभ्यता आर्य सभ्यता के प्रधान केन्द्र बन चुके थे।

सिन्धु से सुमेर तक प्राचीनकाल मे एक ही सभ्यता थी ओर इसकी प्रवर्तक मूल जाति भी एक ही थी। 3300 ई० पू० के लगभग इसी क्षेत्र के समीप पुर नामक नगर बसाया गया था। जिसका सबध सुमेर के उर नामक नगर से बराबर रहा। ये दोनो नगर उत्तानपाद शाखा के चाक्षुष मनु के पुत्रो के नाम पर बसाये गये थे।

इन तथ्यों से यह प्रमाणित होता है कि सृष्टि के ''आदि मनु-स्वायम्भुव'' के समय ही आर्यो का सप्तसेधव प्रदेश से पश्चिमोत्तर क्षेत्रो मे आना-जाना शुरू हो गया था।

जल प्रलय

सबसे निकट की घटना वैवस्वत मनु के समय की स्वीकार की जाती है। उस समय के जलप्रलय की घटना को विश्व के धर्मो एव इतिहासकारो ने एक सत्य घटना के रूप मे मान्यता दी है। वैसे तो हम इस विवरण का उल्लेख कर चुके है परन्तु प्रसगानुसार यहॉ पर भी'' जल प्रलय की घटना का विवरण प्रस्तुत करना, इसलिये भी आवश्यक समझते है—क्योंकि ''वैवस्वतमनु'' वाली जलप्रलय की जो कथा—भारतीय वाडमय मे मिलती है—वही कथा स्थानीय परिवेश के कारण कुछ परिवर्तनो के साथ ''बाइबल,'' कुरान और जेन्द अवेस्ता मे भी मिलती है परन्तु मूल भाग्तीय कथा के ही अति निकट रहता है।

''बाइबिल'' और कुरान'' मे हजरत नूह की किश्ती नूंह के परिवार के पास सात सदस्यो

के सहित जहॉ अरारात पर्वत–शिखर पर ठहर जाती है, वहॉ भारतीय साहित्य म मनु की नाव सप्तर्षियो सहित हिमालय पर जो ससार का सर्वोच्च शैल-शिखर है, ठहरती है। प्रलय मे नगण्य अरारात पर्वत के समक्ष हिमालय की सवविदित सर्वोच्चता वास्तविक भोगोलिक तथ्यो से भी प्रमाणित हो जाती हे। इस अकाट्य प्रमाण से भारतीय साहित्य मे वर्णित जल प्रलय की कथा का मूलस्रोत स्वय सिद्ध हो जाता है। बाइबिल मे हजरत नूह ओर उसके परिवार के सात सदस्यो का अत्यत सक्षिप्त जीवन-वृत्त भी भारतीय साहित्य में वर्णित मनु और सप्तर्षियो के विस्तृत जीवन-वृत्त के समक्ष जलप्लावन की घटना के वास्तविक स्रोत को स्पष्ट कर देता है। अत ससार के सबसे प्राचीन ग्रथ ऋग्वेद से यह घटना ''शतपथ'' और पुराणो मे होती हुइ भारतीय आर्यो के पश्चिमोत्तर-अभियानो द्वारा जेन्दअवेस्ता, ''पजनामा', यहूदी और इसाई धम-ग्रथ ''बाइबिल'' और कुरान' मे जा पहुॅची हे।

मिस्री सस्कृति के प्राचीन ध्वसावशेषो पर भारतीय प्रभाव स्पष्ट है। उनकी भाषा, नगरो ओर देवताओ पर भारतीय आर्यो की अमिट छाप हे। उनकी नील नदी नीले पर्वत से निकलने के कारण नील कहलायी। वे शीनकाल को आज भी शीत कहते है। उनके राजा हरिहोर (हरिहर महादेव) के उष्णीश पर नाग-चिह्न विराजमान है। ''होर'' का नेत्र भी मिस्री साहित्य मे प्रसिद्ध है। उनका एक देवता यम भी है। भारतीय बौद्ध स्तूपो की भॉति मिस्र में भी मृतका की स्मृति मे विशालकाय स्तूप बनाने की प्रथा थी। वे पुनर्जन्म और आत्मा के आवागमन पर विश्वास करते थे। उनके भित्तिचित्रो एव मृतको के ताबूनो पर भारतीय वस्त्रो जैसे परिधान एव रूपरगो के चित्रण है। उनका सबसे बडा देवता सूर्य था। वे प्रात साय सूर्य की उपासना करते थे। उनके प्राचीन निवासी भी भारतवासियो की भॉति सूर्यवशी और चन्द्रवशियो मे विभाजित थे। मोम्फस या होलियोपोलिस के पैरो सूर्यवशी और हक्रियोपोलिस के चन्द्रवशी थे।

मिस्री सम्वत् उनके प्रथम नरेश मीनस (मनु) से आरभ होता है। सिकदर के समय तक उसको 25, 300 वर्ष व्यतीत हो चुके थे। अत उपरोक्त विवरण स्वय मे साक्ष्य जुटाते है कि ''वैवस्वतमनु'' के समय जो जलप्रलय हुआ था–उसने सपूर्ण विश्व को प्रभावित किया था। और उसका मूल क्षेत्र भी भारत ही रहा है। इस तथ्य को प्रामाणिक रूप देने मे स्वामी करपात्री के विचार महत्त्वपूर्ण है।

''मार्क्सवाद और रामराज्य'' (पृ 197-98) नामक अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में स्वामी करपात्री जी लिखते हे –''वस्तुत नूह का तूफान वेवस्वत मनु की मछली वाली कथा का अनुवाद है। नूह के पुत्र हेम की सतति जो मिस्र मे रहती है, अपना सबध राजा मनु से बतलाती है और अपने को सूर्यवशी कहती है तथा मनु वैवस्वत के मूल विवस्वान सूर्य को अपना इष्ट समझती है। इन्हीं मिस्र वालो की ही सतति अमेरिका के मूल निवासी बतलाये जाते है। ''बाइबिल'' मे बतलायी हुई नूह की पीढियॉ काल्पनिक है। मनु को वैवस्वत कहा जाता हे। विवस्वान सूर्य है। हजरत नूह के दो पुत्र हेम और सेम सूर्यवशी और चन्द्रवशी ही है। हेमगर्भ (हिरण्यगर्भ) सूर्यवश का ही बोधक है और सेम (सोम) चन्द्रवश का बोधक हे। सूर्यवशियो की पुत्री इला से ही सोमवश की उत्पत्ति हुई है।''

है। कुछ इतिहासकारो ने मनु वैवस्वत का राज्यकाल ईसा पूर्व 3110 वर्ष माना है। बेबीलोन के साहित्य मे निर्दिष्ट मेसोपोटामिया के जल-प्रलय का समय भी ईसा पूर्व 3100 वर्ष माना जाता है। 'शतपथ ब्राह्मण' मे वर्णित मनु वैवस्वत का जल-प्रलय भी इसी समय मे हुआ था, तब प्राचीन चरित्रकोष के पृष्ठ 605 और पृष्ठ 611-612 के अनुसार वैवस्वत मनु सरस्वती नदी के तट पर रहते थे।

प्राचीन भारतीय वाङ्मय मे सात मनुओ या मन्वन्तरो का उल्लेख है। प्रत्येक मन्वन्तर आर्य-नरेश मनु से प्रारम्भ हुआ है। प्रथम मनु स्वायम्भुव के समय से अनेक पीढियो तक समस्त क्षेत्र मे एक ही व्यवस्था रही, जिसका नियमन प्रजापतियो द्वारा होता रहा। स्वायम्भुव मनु की पॉचवी पीढी मे व्यवस्था मे बाधा उत्पन्न हुई और आर्यो का विशाल सगठन छिन्न-भिन्न होने लगा। 29वीं से 35वीं पीढी तक के प्रजापतियो के नाम भी पुराणो मे नहीं मिलते। इसके पश्चात् पियव्रत शाखा एक और प्रलय मे समाप्त हुई और उत्तानपाद शाखा के चाक्षुष, मनु पर विराजमान हुये। कुछ का अनुमान है कि चाक्षुष के पुत्रो, उर और पुरू ने सुमेर मे अपने नाम पर दो नगर बसाये थे। पुर को विलोविस्तान मे "पहग" नामक गॉव के पास स्थापित माना जाता हे। सिकदर के साथ आने वाले इतिहासकारो ने उर से पुर तक की साठ दिन की यात्रा का समय बताया था। अत एक नगर से दूसरे नगर तक जाने मे साठ दिन लगते थे।

चाक्षुष मनु से 35 पीढी पहले लगभग 4286 ई० पू० पुराणो के अनुसार आर्यो का सगठन भूमध्य सागर तक फैल चुका था। सुषा, किश (बेबीलोनिया) और सुमेरियन सभ्यता आर्य सभ्यता के प्रधान केन्द्र बन चुके थे।

सिन्धु से सुमेर तक प्राचीनकाल मे एक ही सभ्यता थी ओर इसकी प्रवर्तक मूल जाति भी एक ही थी। 3300 ई० पू० के लगभग इसी क्षेत्र के समीप पुर नामक नगर बसाया गया था। जिसका सबध सुमेर के उर नामक नगर से बराबर रहा। ये दोनो नगर उत्तानपाद शाखा के चाक्षुष मनु के पुत्रो के नाम पर बसाये गये थे।

इन तथ्यो से यह प्रमाणित होता है कि सृष्टि के "आदि मनु-स्वायम्भुव" के समय ही आर्यो का सप्तसेधव प्रदेश से पश्चिमोत्तर क्षेत्रो मे आना-जाना शुरू हो गया था।

जल प्रलय

सबसे निकट की घटना वैवस्वत मनु के समय की स्वीकार की जाती है। उस समय के जलप्रलय की घटना को विश्व के धर्मो एव इतिहासकारो ने एक सत्य घटना के रूप मे मान्यता दी है। वैसे तो हम इस विवरण का उल्लेख कर चुके है परन्तु प्रसगानुसार यहॉ पर भी" जल प्रलय की घटना का विवरण प्रस्तुत करना, इसलिये भी आवश्यक समझते हे—क्योंकि "वैवस्वतमनु" वाली जलप्रलय की जो कथा—भारतीय वाडमय मे मिलती है—वही कथा स्थानीय परिवेश के कारण कुछ परिवर्तनों के माथ "बाइबल," कुरान और जेन्द अवेस्ता मे भी मिलती है परन्तु मूल भारतीय कथा के ही अति निकट रहता है।

"बाइबिल" और कुरान" मे हजरत नूह की किश्ती नूह के परिवार के पास सात सदस्यो

के सहिन जहॉ अरारात पर्वत—शिखर पर ठहर जाती है, वहॉ भारतीय साहित्य मे मनु की नाव सप्तर्षियो सहित हिमालय पर जा ससार का सर्वोच्च शैल-शिखर है, ठहरती है। प्रलय मे नगण्य अरारात पर्वत के समक्ष हिमालय की सवविदित सर्वोच्चता वास्तविक भौगोलिक तथ्यो से भी प्रमाणित हो जाती है। इस अकाट्य प्रमाण से भारतीय साहित्य में वर्णित जल प्रलय की कथा का मूलस्रोत स्वय सिद्ध हो जाता है। बाइबिल में हजरत नूह और उसके परिवार के सात सदस्यो का अत्यत सक्षिप्त जीवन-वृत्त भी भारतीय साहित्य में वर्णित मनु और सप्तर्षियो के विस्तृत जीवन-वृत्त के समक्ष जलप्लावन की घटना के वास्तविक स्रोत को स्पष्ट कर देता है। अत ससार के सबसे प्राचीन ग्रथ ऋग्वेद से यह घटना ''शतपथ'' और पुराणो मे होती हुई भारतीय आर्यो के पश्चिमोत्तर-अभियानो द्वारा जेन्दअवेस्ता, ''पजनामा', यहूदी और ईसाई धर्म-ग्रथ ''बाइबिल'' ओर कुरान' मे जा पहुॅची हे।

मिस्री सस्कृति के प्राचीन ध्वसावशेषो पर भारतीय प्रभाव स्पष्ट है। उनकी भाषा, नगरो ओर देवताओ पर भारतीय आर्यो की अमिट छाप है। उनकी नील नदी नीले पवत से निकलने के कारण नील कहलायी। वे शीतकाल को आज भी शीन कहते हे। उनके राजा हरिहोर (हरिहर महादेव) के उष्णीश पर नाग-चिह्न विराजमान है। ''होर'' का नेत्र भी मिस्री साहित्य मे प्रसिद्ध है। उनका एक देवता यम भी है। भारतीय बौद्ध स्तूपा की भॉति मिस्र म भी मृतको की स्मृति मे विशालकाय स्तूप बनाने की प्रथा थी। वे पुनजन्म और आत्मा के आवागमन पर विश्वास करते थे। उनके भित्तिचित्रो एव मृतको के ताबूतो पर भारतीय वस्त्रो जैसे परिधान एव रूपरगो के चित्रण हे। उनका सबसे बडा देवता सूर्य था। वे प्रात साय सूय की उपासना करते थे। उनके प्राचीन निवासी भी भारतवासियों की भॉति सूर्यवशी और चन्द्रवशियो मे विभाजित थे। मोम्फस या होलियोपोलिस के पेरो सूर्यवशी और हक्रियोपोलिस के चन्द्रवशी थे।

मिस्री सम्वत् उनके प्रथम नरेश मीनस (मनु) से आरभ होता हे। सिकदर के समय तक उसको 25, 300 वर्ष व्यतीत हो चुके थे। अत उपरोक्त विवरण स्वय में साक्ष्य जुटाते है कि ''वैवस्वतमनु'' के समय जो जलप्रलय हुआ था-उसने सपूर्ण विश्व को प्रभावित किया था। और उसका मूल क्षेत्र भी भारत ही रहा है। इस तथ्य को प्रामाणिक रूप देने मे स्वामी करपात्री के विचार महत्त्वपूर्ण है।

''मार्क्सवाद और रामराज्य'' (पृ 197-98) नामक अपनी प्रसिद्ध पुस्तक मे स्वामी करपात्री जी लिखते है —''वस्तुत नूह का तूफान वैवस्वत मनु की मछली वाली कथा का अनुवाद हे। नूह के पुत्र हेम की सतति जो मिस्र मे रहती है, अपना सबध राजा मनु से बतलाती है और अपने को सूर्यवशी कहती है तथा मनु वैवस्वत के मूल विवस्वान सूर्य को अपना इष्ट समझती हे। इन्हीं मिस्र वालो की ही सतति अमेरिका के मूल निवासी बतलाये जाते है। ''बाइबिल'' मे बतलायी हुई नूह की पीढियॉ काल्पनिक है। मनु को वैवस्वत कहा जाता है। विवस्वान सूय है। हजरत नूह के दो पुत्र हेम और सेम सूर्यवशी और चन्द्रवशी ही है। हेमगर्भ (हिरण्यगर्भ) सूर्यवश का ही बोधक है और सेम (सोम) चन्द्रवश का बोधक हे। सूयवशियो की पुत्री इला से ही सोमवश की उत्पत्ति हुई है।''

इस निष्कष से यह प्रमाणित हो जाता है कि वैवस्वत मनु की नाव हिमालय के उस अचल मे जाकर रुकी थी—जहॉ ऋग्वेदिक नदी सरस्वती बहती थी और जहॉ हिमालय की हिमाच्छादित ऊँची चोटी स्थित थी। ऐसे भौगोलिक स्थान की यदि खोज की जाय तो वह स्थान मेरू (कामेट पर्वत—25,000 फुट) के पाद प्रदेश वाले बद्रिकाश्रम के अति निकट वाला क्षेत्र है—जिसे पुराणो मे सरस्वती क्षेत्र भी कहा गया है।

"वायु पुराण" (50-58) के अनुसार भी, मेरू के दक्षिण और मानस के उत्तर यम वैवस्वत मनु अपने यमपुर मे रहते थे। इन आधारो पर "वैदिक-सपत्ति" के लेखक रघुनदन शर्मा पाचजन्य के राष्ट्रीय अक सम्वत् 2016 के पृष्ठ 429-430 पर लिखते है, आर्यो की उत्पति हिमालय के मानस स्थान पर हुई। आय हिमालय पर ही बहुत दिन तक रहे। सतति विस्तार के कारण, उन्होने हिमालय से उतरकर भूमि की खोज की। जिस मार्ग से वे आये उस मार्ग का नाम उन्होने हरिद्वार अर्थात् हिमालय का द्वार रखा। यहॉ वे कुछ दिन तो रहे पर अस्वास्थ्यकर जलवायु के कारण सब रोगी हो गये और फिर अपने पूर्व निवास हिमालय को चले गये, परन्तु कुछ समय के बाद वे यहॉ पुन आये। अबकी बार उन्होने यहॉ के जगलो को काटकर इस स्थान को बसने योग्य बनाया।

आगे के विवरणो से यह बात ओर भी स्पष्ट हो जाती हे। हिमालय के मानस क्षेत्र जिसको आर्यो का सप्तसैधव वाला प्रदेश कहते है—वही से आर्य भारतवर्ष की ही ओर नहीं आये बल्कि पूर्व तथा उत्तर-पश्चिम की ओर जाकर अपनी बस्तियॉ बसाने लगे। अपने उपनिवेश बनाने लगे।

"वैवस्वतमनु" ही आज के ऐसे युग सृष्टा है जिन्होने विश्व की सभ्यता और सस्कृति को नया जीवन दिया है। उन्होने आर्यो के सप्तसिन्धु वाले हिमालय प्रदेश मे रहकर सरस्वती के किनारे वाले अचल मे स्थित होकर मानव को सामाजिक प्राणी बनाने का कार्य भी किया। उनकी स्थापनाये ही "मनुस्मृति के रूप मे-आज भी मानव को जीवन जीने के उपदेश देती है "मनृस्मृति" मे सातो मनुओ के उपदेश हैं। अत मे सभी मनुओ के विचारो को वैवस्वतमनु ने स्मृति का रूप दिया।

वैवस्वतमनु के इस महान कार्य और आर्यो की उत्पति का समर्थन अब अनेक भारतीय एव विदेशी इतिहासकार करने लगे है। "मनु" ने सरस्वती के तट पर बद्रिकाश्रम के समीप सृष्टि रचना का कार्य शुरू किया। जल प्रलय के बाद का महत्त्वपूर्ण कार्य यही था। इसी कार्य ने आर्यजाति का विस्तार पूर्ण पश्चिम मे किया। आर्यावर्त मे जब आर्यो का विस्तार होगया तब आर्य अपने सदेश को लेकर बाहरी देशो मे पहुँचे।

सृष्टि रचना और भारतीय वाङ्मय

आर्यो के समस्त कार्यकलापो की जानकारी करने के लिये प्रलय के बाद की विशिष्ट झलकियों का ज्ञान होना आवश्यक है। भारतीय इतिहासकारो एव विशिष्ट ग्रथो के रचयिताओं का मानना है कि सृष्टि की रचना हिमालय मे हुई है।

"शतपथ ब्राह्मण" (1/8/6) के अनुसार, हिमालय मे ही वैवस्वत मनु रहते थे और

वहीं पर जलप्लावन हुआ था। "महाभारत" मे लिखा है कि हिमालय मे ही आय द्विजो की उत्पति हुई है –

हिमालयाभिधानोऽय ख्यातो लोकेषु पावन ।
अर्द्धयोजनविस्तार पचयोजनमायत ।।
परिमडल योर्मध्ये मेरूरूत्मपर्वत ।
तत सर्वास्समुत्पन्न वृतयो द्विजसतम ।।
प्रसूतिर्यत्र विप्राणा श्रूयते भरतर्षभ।

अथववेद के पृथ्वीसूक्त के निम्नलिखित मत्रो से भी यही ध्वनि निकलती ह कि –

असबाध वध्यतो मानवाना यस्या उद्धत प्रबत सम बहू।
नानावीर्या औषधीर्या बिभर्ति पृथिवी न प्रथता राध्यता न ।।2।।
गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्य ते पृथिवि स्योनमस्तु। ।।11।।

केदार म भी शिव जी ने इस केदारखड वनमान गढवाल मडल के सबसे प्राचीन होन की जो घोपणा की हे, उसमे ऐनिहासिका एव भूगर्भशास्त्रियो द्वारा प्रतिपादित ममस्त वास्तविक तथ्य निहित हे

पुरातनो यथाह वै तथा स्थानमिद किल।
यदा सृष्टिक्रियाया च मय वै ब्रह्ममूर्तिना।।
स्थितमत्रैव सतत परब्रह्मजिगीषया।
तदादिकमिद स्थान देवानामपि दुर्लभम्।।

अथात् जेसे मै प्राचीन हूँ इसी प्रकार यह केदार क्षेत्र (सप्तसिन्धुवाला क्षेत्र) भी प्राचीन है। जब मैं ब्रह्मामूर्ति को धारण कर सृष्टि रचना मे प्रवर्त हुआ। तब मैंने इसी स्थान में सर्वप्रथम सृष्टि रचना की। उसी दिन से यह स्थान विद्यमान हे। इसकी प्राप्ति देवताओ को भी दुलभ है।

मध्य हिमालय को ही आर्यो का आदि देश स्वीकार करने सबधी पार्जिटर महोदय के निष्कर्ष महत्त्वपूर्ण है। उनके अनुसार भारतीय अनुश्रुति मे वर्णित ऐल ही आर्य थे। ऐलो के मूलपुरुष पुरुवस् ऐल को पुरागाथाएँ मध्य हिमालय मूल से जोडती है। यही प्रदेश भारतीयो के लिए सदेव पवित्रतम रहा हे, पश्मिोत्तर क्षेत्र और पजाब कभी भी भारतीयों का पावन क्षेत्र नहीं रहा है।

पार्जिटर ने ऐलवशीय आर्यो का जन्मस्थान मध्य हिमालय ही माना हे और आर्यो का पश्चिमी एशिया से भारत मे आने के सिद्धात को उन्होने पूर्णत अमान्य भी कर दिया था।

मानव की उत्पत्ति का मूल स्थान भारत

विश्व के पुरातत्त्ववेत्ता अब यह मानने लगे है कि मानव की उत्पत्ति भारत में हुई है। पश्चिमी देशो के इतिहासकार भी इस तथ्य का स्वीकार करने मे गोरव का अनुभव करने

लगे है कि जल प्रलय के बाद मानव से लेकर पुष्प लताओ तक का जन्म भारत मे हुआ है, और यह भी मानने लगे है कि भारत ही विश्व मानव एव सभी प्रकार के जीव-जन्तु तक वनस्पतियो का जन्मदाता-आदि् देश है।

इस सबध मे कुछ महत्त्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करना आवश्यक है ताकि इस विषय मे पश्चिमी देशो के इतिहासकारो ने जो निष्कर्ष निकाले है—उनकी जानकारी हो जाय।

सर वाल्टर रेले, 'हिस्ट्री ऑफ दि वर्ल्ड' मे लिखते हैं कि जल प्रलय के अनन्तर भारतवर्ष मे ही मनुष्य ओर वृक्ष-लताओ की उत्पत्ति हुई, क्योकि पुरातत्त्वविदो के कथनानुसार मानवो से पूर्व वनस्पति की उत्पत्ति निश्चिन है और हल्के तापक्रम वाले देश मे ही उसकी सवप्रथम सृष्टि सभव है और ऐसा देश भारत ही है। मेडलीकट और व्लम्फर्ड ने "मेन्युअल ऑफ् ज्योलोजी ऑफ् इडिया" मे लिखा है कि भारत-भूमि मे ही प्राचीन काल मे समशीतोष्ण तापक्रम के चिह्न मिलते है। अत यहाँ सर्वप्रथम जीवन शक्ति के आरम्भ होने की पुष्टि होती है।

नृ-वश शास्त्रियो का निणय भी भारत की ओर ही दिखाई देता है। कुछ अन्वेषणो के बाद यह स्थिति सामने आइ हे।

अधिकाश नृ-वश शास्त्रियो के अन्वेषणो के आधार पर यूरोप के वर्तमान निवासी स्लाव, केल्ट, सेक्सन आदि सस्कृत के सजातीय भाषा-भाषी लोग एशिया के तूरानी देश से सबन्धित "को मेग्नार्ड"(आयत-कपाल वाले मनुष्य) की सतान है। आज से लगभग 25,000 वर्ष पूर्व जलप्लावन के अत मे आर्यो द्वारा पराजित असुरोपासक आर्यो का दल जो पश्चिमोत्तर एशिया की आर गया, उसने बर्बर तूरानियो से, सास्कृतिक सबधो द्वारा, असुर राज्य की स्थापना के बाद, आधुनिक यूरोपियन आर्यो को जन्म दिया। यह मत अधिकाश ग्राह्य युक्तिसगत और अधिक विद्वानो द्वारा मान्य है। अमेरिकन भूगर्भशास्त्री डॉ० डॉन के कथनानुसार दक्षिण-पश्चिम एशिया मे कहीं सर्वप्रथम मानव-जीवन का आविर्भाव हुआ है। विद्वानो का मत है कि स्तनधारी प्राणी एशिया से ही यूरोप आया है। आदिकाल मे यूरोप की जलवायु मानव, उत्पत्ति के सर्वथा अनुपयुक्त थी और वह एशिया का भाग बृहद् भारत का आर्यावर्त्त था। आर्यावर्त्त का सरस्वती, अलकनदा और मन्दाकिनी वाला भूभाग ही मानव उत्पति का मूल स्थान था। मानव आदि सृष्टि के सबध मे जग विख्यात इतिहासकार टॉड ने अपनी पुस्तक मे लिखा है कि आर्यावर्त्त के अतिरिक्त अन्य किसी देश मे सृष्टि के आरम्भ का अनुमान नहीं किया जासकता। आदि सृष्टि आर्यावर्त्त मे हुई इसमे सन्देह नहीं।

अमेरिकी विद्वान एव भूगर्भशास्त्री भी यह मानने लगे है कि मानव का आदि जन्म स्थान एशिया ही है—उसका स्पष्ट सकेत भी भारत की ओर ही हे

अमेरिकन भूगभशास्त्री डॉ० डान "मैन्युअल ऑफ् ज्योलोजी" (पृ० 585) मे दक्षिण-पश्चिम एशिया मे ही सर्वप्रथम मानव-जीवन का अविर्भाव हुआ मानते हे। पश्चिमी देशो के अनेक इतिहासकार यह भी मानने लगे है कि पृथ्वी पर एशिया या जम्बूद्वीप सबसे प्राचीन महाद्वीप है, जिस पर जीवन की सृष्टि का आरम्भ हुआ है। अधिकतर विद्वानो का

मत है कि मनुष्य सबसे पहले एशिया मे ही उत्पन्न हुआ हे।"

दिल्ली मे (अक्टूबर 1976 में) "हिमालय भू विज्ञान" पर एक अतराष्ट्रीय सम्मेलन हुआ था। जिसमे विश्व के अनेक देशो के प्रसिद्ध भू वैज्ञानिको ने भाग लिया था। उस सम्मेलन मे भी यही निणय हुआ था कि मानव का वास्तविक पूर्वज भारत भूखड मे ही पेदा हुआ था। इस सम्मेलन की सारगर्भित पूरी रिपोर्ट दिल्ली से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक "दिनमान" के 23 अक्टूबर 1976 के अक मे प्रकाशिन हुइ थी। इस रिपोट मे विश्व क जाने-माने विद्वानो के भाषणो को भी उद्धृत किया गया था।

आर्यो के आयावत्त के अनर्गत जो हिमालय का मध्यहिमालय वाला क्षेत्र हे—वही आर्यो का आदि निवास था—यह मान्यता अब पुरातत्त्ववत्ताओ, भूगभ विज्ञानियो एव अधिकाश इतिहासकारो ने स्वीकार करली है।

यह भी अब पूणत स्वीकार किया जाने लगा है कि विश्व म आयजाति का ही वचस्व था। यहाँ तक यह बात भी स्वीकारी जाने लगी है कि आदि मानव का जन्म भारत मे ही हुआ है। आयावर्त्त ही आर्यो का मूल स्थान है। पश्चिमी देशो के इतिहासकार अब अपना मूल स्थान आयावत्त को ही स्वीकार करने लगे है।

आर्यावत्त के आर्य रक्त से यूरोपियन जातियॉ कितनी प्रभावित हे इस तथ्य के समर्थन मे एक फ्रॉसीसी विद्वान एम० लुई जैकोलियट "बाइबिल इन इडिया" मे लिखते है, "भारत विश्व का आदि देश है, वह सबकी जननी हे। भारत आपको मनुष्य जाति की जननी ओर हमारी समस्त परम्पराओ का जन्मस्थान विदित होगा। उस प्राचीन देश के विषय मे, जो गोरे लोगो का जन्मस्थान है, हमको वास्तविक तथ्यो का परिचय मिलने लग गया। इस सावभौमिक जननी ने अपनी सतति को पश्चिम के अंतिम छोर तक भेजकर हमारी उत्पत्ति से सबन्धित अकाट्य प्रमाणो द्वारा हम लोगो को अपनी भाषा, अपना नीतिशास्त्र, आचरण साहित्य और धम प्रदान किया है। अपनी उष्ण जन्म-भूमि से दूर फारस, अरब, मिस्र की यात्रा करत हुए वे लोग भले ही अपना मूल स्थान भूल गये हों, हिमाच्छादित प्रदेशो के हिम से उनका शरीर-चर्म सफेद या भूरा ही क्यो न हो गया हो, परन्तु जैसे वास्तविक तथ्यो को प्रमाणित करने के लिये साक्षी की आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार भाषा-विज्ञान मानता है कि भाषा शब्दो के प्राचीन रूपो का उत्पति स्थान पूर्व ही है। हम भारत के शब्द-शास्त्रियो के समक्ष उनके परिश्रम के लिये आभारी है, क्योंकि हमारे वर्तमान भाषा-शब्दो के मूल और उनकी धातुओ का पता वहॉ मिलता है। मिस्री, हिब्रू, ग्रीक और रोमन विधियो पर मनु का प्रभाव स्पष्ट है।

फ्रासीसी इतिहासकार एव विद्वान एम० लुई जैकीलियट ने "बाइबिल इन इंडिया" मे जो सत्य उगला है—उससे आगे और क्या लिखना शेष रह गया है। उन्होने विश्वसत्य को स्वीकार करते हुये आर्यजाति के आदि निवास भारत के आर्यावर्त्त को आदि मानव की उत्पति का मूल स्थान मानकर विश्व के ऐसे इतिहासकारों को सटीक उत्तर दे दिया है—जो अब तक पश्चिमी एशिया को आर्यजाति का मूलस्थान मनवाने पर निरतर अपनी हठधर्मिता दिखाते जा रहे थे।

सृष्टि रचना और भारतीय दृष्टिकोण आदि सृष्टि के सबध मे भारतीय ऋषियो का मानना है कि सृष्टि के प्रारभ मे केवल एक विशाल समुद्र था। न पृथ्वी थी, न आकाश था और न ही नक्षत्र थे। सर्वत्र शात-निश्चल एकार्णव था। न जलचर थे, न नभचर थे और न ही-पृथ्वी मे मानव अथवा वनस्पतियो का कोई अस्तित्त्व था। पर्याप्त समय बीत जाने के बाद ब्रह्मा ने सृष्टि रचना करने का निश्चय किया। तब उन्होने पृथ्वी, नक्षत्र, वनस्पति, मनुष्य, देव-दानव राक्षस और असख्य प्राणियो तथा सृष्टि के अनेक जीव-जन्तुओ और झाड-झखाड से लेकर विशाल वृक्षो तक की सृष्टि कर डाली।

पौराणिक कथा

इस सबध मे पुराणो मे अनेक रोचक कथाये मिलती है। पुराणो का भी अपना विशिष्ट आधार है। पुराणो के अलावा अन्य ग्रथो मे भी सृष्टि के सबध मे विभिन्न विचार व्यक्त किये गये है।

बाल्मीकि रामायण के उत्तराखड क्षेपक 3/41/53 मे एक रोचक कथा है

सृष्टि के आरभ मे आकाश, पवत, नक्षत्र, लक्ष्मी सब विष्णु के उदरस्थ थे। विष्णु वर्षो तक समुद्र के अतर्गत सोये रहे, अत सब कुछ समुद्र के भीतर था। सोये हुए भगवान विष्णु के पेट मे ब्रह्मा ने प्रवेश किया। विष्णु की नाभि से एक स्वर्णकमल उत्पन्न हुआ, जिस पर स्वेच्छा से ब्रह्मा प्रकट हुए। उन्होने पृथ्वी, वायु, पर्वत, वृक्ष, मनुष्य, सर्प आदि सब जीवधारियो की सृष्टि की। उन्हीं के कान के मैल से "मधु" और "कैटभ" नामक दो दैत्य उत्पन्न हुए। वे ब्रह्मा को खाने के लिए दौडे। ब्रह्मा के शोर मचाने पर विष्णु ने वहॉ जाकर उन दोनो को मार डाला। उनकी चर्बी से सपूर्ण पृथ्वी तर हो गयी। तब विष्णु ने पृथ्वी का, शोधन किया। पृथ्वी मे चर्बी की दुर्गन्ध आने लगी थी, इसलिए वह मेदिनी भी कहलायी—तदुपरात जीवो की सृष्टि हुई।

इसी तरह की एक रोचक कथा "ब्रह्म पुराण (1/37-56/181) मे भी मिलती है। उसमे लिखा है कि सर्वप्रथम परमेश्वर ने जल की सृष्टि की। उसमे बीज डाला। तब जल मे सोये हुये विष्णु की नाभि से एक अडा उत्पन्न हुआ। उससे ब्रह्मा की उत्पति हुई। परमेश्वर ने उस अडे के दो भाग कर दिये। ऊपर के भाग से स्वर्ग और नीचे के भाग से जल मे डूबी हुई पृथ्वी का निर्माण हुआ। मध्य वाले भाग से आकाश का निर्माण हुआ। तब क्रोध मे आकर परमेश्वर ने सृष्टि निर्माण करने की इच्छा से रूद्र तथा सात (सप्त ऋषियों) मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु और वशिष्ठ का निर्माण किया। इसी प्रकार सनतकुमार आदि ऋषियो की मानसी सृष्टि की देवताओं की उत्पति के बाद ब्रह्मा के अग से अन्य जीव-जन्तुओ की उत्पति हुई। ब्रह्मा ने अपनी देह के एक भाग से पुरुष और दूसरे भाग से नारी को उत्पन्न किया। यह समस्त रचना "अयोनिज थी" तब विष्णु ने विराट् की रचना कर आदि "पुरुष" को उत्पन्न किया। वह "मनु" कहलाया। उसी आदि "मनु" के द्वारा समस्त सृष्टि का वर्तमान स्वरूप बना।

विष्णु पुराण (1/4-7) मे भी सृष्टि के उत्पन्न होने की एक विशिष्ट कथा है

"जल के तल म डूबी हुई पृथ्वी ने ब्रह्मा से निवेदन किया कि हे ब्रह्मा जी मूलरूप मे रचना करने वाले तो-आप ही हे-और आप ही (ब्रह्ममाली) सृष्टि रचना करने हेतु समय-समय पर ब्रह्मा, विष्णु ओर महेश का रूप धारण करते हे। अत आप मेरा (पृथ्वी का) उद्धार करे।"

पृथ्वी की आत्त पुकार सुनकर ब्रह्मा ने वाराह का रूप धारण करके अपनी दाडो पर पृथ्वी को उठाकर जल के ऊपर स्थापित कर दिया। तदुपरात ब्रह्मा ने क्रमश नौ सर्गो की रचना की। प्रथम सग महतत्व हे। द्वितीय सग तन्मात्राआ का (भूतसर्ग), तृतीया वैकारिक (ऐन्द्रियिक), चतुथ मुख्य सग (पर्वत, वृक्ष इत्यादि), पचम सर्ग तियक स्रोत (कीत-पतग आदि) तथा छठा सग उध्व स्रोताओ का कहलाया तथा आठवा अनुग्रह सर्ग (सात्विक तथा तामसिक) हुआ। इनमे से प्रथम तीन—प्राकृत सर्ग तथा अतिम पाच वेकृन (विकारी) सर्ग है। नवा कौमार सग प्राकृत ओर वेकृत दोनो से युक्त है। प्रजापति से सृष्टि न बढने पर ब्रह्मा ने नो मानसपुत्रो का जन्म दिया, फिर ना कन्याओ को उत्पन्न करके मानस पुत्रियो को पत्नियो के रूप मे सोप दिया। ये सभी विरक्त तथा उदासीन थे, अत सृष्टि का वर्द्धन नहीं हा पारहा था तब ब्रह्मा क क्रोध की भयकर ज्वाला ने अर्धनारीश्वर (रुद्र) का रूप धारण किया। शरीर का विभाग करने का आदेश देकर वे अतर्धान हो गये। रुद्र (शिव) ने पुरुष रूप को ग्यारह रूपो मे विभक्त किया तथा नारी को भी गारी, काली, सौम्य, क्रूर आदि अनेक रूपो मे विभक्त कर दिया। ब्रह्मा ने स्वय ही उत्पन्न किए अपने एक रूप को स्वयभुव मनु बनाया। ब्रह्मा ने सतरूपा को भी स्वयभुव मनु के साथ उत्पन्न किया था। मनु ने शतरूपा से विवाह कर सृष्टि की रचना कर डाली।

"देवी भागवत (3/1-9) मे भी सृष्टि की उत्पत्ति कथा रोचक ढग से की गई है

"जलप्रलय के उपरात एकाणव मे खिले कमल से ब्रह्मा की उत्पति हुई। ब्रह्मा यह सोच रहे थे कि सृष्टि का मूल रचयिता कौन हे। तभी उन्हे एक शब्द सुनाइ दिया-तप करो। ब्रह्मा सहस्र वर्षो तक तप करते रहे। परन्तु उन्हे कोई ज्ञान प्राप्त न हो सका। इसी बीच मधु-कैटभ नामक असुर (राक्षस) ब्रह्मा को मारने के लिये आगये। उनके डर से ब्रह्मा कमल नाल के नीचे जाकर छिप गये। वहाँ विष्णु शेष—शय्या पर सो रहे थे। ब्रह्मा के आर्त्तनाद को सुनकर विष्णु की निद्रा टूट गई। विष्णु ने दोनो (मधु-कैटभ) राक्षसो को मार डाला। तब तक रुद्र (शिव) भी वहाँ पहुँच गये थे।

उसी समय आदि शक्ति-विश्वेश्वरी देवी ने प्रकट होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश (रुद्र) को सृष्टि रचना का आदेश दे दिया। इन त्रिदेवो ने अपनी असमर्थना व्यक्त कर दी। तब आदिशक्ति-विश्वेश्वरी देवी ने एक विमान भेजकर—उन तीनो को उसमे बिठाकर सभी लोको का पर्यटन करवाया। इन तीनो देवा को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि किसी लोक मे ब्रह्मा-स्वरूपी दूसरा ब्रह्मा बेठा है, किसी लोक मे विष्णु स्वरूपी दूसरा विष्णु बैठा है तो किसी लोक मे शिव जैसे दूसर स्वरूप वाला शिव बेठा है और सृष्टि रचना का काम कर रहा है। विश्वेश्वरी देवी के दर्शन होते ही वे तीनो देव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) नारी रूप मे परिणत होकर देवी के चरणो मे नतमस्तक हो गये।

कालातर में विश्वेश्वरी देवी ने इन तीनो देवताओ को बताया कि सपूर्ण सृष्टि का कार्य "शक्ति" के अधीन है। जन्म से मृत्यु काल तक "शक्ति" का ही वर्चस्व रहता है। क्योंकि देवताओ से लेकर समस्त जीव-जन्तु एव वनस्पतियो की जननी तो "शक्ति ही है। ससार रूपी पृथ्वी की जननी शक्ति है। सारी स्थिति को समझने के बाद विश्वेश्वरी देवी ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश को सृष्टि रचना करने का आदेश दिया।

ब्रह्मा को सरस्वती (नारी रूपा-शक्ति), विष्णु को महालक्ष्मी(नारी रूपा शक्ति) और महेश (शिव) को महाकाली (नारी रूपा-शक्ति) प्रदान करते हुये—विश्वेश्वरी देवी ने उन तीनो देवो को जो अब तक नारी रूप मे विचरण कर रहे थे पुन पुरुष बनाकर तीनो नारी शक्तियो के साथ सृष्टि रचना करने हेतु विदा कर दिया। जाते-जाते आदि शक्ति-विश्वेश्वरी देवी ने कहा कि "वे" (आदि शक्ति) स्वय निर्गुण रहती है। परन्तु आप सब मेरे ही अश है—अत मे मुझमे ही आप सबकी शक्ति समाहित होगी। मुझे जब भी स्मरण करोगे तत्काल दर्शन दूँगी। परन्तु आप सृष्टि रचना के काम को करते रहे। त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) और त्रिशक्ति (सरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली) को सृष्टिरचना का आदेश देकर-आदिशक्ति अतधान हो गई। तब से इन्हीं शक्तियो के माध्यम से जीव-जन्तु ओर वनस्पतियो को जन्म देकर पृथ्वी को मानव सस्कृति प्रदान की।

ऐसी कथाओ के बाद भी सृष्टि उत्पत्ति के सबध मे भारतीय वाङ्मय मे एकसूत्रता नहीं आपायी। पुराणो मे अनेक कथाएँ है। ब्रह्मा, शैव, वैष्णव एव शाक्त दृष्टि वाले पुराणो ने अपने-अपने सिद्धातो को आधार मानकर सृष्टि उत्पति के सबध मे भी अपनी धारणाए स्थापित करने का पूरा-पूरा प्रयास किया। परन्तु, सृष्टिकर्ता के सबध म एकमत बनने का कोई मार्ग नहीं बन पाया।

ब्रह्मा ही सृष्टिकर्त्ता है

त्रिदेव और त्रिशक्तियो के होते हुये भी-सभी पुराण इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि "आदि सृष्टि" का "आदि सृष्टा" "ब्रह्मा" ही है।

हम पहले वर्णन कर चुके है कि सृष्टि रचना हेतु ब्रह्मा ने अपने सात मानस पुत्रो की उत्पति कर दी थी। इन मानस पुत्रो को भी "शक्ति से सपन्न कर दिया था। मरीचि की शक्ति स्वरूपा पत्नी "सभूति" अत्रि की शक्ति स्वरूपा पत्नी अनुसूया, पुलह की शक्ति स्वरूपा पत्नी "क्षमा" पुलस्य की शक्तिस्वरूपा पत्नी प्रीति "क्रतु की शक्ति स्वरूपा पत्नी "सन्नति" अगिरा की शक्ति स्वरूपा पत्नी "लज्जा" और वशिष्ठ की शक्ति स्वरूपा पत्नी "अरुन्धती" थी। ये सात शक्तियॉ लोकमाताऍ भी कही जाती है। इन सातो ब्रह्मा के मानस पुत्रो का सप्तऋषि मडल माना जाता है। सप्तऋषि मडल आकाश मे उत्तर दिशा की ओर आज भी रात्रि के समय दिखाई देता है। इनमे सातो ऋषि अपनी शक्ति स्वरूपा पत्नियो के साथ निवास करते है।

ब्रह्मा के इन मानस पुत्रो से भी सृष्टि रचना का कार्य जब उपयुक्त ढग से नहीं हुआ तो सृष्टिकर्त्ता को चिता हुई—उन्होने "मानसी" सृष्टि करने का अपना विचार त्याग दिया

और "मैथुनी सृष्टि" उत्पन्न करने का निश्चय कर डाला। इस काम के लिये उन्होने दक्ष को उत्पन्न किया।

दक्ष प्रजापति से सृष्टि की वास्तविक उत्पत्ति

वैसे ब्रह्मा ने दक्ष और उनकी पत्नी को "अमैथुनी" सृष्टि से ही उत्पन्न किया। ब्रह्मा ने दक्ष को अपने दाये अगूठे से और उनकी पत्नी को बाये अगूठे से उत्पन्न किया। उन्हीं से वास्तविक रूप से सृष्टि की उत्पत्ति मानी जाती है।

ऋग्वेद (1/89/3, 3/27/10, 10/92/5) मे भी दक्ष के नाम का उल्लेख है। उन्हें ब्रह्मा की अमेथुनी सृष्टि कहा गया है। दक्ष की कन्याओ से देव, दानव, नाग और आदित्यो का प्रादुर्भाव हुआ। इससे पूर्व मानसी सृष्टि थी, जिसकी उत्पत्ति श्रवण और दर्शन से हुई (केदार० 76/40, 41)। दक्ष ने सर्वप्रथम सृष्टि उत्पन्न करने के निमित्त सहस्त्र सतान उत्पन्न किये (केदार० 8/2)। दक्ष कन्या अदिति से उत्पन्न आदित्य (सूर्य) से वैवस्वत मनु और मनु से इक्ष्वाकु (ऋ० 10/60/4) आदि पुत्रो और चन्द्रवश की वृद्धि करने वाली ऐला उत्पन्न हुई (केदार०11/10) थी।

इस प्रकार दक्ष पहले आय प्रजापति हुये। उन्हीं के द्वारा समस्त सृष्टि उत्पन्न हुई। इसीलिये वे समस्त सृष्टि के पितामह भी है। दक्ष की दस कन्याएँ धर्म को, तेरह कश्यप को और सताईस चन्द्रमा को ब्याही गयी थीं (आदि 75/7)। इनकी आ० कन्याएँ ब्रह्मर्षियो को भी ब्याही गयी थीं, जिनसे अनेक प्रकार के जीव-जन्तु तथा देवता-मनुष्य आदि उत्पन्न हुए। (शांति० 166/17)। दक्ष की अतिम जो कन्याएँ दस थीं वे मनु को ब्याही गयी थीं (शाति० 342/57)। इन्होने सरस्वती नदी के तट पर यज्ञ किया और यह वरदान दिया कि यहाँ मरने वालो को स्वर्ग मिलेगा (वन० 130/2)। गगाद्वार (कनखल-हरिद्वार) में इनके आवृहान करने पर सरस्वती वहाँ आयी और सुरेणु नाम से विख्यात हुई (शल्य० 38/39)। कनखल मे शिव द्वारा इनके यज्ञ का विध्वस हुआ (शांति० 283/32)।

दक्ष सर्वप्रथम आर्य नरेश थे और उनकी राजधानी हरिद्वार के निकट "कनखल" थी, जहाँ गगा तट पर दक्ष-प्रजापति का प्राचीन मंदिर स्थित है। वेद-पुराणों तथा वर्तमान भूगर्भशास्त्रियो के कथनानुसार भी इस क्षेत्र से सर्वप्रथम मनुष्य एव जीवधारियो की उत्पत्ति हुई। जब आदि सृष्टि मे अविद्यमान से विद्यमान उत्पन्न हुआ तो सर्वप्रथम दक्ष पुत्री अदिति से देवो (मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अश, भग, विस्वान और सूर्य की उत्पति हुई।

मरीचि पुत्र कश्यप की भूमिका

मरीचि ऋषि के पुत्र कश्यप अलकनदा क्षेत्र मे रहते थे। महाभारत मे उनके निवास (महा० उद्योग पर्व, 107/3/15) का वर्णन है। गधमादन पर्वत पर वे (महा० आदि पर्व 30/10) तप करते थे। महाभारत (महा० उद्योग पर्व 107/3/15) के अनुसार ही कश्यप के निवास स्थान की जानकारी महाऋषि गालव को हुई थी। कश्यप महान् विद्वान और बहुशास्त्रविद् थे।

आर्य नरेश दक्ष की तेरह कन्याओ से कश्यप का विवाह हुआ था। कश्यप की इन तेरह पत्नियो का नाम-अदिति, दिति, दनु, कालिका (आरिष्ठा) सुरसा, ताम्रा, सुरभि, विनता, इरा, कद्रू, क्रोधवशा, मुनि ओर अनला था। दक्ष की इन्हीं तेरह पुत्रियो से कश्यप की असख्य सताने उत्पन्न हुइ—जिनसे सृष्टि का प्रत्येक अग पूर्ण हो गया।

अदिति ने तेतीस आदित्य (देवता) पैदा किये। अदिति ने इन तेतीस देवताओ मे द्वादश सूर्य, अष्टवसू, एकादश रुद्र ओर दो अश्विनी कुमारो को जन्म दिया। दिति ने दैत्यो को जन्म दिया। जिनमे हिरण्याक्ष ओर हिरण्यकशिपु जैसे प्रख्यात दैत्य भी हुये। दनु ने—अयोमुख, शम्बर, कपिल, वामन स्वर्भानु ब्रजनाम, बारभ और शैल जैसे शक्तिशाली दानवो को जन्म दिया। स्वर्भानु की प्रभा पुलोमा, शुसची, लोपोमा और कालकेया बेटियॉ हुई। हिरण्यकशिपु से इनका विवाह हुआ था। इनसे हिरण्यकशिपु की ग्यारह हजार सतानो की उत्पत्ति हुई थी। विनता से गरुड ओर अरुण नाम के दो पुत्र पैदा हुये। अरुण का पुत्र जटायु हुआ। इरा नाम की पत्नी से कश्यप ने वनस्पतियो एव अनेक उदभिजो को पैदा किया। इन क अलावा इरा ने लता, अलता और विरूद्धा नामक कन्याओ को भी जन्म दिया।

इन तीनो कन्याओ ने भी सृष्टि रचना मे पर्याप्त योगदान दिया। लता ने पुष्पवाली लताओ एव वनस्पतियो को, अलता ने फलदायी वृक्षो को और वीरुधा ने झाडीदार एव कॉटेदार वनस्पतियो को जन्म दिया। कद्रू के नाग पैदा हुये। सुरसा ने असख्य जीव-जन्तुओ को जन्म दिया। सुरभि के रोहिणी ओर गधर्वी उत्पन्न हुये। फिर रोहिणी ने गौओ को और गधर्वी ने घोडो को जन्म दिया। क्रोधवशा से कश्यप ने मृगी जिससे मृग पैदा हुए, मृगमदा जिमसे ऋक्ष पेदा हुये, भद्रमदा जिससे इरावती और फिर इरावती से ऐरावत हाथी पैदा हुआ, शार्द्धली व्याघ्रो को पैदा करने वाली और श्वेता दिग्गजो को उत्पन्न करने वाली जैसी कन्याओ को उत्पन्न किया। बाद मे जिनमे असख्य जीव पैदा हुये। कालिका से कश्यप के कालक और नरक नामक दो पुत्र हुये जो सृष्टि को नियत्रित करने वाले हुये। ताम्रा नामक दक्ष पुत्री से कश्यप की पॉच पुत्रियॉ कौची, भासी, श्येनी, धृतराष्ट्री और शुकी- उत्पन्न हुई। उन्होने भी सृष्टि रचना मे विशेष योगदान दिया। कौची ने उलूको को, भासी ने भास नामक जाति के पक्षियो को श्येन ने श्येन तथा गृध श्रेणी के अनेक पक्षियो को, धृतराष्ट्री ने हस, कलहस और चक्रवाको को और शुकी ने नता नामक कन्या को जन्म दिया। इसी तरह कश्यप की शेष पत्नियो ने जड-चेतन मे सृष्टि के सभी शेष रहे जीव-जन्तुओ एव वनस्पतियो को जन्म दिया-जिससे यह सृष्टि भरपूर हो गई और आज समस्त सृष्टि मे जो कुछ भी दिखाई देता हे—वह दक्ष की कन्याओ और कश्यप ऋषि का ही चमत्कार है।

स्वयभु मनु ने सृष्टि रचना के साथ सामाजिक जीवन के लिये नियम-उपनियम बनाये। मनुस्मृति मे सबका उल्लेख है।

ब्रह्मा का ब्रह्मवर्त्त

सृष्टि की रचना जिस क्षेत्र मे ब्रह्मा ने की वह ब्रह्मवर्त्त प्रदेश कनखल से लेकर मध्यहिमालय वाले क्षेत्र से मानसरोवर तक फैला हुआ था। ब्रह्मवर्त्त वह देश था जिसमे

सरस्वती नदी के साथ सप्तसिन्धु की समस्त नदियाॅ प्रवाहित होती थीं। वही देश आर्य जाति का पूज्य आदि् देश है—वहीं ब्रह्म द्वारा आदि् सृष्टि का निर्माण किया गया।

सप्तम जलप्लावन तक आर्यावर्त्त के अस्तित्त्व मे आने से पूर्व आर्य इसी सप्त सिन्धु एव ब्रह्मवर्त्त मे रहते थे। जलप्लावन के अवतरण पर विशेष भौतिक विप्लव से तराई भाभर के समुद्र सूख जाने के कारण, जब कुरुक्षेत्र, पाचाल आदि देश पृथ्वी-गर्भ से ऊपर निकल आये, तो प्रलय-जल के उतरने पर अधिकाश आर्य परिवार ऋषि अगस्त्य के नेतृत्व मे सप्तसिन्धु से आगे विध्याचल तक बढते चले गये। तब यह समस्त देश आर्यावर्त्त कहलाया।

आर्या अत्रवर्तरते पुन पुनरूद भवन्ती आर्यावत्त, (मनु० कुल्लूक की टीका 2 22)।

और इससे भी पहले आर्यो के कई दल पश्चिमोत्तर क्षेत्रो मे जाकर उपनिवेश स्थापित कर चुके थे। इस तरह आर्यावर्त्त का क्षेत्र निरतर बढता गया। जैसे-जैसे आर्य सप्त सिन्धु प्रदेश से इधर-उधर जाते रहे। वहीं अपनी सस्कृति का फैलाव करते गये। वहीं आर्यावर्त्त का विस्तार होता गया।

आर्यावर्त्त मे आर्यो का वर्चस्व

प्राचीन ग्रथो मे देव, दानव, दैत्य, राक्षस, नाग, किन्नर, गधव और यक्षो का नाम प्रमुखता से आया है। हम उल्लेख कर चुके है कि अदिति के आदित्य, दिति के दैत्य, दनु के दानव, कद्रू के नाम ओर बनिता के गरुड पुत्र हुये। इनसे ही अलग-अलग जातियाॅ बनीं। जबकि ये सभी एक ही पिता की सताने है। ये नाम मूलत कश्यप के पुत्रो के नाम है। परन्तु उनकी पहचान उनकी माताओ के नाम पर हुई ये सभी देवताओ (आदित्यों) के सौतले भाई थे। ऋग्वेद (2/11/18) मे दानव वृत्रासुर दन-पुत्र और इन्द्रादि आदित्यो (देवताओं) को सजातीय भाई बताया गया है।

"सुर" असुर शब्दो पर भी प्राचीन ग्रथो मे कोई भेद-भाव नहीं दिखाई देता। सभी सौतो के पुत्रो को सुर तथा असुर कहा जाता था। वास्तव मे वे सभी आर्य थे।

ऋग्वेद मे भी "असुर शब्द आर्यो के प्रधान देवताओ इन्द्र, वरुण, अग्नि, रुद्र इत्यादि देवताओ के लिए प्रयुक्त हुआ है। (ऋ० 1/174/10) अग्निदेव को अग्ने असुर (ऋ०4/2/45, 7/2/3), सूर्य को असुरो का नेता "असुर सनीथा" (ऋ० 1/35/10) इन्द्र को "असुरो वृहच्छया" (ऋ० 1/54/3) और वरुण देवता को शुन शेष ने वरुण असुर प्रचेता राजन्"(00 1/24/14) कहा है। रुद्र को भी (ऋग्वेद 5/42/11) मे असुर कहकर सबोधित किया गया है। "असुर" का शब्दार्थ भी देवता, अनष्हिर्ता और प्राणदाता के रूप मे प्रयुक्त किया गया है (ऋ० 1/24/14)।

पारसियो के धर्मग्रथ "जेन्दावस्ता" मे भी असुर ठीक इन्हीं वैदिक अर्थो मे व्यवहृत हुआ है। इस प्रकार "देव" शब्दो का प्रयोग भी वेदो मे सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु आदि दैवी शक्तियो के अर्थ मे किया गया है। उसका अर्थ भी प्रकाशयुक्त दिव्य वस्तु है। वृत्रासुर भी देव-सज्ञा से सम्बोधित है। ऋग्वेद मे 105 बार "असुर शब्द प्रयुक्त हुआ हे और उसमे

90 बार उसका प्रयोग शोभन अर्थो मे ओर शेष स्थानो पर "असुर" देवताओ के शत्रुओ के रूप मे दिखाये गये है।

"सुर" और" असुरो का द्वद्व

अदिति शालीन महिला थी। उसके पुत्र शालीन और श्रेष्ठ गुणो से सपन्न थे। वे चतुर ओर सभी शास्त्रो के ज्ञाता भी थे। शास्त्रो के साथ शस्त्र चलाने मे भी पारगत थे। जबकि दिति, दनु, कद्रू और वनिता आदि कश्यप की अन्य पत्नियॉ स्वभाव से क्रोधी झगडालु और पारस्परिक द्वेष रखने वाली थी। उनके पुत्र भी उसी स्वभाव के हुये। वे आपस मे निरतर लडते-झगडते रहते थे। सौतिया डाह के कारण इन सौतो के बेटो मे पारस्परिक द्वेष होता रहता था। आपसी रजिश के कारण भी इनमे द्वद्व होता रहता था।

अदिति के आदित्य अथात् देवता अपने को श्रेष्ठ समझते थ। श्रेष्ठ गुणो के कारण वे अपने-आपको अन्य सौतेली माताओ के पुत्रो से बडा समझते थे। आदित्य अपने आपको "सुर" ओर अपने सोतेले अशिष्ट भाइयो को "असुर" कहकर चिढाते तथा अपमानित करते थे।

यद्यपि वैदिक काल से ही सुर ओर असुरो, दोनो सोतेले भाइयो मे आजकल की ही भाति सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक अधिकार लिप्सा के कारण परस्पर गृहयुद्ध आरम्भ हो गये थे, फिर पारस्परिक मनोमालिन्य एव उत्तरोत्तर उग्र विरोधो के कारण एक ने दूसरे का बहिष्कार कर, एक दूसरे को देव-दानव, आर्य अनार्य, छोटा बडा, सभ्य असभ्य घोषित कर अपनी-अपनी स्वतत्र सत्ता स्थापित करली थी, परन्तु उस समय भी दोनो की मौलिक एकता सर्वमान्य थी। प्रह्लाद का पिता राक्षस था ओर रावण तपस्वी ब्राह्मण विश्रवा मुनि का पुत्र था। उसका भाई कुबेर और खर इन्द्र के "नदन वन" मे निस्सकोच निवास करते थे ओर श्रेष्ठ आर्यो की श्रेणी मे गिने जाते थे। परम धार्मिक आर्य महिला कस की बहिन देवकी से श्रीकृष्ण उत्पन्न हुये है। पौराणिक साहित्यकारो ने हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु ओर रावण-कुम्भकण आदि राक्षसो को शाप-भ्रष्ट आर्य तपस्वी कहा है।

आर्य शब्द की महत्ता

आर्य-साहित्य मे केवल देवो को ही नहीं, असुरो को भी "आर्य" कहकर सम्बोधित किया गया है। "रामायण" (6/16/6) मे मदोदरी असुरराज रावण को "आयपुत्र कहती है। वानरराज को उसकी पत्नी आर्यपुत्र ओर आय कहती ह (राम्ा० 4/15/8)।

जलप्लावन से त्राण के पश्चात् मनु द्वारा जिस यज्ञ का आयोजन किया गया था, उसमे किलात् और आकुली नामक असुर ब्राह्मणो को भी आमत्रित किया गया था (किलातकुली असुर ब्राह्मण इति आहुत)। इसीलिए मनु असुरो को सजातीय अपना वशज कहते हे (ऋ० 21/29/10)।

वेद ओर पुराणो मे सुर ओर असुरो के बीच पारस्परिक विवाह-सबधो का वणन भी आता हे। स्वय देवराज इद्र की पत्नी शची पुलोमा देत्यराज वश्वानर की पुत्री थी। शची

पुलोमा ऋग्वेद (10/159) की मत्र द्रष्टाओ मे से एक मत्र द्रष्टा दैत्यगुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी ओर असुरराज वृषपवा की पुत्री शर्मिष्ठा आय नरेश ययाति को ब्याही गई थीं। ऋषि भृगु की पत्नी च्यवन की माता भी देत्यपुत्री थी। रावण के पिता विश्रवा के साथ सुमालनी राक्षस की पुत्री केकसी ओर भारद्वाज की पुत्री ब्याही थीं। भीमसेन ने वनवासकाल मे अपनी माता और भाइयो की सहमति से असुर-महिला हिडिम्बा से विवाह किया था।

इस प्रकार वेवाहिक सबधो द्वारा ही देव ओर दानवो की सामाजिक एव धार्मिक समानता प्रतिपादित नही होती, वरन् वेद ओर पुराणो मे देवताओ के साथ अनेक असुरो को भी वेदो ओर शास्त्रो का विज्ञाता एव चरित्रवान् बताया गया हे। उन्हे भी "सर्वे वेदविद शूरा सर्वे सुचरितव्रत" (वनपर्व) कहा गया हे। "रामायण" (3/11/56) मे लिखा हे कि वे सस्कृत मे बातचीत करते थे। असुरो ओर राक्षसा की वशावली भी इतनी सभ्य और सुसस्कृत रूप मे मिलती है कि उससे यह कही भी प्रकट नहीं होता कि उनकी उत्पति आयवश से बाहर किसी असस्कृत एव असभ्य जाति से है। बल्कि ये सार तथ्य उन्हे विशिष्ट आर्य जाति के श्रेष्ठ मानवो के रूप मे सम्मान प्रदान करते हे।

परन्तु, रात दिन के झगडो ने भाइ-भाइयो मे अत्यत कटुता पेदा कर दी। तभी आयावर्त्त को अनेक भागो (टुकडों) मे बॉटा गया। सोतो की सख्यानुसार आर्यो के आदि देश सप्त सिन्धु को पहले बॉटा गया। वैदिक साहित्य एव परम्परा के अनुसार "कनखल" से ऊप और "कैलाश मानसरोवर" के सीमा क्षेत्र वाले भू-भाग को अदिति के आदित्यो, दिति व देत्यो, दनु के दानवो ओर कद्रू के नामो के मध्य आवटित किया गया। ऐसा प्रतीत होत है कि अलकनदा का पश्चिमोत्तर गिरिप्रदेश, मदाकिनी और यमुनोत्तरी-गगोत्तरी का क्षे दिति के देत्यो ओर कद्रू के नागो को मिला। वतमान गढवाल का पूर्वी क्षेत्र बधाण, दानपु तथा वतमान कुमाऊँ का अधिकाश भाग दनु के दानवो को दिया गया। कैलाश-मानसरोव से नीचे अलकनदा के बदरिकाश्रम वाला भाग अदिति के ज्येष्ठ पुत्र इद्र को दिया गया कनखल से ऊपर गधमादन पर्वत की सीमा वाले क्षेत्र तक का गिरि प्रदेश भी आदित्य को ही दिया गया। तथ्यो के आधार पर ऐसी ही सीमा रेखा का आभास होता है।

अपने को "सुर" कहने वाले और अन्य को "असुर" कहने वाले आदित्यो क अधिक भाग मिला। सोतिया बॉट हो जाने पर भी असतोष बढता गया। इस पर इद्र अपना स्वर्गराज्य स्थापित कर दिया, जिससे सभी सौतले भाइयो मे कटुता बढ गई।

भूमि के विभाजन मे उसका विस्तार अल्प हो या अधिक, वह किसी परिवार स सम्बन्धित हो या किसी राज्य से, यदि उसके मध्य मे नदी, पर्वत अथवा कोई प्राकृतिव सीमा न हो तो उसका सीमात क्षेत्र सदैव विवादास्पद ही रहता है। यदि वह सीमात क्षेत्र विशेष श्रीसपन्न हो तो दोनो ओर से उसको हस्तगत करने का प्रयास होता रहता है, जिसके कारण युद्धस्थिति का सदेव उत्पन्न होना स्वाभाविक रहता है। सम्भव है कि विद्रोहिणी सौतो के विद्रोही पुत्रो के मध्य पेतृक सपति की सौतिया बॉट से भी कुछ ऐसी ही अनिर्णीत राज्य-सीमाए भी रह गयी हो, जो पीढियो तक विवाद का कारण बनी रही हो। अनेक पोराणिक कहानियो द्वारा यह स्पष्ट है कि स्वर्गाधिपति इद्र अपने स्वर्गराज्य को इस विवादास्पद स्थिति

के कारण सदेव चितित ओर युद्धरत रहे है। देवताओ मे सबसे अधिक इद्र के साथ असुरो की शत्रुता का एक मुख्य कारण रहा है कि उन्होने अपने सौतेले भाइयो का अधिकार छीनकर स्वर्ग का शासन हथिया लिया हो। जो कुछ भी हो, महाभारत मे भी स्वर्ग के इस नदन कानन पर देवताओ के साथ अनेक शक्तिशाली असुरो का भी आधिपत्य प्रमाणित होता हे जिससे स्पष्ट लगता है कि असुर भी कम शक्तिशाली नही थे। पुराणो द्वारा भी देव और दानवो के मध्य इस सम्पत्ति विभाजन की पुष्टि होती है (विष्णु पुराण, 22)।

इस प्रकार के सघर्ष ने आर्यो को जहॉ सघर्ष मे रहने का अभ्यस्त बनाया। वहीं उन्हे देश देशातर तक जान और अपने उपनिवेश स्थापित करने का कौशल भी दिया। पहले-पहले प्रत्येक सोत के बेटे अपने-अपने को बडा सिद्ध करने के लिये सघर्षरत रहते थे। परन्तु कालान्तर मे उन्होने अपना सघर्ष नये-नये राज्य विस्तार करने मे लगा दिया। सुरो (देवताओं) की तरह "असुरो" ने भी अपनी शक्ति बढाने का प्रयास किया सुरो से परास्त होने वाली असुरो की एक टोली ईरान पहुँची। उसने वहा मत्रो का प्रभाव दिखाया। मारण, मोहन, उच्चाटन विषयक मत्रो का प्रयोग असुराचार्य द्वारा होने लगा था। ईरान मे प्रचलित अथव्रन का नामकरण तभी हुआ और ईरानी समाज पर उसका अच्छा प्रभाव पडा।

कहने का तात्पर्य यह है कि आर्य अपनी विशेषताओ को लेकर दूरस्थ देशो मे जा पहुँचे आर वहॉ पहुँचकर उन्होने आर्य सस्कृति को स्थापित कर दिया। एक वह समय भी आया जबकि पूवात प्राग्जोतिषम् से भारतवर्ष त्रिविष्टप, उत्तर कुरू (हरिवर्ष) निषध, उत्तर- गाधार, कुलूत गधार और पारस्य तक आर्यावर्त्त का विशाल देश बन गया।

"आयावर्त्त" पर आर्यो का प्रभाव छा गया। सर्वत्र आर्य ही आर्य दिखाई देने लगे। कविराज रत्नाकर शास्त्री ने "भारत के प्राणाचार्य" मे एक चित्र इसी आशय का प्रस्तुत किया है जिसमे सपूर्ण आर्यावर्त्त का क्षेत्र बडी कुशलता के साथ चित्रित किया (दर्शाया) गया है। उनके चित्र को हम इन पंक्तियो के साथ प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत कर रहे है। चित्र की उपयोगिता और आर्यावर्त्त की सीमाओ का स्पष्ट सकेत मनुस्मृति के निम्नश्लोक से भी स्पष्ट हो जाता है –

आसमुद्रातु वै पूर्वादासमुद्रातु पश्चिमाम्।
तयोरेवान्तर गिर्योरार्यावर्त विदुर्बधा।।

पूर्व के प्रशात सागर से लेकर पश्चिम के कालासागर तक आर्यावर्त्त का विस्तार इस बात का प्रमाण है कि जलप्रलय के बाद सामान्य स्थिति होते ही आर्यो ने अपना सास्कृतिक विस्तार राज्यो के गठन के साथ शुरू कर दिया था। इस भावना के पीछे आर्यो का मूल उद्देश्य यही था कि वे जहॉ-जहॉ जायेगे सबको आर्य बनायेगे। ऋग्वेद के मत्र "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" का यही अर्थ हे। इसी भावना से आर्यो ने आर्यावर्त्त को बृहद् रूप देने मे सफलता प्राप्त की।

सप्तसिन्धु के अपने आदि-निवास से बाहर जाकर आर्यो ने इसी भावना से काम किया परन्तु उनके मन मे सौतले भाइयो वाली पुरानी रजिश दूर नहीं हुई। वे बाहरी देशो मे जाकर

भी अपने सप्तसिन्धु वाले क्षेत्र को नहीं भूल पाये। ऋग्वेद काल मे भी विचारो का सघर्ष हुआ। उस समय भी आर्य और अनार्य विचारधाराएँ प्रबल थीं। आर्य और दस्यु दो प्रकार के राष्ट्रो मे सघर्ष होता रहता था। परन्तु आर्य अपनी आस्तिक विचारधारा के कारण सफल रहे ओर उन्होने किरात हूण, आध्र पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कक यवन और खस आदि कितनी ही दस्यु (नास्तिक) जातियो को अपने मे मिला लिया। अर्थात् ये जातियॉ भी आर्यो के सपर्क मे आने के बाद नास्तिक से आस्तिक बनकर आर्यो मे ही समा गइ। श्रीमद्‌भागवत पुराण के स्कध 2/4/18 मे भी इस तथ्य को उजागर किया गया है।

आर्यावर्त्त ही "स्वर्ग" साम्राज्य

पहले हम वणन कर चुके है कि वैवस्वत मनु के समय वाले जलप्रलय के बाद आर्यो मे पैतृक भूमि का बॅटवारा हो गया था। अलग-अलग नामो से आर्य अपनी शक्ति बढाते गये और आर्यावर्त्त के क्षेत्र का विस्तार करते गये। "त्रिविष्टप्" के पवित्र क्षेत्र से उन्होने अपना कार्य क्षेत्र ओर राज्य क्षेत्र बढाना शुरू किया और आर्यावर्त्त की सीमा को पश्चिम मे भूमध्यसागर (कालासागर) से असीरिया, पारस्य, उत्तरगाधार, गधार वाल्हीक, निषध, हरिवर्ष, त्रिविष्टप, भारतवर्ष और पूर्व मे प्रशात महासागर तक फैला दिया।

आदित्यो मे सबसे बडे इन्द्र को आर्यावर्त्त का प्रमुख शासक स्वीकार किया गया। जबकि भूमध्यसागर के अति निकट वाले देश असीरिया तक आर्यो के कई वशो का अपना-अपना राज्य स्थापित हो गया था। लेकिन एक बात सभी प्रकार के आर्यो मे देखी गई कि उनका अपने मूल निवास के प्रति विशेष लगाव था। उन्होने अपने आदि निवास को "स्वर्ग" नाम दिया। उनका वह "स्वर्ग" कहॉ था। इस पर पहले भी प्रकाश डाल चुके है कि "स्वर्ग" वही है—जहॉ आर्यो का आदि स्थान है।

ऋग्वेद (1/112/8) मे कहा गया है "जहाँ मदाकिनी गगा बहती है—सरस्वती नदी है—वहीं "स्वर्ग" है। मनु ने भी "एतद्‌देश प्रस्तूतस्य शकाशाद ग्रजन्यत कहकर इस देश को आर्यो का आदि देश कहा है। उसी देश को वेद-पुराणो ने स्वर्ग नाम दिया है "महाभारत मे उसी देव नदी अलकनदा के देश को "स्वर्ग" त्रिविष्टय" कहा गया है। ऋग्वेद (8/91/5)। और अथर्ववेद (11/1/7) मे भी यही भाव स्पष्ट रूप से व्याख्यायित हुआ है। ऋग्वेद मे इस क्षेत्र को "त्रिविष्टप" कहा गया हे

इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र विरोहय। शिरस्तत स्योर्वरा मादिद म उपोदरे(ऋ० 8/91/5)। अर्थात् हे राजन् तू इस त्रिविष्टप स्थान को प्राप्त कर जो सारी पृथ्वी से ऊँचा है और मनुष्य के लिए सुखकारी है, माता के उदर के समान मानव उत्पति का स्थान है।

ऋग्वेद ओर पुराणो के अनुसार इन्द्र, बुधपुत्र पुरूरवा और उर्वशी का निवास स्थान गधमादन पर्वत ओर अलकनदा का तटवर्ती क्षेत्र था। आर्य साहित्य मे इसी क्षेत्र को "पृथ्वी मे स्वर्ग" की उपमा दी गयी हे। पुरूरवा ऐल की राजधानी प्रतिष्ठानपुर (जोशीमठ) थी। जिस प्रतिष्ठानपुर को वर्तमान इतिहासकार प्रयाग (झूॅसी) के निकट बताते हैं उस झूॅसी का ऋग्वेदयुग मे अस्तित्व भी नहीं था। ऋग्वेद (1/31/4) के अनुसार जिस स्वर्ग भूमि मे

अग्नि ने मनु को अनुगृहीत किया था, वह शीतप्रधान प्रदेश था। प्रयाग ऊष्ठा क्षेत्र है।

"विष्णु पुराण" (4/6/48) मे भी लिखा है कि पुरूरवा ने उर्वशी के साथ अलकापुरी के अतर्गत सुदर पद्मो से अलकृत मानसरोवर और सरस्वती मे विहार करते हुए आनदपूर्वक सहस्त्रो वर्ष व्यतीत किये "केदारखण्ड" (बदरिकाश्रम माहात्म्य 58/36/37) मे भी इस प्रकरण का उल्लेख है केदारखड मे वर्णन किया गया है कि बदरिकाश्रम से पश्चिम अर्द्ध कोश की दूरी पर सपूर्ण सुदरता प्रदान करने वाला उर्वशीकुड है। इसी कुड के निकट पुरूरवा ने पॉच वर्ष तक तिरछी चितवनवाली उर्वशी से रमणकर पुत्र उत्पन्न किये थे। महाकवि कालिदास ने भी अपने प्रसिद्ध नाटक "विक्रमोर्वशीयम्" मे मदाकिनी अलकनदा के तटवर्ती क्षेत्र मे गधमादन पर्वत पर पुरूरवा और उर्वशी की क्रीडाओ का क्षेत्र और वर्तमान गढवाल-कुमाऊँ का सपूर्ण भू-भाग "स्वग" का क्षेत्र था। ऋग्वेद काल मे यह सपूर्ण क्षेत्र "त्रिविष्टप" नाम से विख्यात था।

इस सबध मे ब्रह्मावर्त का एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। ब्रह्मा ने ब्रह्ममूर्ति धारणकर जिस ब्रह्मवर्त की रचना की है, वह मानसरोवर से दक्षिण का यही क्षेत्र है, जहॉ से ब्रह्मपुत्र गगा, सिन्धु, सरस्वती, अलकनदा, मदाकिनी, विपाशा, सरयू, निकलती है। "बाल्मीकि रामायण" मे भी त्रिविष्टप को ब्रह्मलोक कहा गया है। (त्रिविष्टप ब्रह्मलोक लोकाना परमेश्वर)। "अमरकोश" मे भी त्रिविष्टप को स्वर्ग एव स्वर्गलोक कहा गया है

अव्यय स्वर्गनाक त्रिदिय त्रिदिशालय।
सुरलोको द्यौ दिवाद्वै स्त्रिया क्लीवे त्रिविष्टपम्।।

इस प्रकार वर्तमान तिब्बत त्रिविष्टप या स्वर्ग नहीं वरन् मानसरोवर से दक्षिण अलकनदा के उद्गमस्थान का निकटवर्ती गधमादन पर्वत क्षेत्र मे "त्रिविष्टप" एव स्वर्ग है। राजा युधिष्ठिर ने त्रिविष्टप स्वर्ग मे पहुँचकर गगा मे स्नानकर मानव शरीर का त्याग किया था।

गगादेवनदीपुण्या पावनीमृषि सस्तुताम्।
आवगाह्य सुता राजा तनु तत्याज मानुषीम्।। (स्वर्गारोहणपर्व, 3 39)

स्वर्ग का विस्तार और हिमालय

आर्यो का आदि निवास त्रिविष्टप वाला-मध्य हिमालय था। इसीलिये आर्यो का प्रिय स्थान हिमालय हो गया। उन्होने सपूण हिमालय को "स्वर्ग" मानकर उसकी पूजा करनी शुरू करदी। आज भी आर्यो का हिमालय के प्रति सबसे अधिक श्रद्धाभाव है। परन्तु आर्यो ने समस्त हिमालय को स्वीकार न कर केवल कश्मीर से नेपाल तक के हिमालय को स्वर्ग भूमि होने का आदर एव गोरव प्रदान किया हे। पुराणो मे हिमालय के पाँच खडो का ही उल्लेख हुआ है

खडा पच हिमालस्य कथिता नेपाल—कूर्माचलौ।।
केदारोऽथ जलन्धरोऽथ रुचिर कश्मीर सञ्ज्ञोऽतिम्।।

नेपाल, कूर्माचल (वर्नमान कुमाऊँ मडल), केदार (वर्तमान गढवाल मडल), जलधर (वतमोन हिमालय प्रदेश) और अंतिम कश्मीर का क्षेत्र ही विशाल हिमालय क अतर्गत सम्मान पाने वाला 'स्वग'' माना गया। इन पॉच भागों मे भी सबसे अधिक श्रद्धा वाला भूभाग-उत्तराखड ही है—जहॉ आज भी आर्यो के प्राचीन सस्कृति एव सभ्यता के केन्द्र विधमान है। उत्तराखड के बाद नेपाल, हिमाचल ओर कश्मीर वाले हिमालय के क्षेत्र हे—जहॉ आर्यों के पवित्र स्थान ओर तीर्थ स्थापित हैं। आर्यो का वास्तविक "स्वर्ग" इन्हीं पॉच खडा मे समाया हुआ था।

स्वर्ग की सीमा

"स्वग" हिमालय म था। परन्तु पूर्वात सागर से लेकर अपरात सागर तक हिमालय पर स्वग का साम्राज्य था। यह सत्य हे कि स्वर्ग का साम्राज्य देव, नाग, यक्ष, गधव और किन्नर लोको मे प्रात वार विभाजित अवश्य था। यही पचजन उसके निवामी थे। रामायण और महाभारत मे स्वग का जो भौगोलिक विवरण हे। उसमे इन सभी प्रदशों का उल्लेख हे। वन पर्व क 18 वे अध्याय मे युधिष्ठिर और लोमश की यात्रा का वर्णन है। युधिष्ठिर से लोमश ने कहा—हे तेजस्वी मे स्वग सपूण प्रदेशो को देखने की इच्छा से यात्रा करने को गया। म नदन वन गया वहॉ इन्द्र से मिला ओर वहीं तुम्हारे वीर भाई अजुन को भी देखा। तुमने जिस अस्त्र विद्या को सीखने के लिए उन्हे स्वग लोक भेजा था। उन्होने रुद्र (शिव) से वह विद्या सीख ली। अजुन यमराज, कुबेर, वरुण तथा इन्द्र से भी बहुत सी अस्त्र विद्या का परिज्ञान कर चुके है।

स्वग के अचल मे गगा और यमुना का निकास हे। यहॉ नदा और अपर नदा नदियॉ है। यहॉ हेमकूट हे जिससे सरस्वती और गगा निकली। यहॉ विष्णु पद तीर्थ है। यहॉ विपाशा (व्यास) नदी है। यहॉ कश्मीर हे। यहॉ से मानसरोवर को मार्ग जाता है जहॉ कभी भगवान राम ने जाकर निवास किया था। यह वितम्ना (झेलम) का उद्गम है। गगा प्रदेश मे गगा के समीप ही कनखल के प्रदेश है। यहॉ गगा की सात धाराओ के स्रोत है। इन गगाओं के आदि स्रोतो के निवासी बारह मास अग्नि जलाये रहते हे। यहॉ श्वेत गिरि (धौलागिरि) है। यहॉ मदराचल है जहॉ मणिभद्र यक्ष का आवास है। यहॉ विस्तृत कैलाश है। यहॉ कभी विष्णु ने नरकासुर को मारा था। यहॉ क्षण मे वर्षा और क्षण मे आतप होते हैं।

यहॉ उत्तर कुरू (सिकियाग) है। कैलाश, नर-नारायण का आश्रम बदरीवन है। यहॉ वे आश्रम है जहॉ सूय की किरणे तप सताप नहीं पहुँचा पातीं। इस अचल में किम्पुरुष खड (किन्नर देश कनौर) है। बदरिकाश्रम के अति निकट गधमादन है। यहॉ बारह मास फलो से भरे पेड रहते हे। सुदर-सुदर सरोवर, जलचारी पक्षी, कमल तथा भौरो से गधमादन सदा व्याप्त रहता है। गधमादन क्षेत्र मे गिरि शिखरो से गिरने वाले झरने अत्यत कमनीय है। सोने और चॉदी जैसे पत्थर चमक रहे हैं। कहीं कसौटी की श्याम शिलायें हैं। कहीं हरताल और कहीं सिन्दूर के पर्त चमकते हैं। यहॉ अपनी प्रेयसियो के साथ गधर्व विहार करते हे। किन्नर किन्नरियो का आलिगन। गधर्व और किन्नर साम के मधुर सगीतों से

यहाँ के प्राणियो को मोहित कर लेते है। यहाँ अलकनदा को देखो जिसके तट पर देवता किन्नर और ऋषि लोग विश्राम करते है। यहाँ फल-फूल से भरापुरा आष्टिषेण ऋषि क आश्रम भी है। जब लोमश ऋषि अपनी माता का वर्णन युधिष्ठिर को सुना रहे थे—तर्भ इन्द्र के विमान पर अर्जुन आकाश मार्ग से उतरे। युधिष्ठिर अर्जुन को देखकर प्रसन्न हुए

लोमश के उपरोक्त यात्रा विवरण से "स्वर्गलोक" के भूगोल का ज्ञान हो जाता है आर्यो का स्वर्ग वहीं था जहाँ-जहाँ लोमश गये।

स्वर्ग निवासी

यह प्रश्न भी उठाया जा सकता है कि "स्वर्ग" मे कैसे-केसे लोग रहते थे। म ने—मनुस्मृति" (1-35-40) मे स्पष्ट लिखा है कि "स्वर्ग" शासन मे देव तथा अवान्त देव जातियाँ, जिनमे ऋषि भी थे, यक्ष, गधर्व, नाग, किन्नर राक्षस, पिशाच, अप्सराये, असु पक्षी, सर्प, वानर, मत्स्य, अन्य पक्षी, शिकारी जानवर और फिर मनुष्य कृमि, कीट, पतग मक्खियाँ, जूँ, खटमल, डास,—मच्छर तथा स्थावर पेड-पौधे आदि सभी सृष्टि जडचेतन प्राणं निवास करते थे। प्राय सारा प्राणि जगत स्वर्गलोक के अन्तर्गत समाविष्ट था। स्वर्ग साम्राज्य के अन्तर्गत कई स्वतत्र राज्य थे जो इन्द्र के "स्वर्ग साम्राज्य" के प्रमुख देश थे।

"भारत के प्राणाचार्य" के विख्यात लेखक कविराज रत्नाकर शास्त्री ने "स्वर्ग क भूगोल-इतिहास" नामक शीर्षक के पृष्ठ 74 से 81 तक "स्वर्ग साम्राज्य का विस्तृत वर्ण लिखा है। उसी वर्णन का सार सक्षेप साभार यहाँ प्रस्तुत किया जारहा है।

"इन्द्र" स्वर्ग साम्राज्य के प्रमुख प्रजापति थे। उनका साम्राज्य आसमुद्रातु द पूर्वादासमुद्रातु पश्चिमाम्" तक था। अथात् पूर्व मे प्रशात महासागर से लेकर पश्चिम म भूमध्यसागर तक फैला हुआ था। उनकी राजधानी अमरावती मे थी। वह त्रिविष्टप क विशेष भाग था। इन्द्र देवो मे प्रथम देव थे। आदित्यो मे सर्वप्रथम आदित्य थे। विद्या, पराक्रम वैभव और व्यवहार नीति को प्रजा मे भली-भाँति प्रचारित कर सम्पूर्ण साम्राज्य की रक्षा करने का उत्तरदायित्व इन्द्र पर ही था।

स्वर्ग का दूसरा राज्य नागलोक था। कैलाश उसका शासन केन्द्र और शिव उसके गणनायक थे। शिव मूल रूप मे नाग थे। मानसरोवर और धौलागिरि के उत्तर पश्चिम कैलाश है। कश्मीर सिकियाग हरिवर्ष (हाटक) (लद्दाख), कार्त्तस्वर(कराकोरम) सिन्धु कोष (हिंदू कुश) गधार कम्बोज (काबुल घाटी) और सुमेरू (थियानशान् पर्वत) सम्पूर्ण क्षेत्र उस समय नागलोक ही था। सुमेरू पर्वत की सीमा नागलोक तक थी। कालिदास ने कुमारसभव(8/55) मे सध्या का वर्णन, करते हुए लिखा हे कि सूर्य सुमेरू पर्वत के पीछे छिप गया, इसलिये इधर अधेरा होने लगा। फलत सुमेरू नागलोक के पश्चिम की सीमा हुई। स्वर्ग का तीसरा राज्य यक्षलोक था जो अलकापुरी मे शासित होता था। कुबेर इसके गणपति थे। अलकापुरी ही इसकी स्मृति है। हिमालय पर अभी तक अलकापुरी—बाक नाम का प्रदेश है। अलकापुरी बाक प्राचीन अलकापुरी का ही खेटक है। अलकनदा की धारा इसी बाक के तीन ओर बहती है। अलकापुरी का आनद साधन होने के कारण ही यह नदी अलकनदा नाम से

प्रसिद्ध हुइ। अलकापुरी, धौलागिरि के निकट स्थित है। महाभारत के वन पव(18) म अलकापुरि ओर कुबेर का वणन अध्याय 158 से अध्याय 162 तक किया गया है। कुबेर के अलावा मणिभद्र यक्ष का भी वणन किया गया हे

श्वेत गिरि प्रवक्ष्यामो मदर पर्वतम्।
यत्र मणिवरो यक्ष कुबेरश्चैव यक्षराष्ट्र ।। (महा० भा० वन 18)

यक्षा की विद्वत्ता ओर योग्यता का उल्लेख प्राचीन साहित्य मे विस्तार से मिलता है। महाभारत मे स्थान-स्थान पर यक्षा के बुद्धि-वैभव का वर्णन हे। मणिभद्र यक्षों के गण का सेनापति था। वह युद्ध विद्या मे प्रवीण योद्धा था। एक समय अजुन, स्वग मे इन्द्र से शस्त्र विद्या सीख रहा था। युधिष्ठिर उससे मिलने के भाव से यात्रा के लिये निकले। उत्तर मे वदयाश्रम मे रहकर जब वह आगे चले नो वे अपने भाइयों के साथ सुदर सुगन्धित सरावर के तट पर पहुँचे। निकट ही तृण बिदु महर्षि का आश्रम था। उन्हे प्यास लगी। आश्रम के समीप उसी सरोवर मे जल पीने पहुँचे। सहदेव, नकुल, अजुन, भीम सभी क्रम से गये। सरोवर के तट पर रहने वाले एक यक्ष ने प्रत्येक से कुछ प्रश्न पूछे। अत्यत दार्शनिक और नीतिपूण उत्तर कोइ भी न दे सका। यक्ष ने उन्हे मूर्छित करके भूमि पर गिरा दिया। अत मे युधिष्ठिर गये। यक्ष ने उनसे भी प्रश्न पूछ। यक्ष के उत्तर दे देने पर उस यक्ष ने सबको पुनर्जीविन कर दिया और सरोवर का जल पीने दिया।

अलकापुरी या अलकनदा से वत्मान गढवाल कुमाऊँ का प्रदेश कुबेर का गणराज्य था। कुबेर की सम्पति उस समय स्वर्ग का गोरव बन गयी थी। न केवल स्वर्ग, उत्तर दिशा का नाम ही "कौबेरी" दिशा हो गया था। वह धन-धान्य जो कुबेर के पास था, स्वर्ग मे अन्यत्र न था। आर्थिक सकट मे सारे देवता कुबेर की शरण मे ही जाते थे। इसका मुख्य कारण एक ही प्रतीत होता है कि कुबेर के प्रदेश मे गगा और यमुना जैसी विशाल नदियॉ थीं, जिनके द्वारा अन्न की उत्पत्ति तो होती ही थी, यानायात भी उनके तट से ही होता था। गगा तो स्वर्ग सोपान प्रसिद्ध थी ही। हरिद्वार मे स्वर्ग के प्रवेश पर लगने वाले करों से कुबेर का कोष दिन-दिन भरता ही रहता था। दूसरे सिन्धु कोष (हिदू कोष) से अमरावती जाने वाले माल का मार्ग अलकापुरी से होकर ही जाता था। उस व्यवसाय की भारी आय भी कुबेर के वेभव का साधन बनी हुइ थी। "गढवाल" कुमाऊँ मे आज भी यक्षो की पूजा होती है। इस अचल मे यक्षो के कई गाव ओर मंदिर है। कालिदास का यक्ष इसी अलकापुरी का निवासी था। स्वर्ग का सबसे बडा न्यायाधीश "यमराज" यहीं का यक्ष था। और वह कुबेर का भाई था।

स्वर्ग का चौथा राज्य किन्नरलोक था। इसमे वर्तमान् कुल्लू, चम्बा, कागडा, पजाब का उत्तरी भाग-जम्बू वाला क्षेत्र सम्मिलित था। प्राचीन साहित्य के आधार पर यह भी प्रमाणित होता है कि व्यास (विपाशा) के आगे रावी (इराब्दी) तथा चन्द्र भागा (चिनाव) नदियो का उद्गम क्षेत्र किन्नरलोक में ही था।

किन्नर लोक-यक्षलोक के पश्चिम वाला अचल था। जिसमे सुदर उपज होती थी।

अमरकोष (काड-1, स्वर्ग वर्ग, 72-74) से ज्ञात होता है कि किन्नर लोक का गणनाय भी-यक्ष राजा कुबेर ही था।

"भारत के प्राणाचार्य" के लेखक का मानना है कि किन्नरलोक ही तत्काली राजधानी लाहल वाले "कुल्लू" मे रही होगी। दूसरा कारण यह भी है कि शक देश ताशक से इस क्षेत्र मे पिशाचो और राक्षसो के आक्रमण होते रहते थे। जिन्हे कुल्लू के किन्न अपनी वीरता और वाणी की मिठास से परास्त कर देते थे।

किन्नर प्रदेश के लोग आज भी गायन के क्षेत्र मे अग्रणी है। किन्नर कठ की प्रश प्राचीन भारत के प्राय सभी ग्रन्थो मे की गई है। कालिदास ने रघुवश (4/78) मे रघु द्वा उत्सव सकेतो के सात गणो की विजय का जहॉ उल्लेख किया है—वहीं उन्होने किन्नर लो मे रघु के विजय-गीतो का भी विस्तार से वर्णन किया है।

स्वर्ग का पाचवा गणराज्य-गाधार था। यह अत्यत विस्तृत गणराज्य था। इस रा की सीमा एक समय भूमध्यसागर तक पहुँच गई थी। गाधार की राजधानी पुष्कलाव थी, आज का चारसद्दा ही प्राचीन पुष्कलावती था। देवासुर सग्राम का यह नगर और क्षे प्रसिद्ध रहा है। यहॉ देवासुर सग्राम कई बार हुये। इसलिये राजधानी का गौरव पुरुष प (पेशावर) को ही मिलता रहा है। किम्पुरुष खड और गाधार के बीच कश्मीर का जो भा है—वह नागवश का ही क्षेत्र रहा है। उस पर नाग गणतत्र का प्रभाव रहा है। तक्षशिर से लेकर सिन्ध तक कश्मीर का जो भाग है—वह भी नागवशियो के ही सरक्षण फलता-फूलता रहा है। वह मानो शकर के त्रिशूल के नीचे सरक्षण पाता रहा हो। प्राची समय मे गाधार गणतत्र के अतर्गत सुवास्तु (स्वतनदी का कछार) सिन्ध कोष (हिदूकुश तुरूष्क (तुर्कीस्तान), निषध, काम्बोज परसिया और आसीरिया जैसे देश थे। यह सिन्धु न के दोनो ओर दूर-दूर तक बसा हुआ था। बाल्मीकि रामायण (उत्तर० 100/11) मे इ सभी देशो का उल्लेख किया गया है

सिन्धोरूमयत पार्श्वे देश॰ परम शोभन
त च रक्षन्ति गधर्वा सयुधा युद्ध कोविदा।।

गधार के गणनायक चित्रसेन का अमरावती मे बडा सम्मान था। आर्यावर्त्त का प्रत्य प्रात होने के कारण गधार का बडा महत्त्व था। दरद, बाल्हीक और कम्बोज त्रिगर्त दा (दार्वामिसार) और कोकनद आदि छोटे-छोटे प्रदेशो से मिलकर गन्धार का गणतत्र सब बडा स्वर्ग का गणतत्र था। युद्ध कौशल मे गन्धर्व इतने पटु थे कि उन जैसी व्यूह रचन दूसरो से नहीं बन सकती थी। गधर्वपुर या गधर्व नगर उन व्यूहो का ही नाम है जिन फॅसकर फिर किसी का छुटकारा सभव न था।

महाभारत मे लिखा है कि उत्तर-पश्चिम सीमान्त के इर्द-गिर्द "उत्सव सकेत" ना की मलेच्छ जातियॉ रहती थीं। गधर्व आये दिन इनसे टक्कर लेते रहते थे। कौरवो क माता और धृतराष्ट्र की रानी "गाधारी" यहीं की थीं। महाभारत (सभापर्व, अध्याय 34 के समय गधार का राजा "सुवल" था, जो युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ मे आया था। किन्न

उससे पूर्व विश्वावसु और उसका पुत्र चित्रसेन गधार के शासन पर आरूढ थे।

गाधार के तुम्बुरू, नारद, हाहा, हूहू, नाम के वे गधव थे जो इन्द्र की सभा को सगीत से सरस बनाये रखते थे सगीत विद्या पर इनका एकाधिकार था। तुम्बुरू का "तूम्बूरा" और नारद की वीणा ही आज तक सगीत का सग दे रही हैं। वाद्य बहुत बने, किन्तु स्वरो पर शासन करने के लिये तुम्बूरा और वीणा से आगे कोई भी वाद्य आज तक न जा सका। विश्वावसु स्वय सगीत का आचार्य था। बेजयन्ती कोष ने लिखा है कि विश्वावसु की वीणा का नाम 'बृहती" था। तुम्बुरू की "कलावती" तथा नारद की "महती" और सरस्वती की "कच्छपी।" प्रतीत होता है कि सरस्वती भी गधार की ही थी।

विश्वावसोस्तु बृहती तुम्बृरोस्ति कलावती।
महती नारदस्य स्यात्सरस्वत्यास्तु कच्छपी।। बेजयन्ती कोष

षड्ज, ऋषभ, गाधार, मध्यम, पचम, धेवत, निषाद इन सातो स्वरा के अनुस्वर, श्रुति ओर अनुश्रुनियो तक पहुँचने वाले गाधार के लोग ही थे। किन्नर गायक थे, किन्तु स्वरकार गधव ही थे। सगीत के दस घाटो मे कम्बोज घाट (रम्माज) अभी तक गन्धार के स्मरण को प्रस्तुत कर रहा हे। कम्बोज गधार का ही प्रसिद्ध नगर है। यही कारण ह कि स्वग मे रहकर अजुन ने इन्द्र से धनुर्विद्या के अतिरिक्त पॉच वष तक गाधार के चित्रसेन से सगीत विद्या भी सीखी थी। (महाभारत, वन० 12-सी वी वैद्य)

देव, नाग, यक्ष ओर किन्नरो ने भले ही धनुष बाण, गदा, वज्र और अन्यान्य अस्त्र शस्त्र उठाये हो परन्तु गधार ने अपनी वीणा ओर तुम्बुरू से ही बडे-बडे दुर्दान्तों को झुका दिया। घृताची, मेनका, रम्भा, स्वयप्रभा, उर्वशी, गोपाली और चित्रसेन जैसी अप्सराओं की थिरकन पर जब तुम्बुरू और वीणा ने झकार दी, बलि जैसे असुरो के पाश और इन्द्र जैसे देवताओ के वज्र हाथ से गिर पडे। युद्ध के अस्त्र-शस्त्र तीर-तलवार और वज्र ही नहीं है बल्कि वीणा और तुम्बुरू भी हैं यह तथ्य गन्धर्वो ने ही सिद्ध किया था। इतिहास कहता है—सिकन्दर जो किसी से नहीं, हारा, उसे बेबीलोन के एक किले मे वीणा के प्रहार से ही गाधारियो ने सदा के लिये समाप्त कर दिया।

ऋग्वेद पर तो देवताओ ने किसी को हाथ नहीं लगाने दिया। परन्तु गधर्वो ने सारे ऋग्वेद स्वरो को सात तत्रियो पर कसकर सामवेद की सृष्टि कर दी। सामवेद तब से नया वेद ही बन गया। इस सबध मे जैमिनी सूत्र और रसरत्नाकर के ये उदाहरण अवलोकनीय है

ऋच्यध्यूढ साम गीयते। गीतिषु सामाख्या। जैमिनीय सूत्र
षड्जमध्यमनामानौ ग्रामौ गायन्ति मानवा।
न तु गधार नामान स लभ्यो देव योनिभि ।। रस रत्नाकर
उदात्ते निषादगान्धारौ अनुदात्ते ऋषभधैवतौ।।
स्वरितेन तु विज्ञेया षड्ज मध्यम पच मा।।

स्वर्ग का अर्थ

उपरोक्त विवरण से यह तथ्य पूर्णत उजागर हो जाता है कि देव, नाग, यक्ष, गधर्व और किन्नर स्वर्ग के "पचजन" थ। यही "पचजन" स्वर्ग को "स्वर्ग" बनाने मे अपना पूरा-पूरा योगदान देते रहते थे। बाद मे कुछ अन्य जातियो ने भी "पचजनो मे सम्मिलित होकर स्वर्ग के साम्राज्य को सुदृढ बनाने मे अपना सक्रिय योगदान दिया था।

स्वर्ग के सबध मे आम धारणा यह है कि "स्वर्ग" वही है, जहॉ विष्णु ओर लक्ष्मी का वास है। जहॉ इन्द्र का नदन वन है। जहॉ कल्पवृक्ष है जहॉ कामधेनु है जो सबकी मनोवांछित कामनाये पूर्ण करती है। जहॉ जरा से कोई जीर्ण नहीं होता। जहॉ की देवियॉ सौन्दर्य की पराकाष्ठा है। जहॉ वेदना और विषाद के लिये कोई स्थान नही। जहॉ का जीवन सुखमय है और जहॉ का निवासी अमर है—वह "स्वर्ग" है। इसी प्रकार की अनेक भावनाये "स्वर्ग के सबध मे यत्र-तत्र भरी पडी है। परन्तु, यह बात सत्य है कि भारतीय जन-जीवन मे "स्वर्ग" प्राप्ति की एक प्रबल इच्छा युग-युगो से चली आरही है कि मरने के बाद ही "स्वर्ग" मिलता है।

वैदिक युग मे "स्वर्ग" का अर्थ मृत्यु के लिये प्रयुक्त नहीं होता था। निरूक्त (पृ० 5/3/7) के अनुसार स्वर या स्व शब्द सुख अथवा ज्योति के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। उपनिषदो मे "स्वर्ग" शब्द का प्रयोग उस अचल विशेष के लिये हुआ है—जहॉ सुख और ज्ञान ज्योति का प्रकाश मिलता है। कठोपनिषद का एक उदाहरण इस प्रकार है

स्वर्गलोके न भय किंचनास्ति न तत्र त्व न जरयाविभेति।

वास्तव मे "स्वर्ग शब्द आज उस अथ मे अधिक प्रयुक्त होने लगा है जिस अर्थ मे हम यह कहते है कि हमारे प्रिय जन अत मे स्वर्गवासी होते है। यह अर्थ आध्यात्मिक है। परन्तु इस शब्द का एक भौगोलिक अर्थ भी है—और वह यह है कि—"स्वर्ग" का शासन हिमालय" पर है। वह अचल आर्यों का आदि निवास है। प्रत्येक प्राणी अत मे अपने जन्म स्थान मे जाकर अपनो के बीच मरना चाहता है। उसकी इच्छा रहती है कि अत समय मे वह अपनो के बीच अतिम सॉसें ले। तभी उसकी सद्गति होती है। उसी को वह "स्वर्ग" प्राप्ति का उत्तम साधन मानता है।

वैदिक आर्यो के अनुसार हिमालय ही "स्वर्ग" है और वहीं जाकर आत्मा का परमात्मा मे मिलन हो जाता है। इसी निर्णय ने आर्यो को हिमालय मे जाकर शरीरान्त करने की और स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा को बलवती बनाया।

आर्यो का स्वर्ग हिमालय मे ही था। इसके अनेक उदाहरण यत्र-तत्र मिल जाते है। आर्यो ने अपने मूल स्थान का नाम "स्वर्ग" रखा था। हिमालय स्थित त्रिविष्टप अचल के नदन वन मे आर्यो के सम्राट इन्द्र निवास करते थे। इन्द्र के मत्रीमडल मे एक हजार ऋषि होते थे। उन्हीं की राय पर स्वर्ग का शासन था। इन्द्र का नाम इसीलिये "सहस्राक्ष" भी है। क्योकि वे इन्हीं हजार ऋषियो की दृष्टि से स्वर्ग का सुखमय शासन चलाते थे।

उपलब्ध प्रमाणो द्वारा यह नि सन्देह कहा जासकता है कि आर्यो का हिमालय का

स्वग वाला वह देश त्रिविष्टप (तिब्बत) से वाल्हीक (रूसी तुर्किस्तान) तक पूर्व और पश्चिम मे तथा लोकालोक (अल्ताइ) पवत से लेकर बिन्ध्याचल तक उत्तर और दक्षिण मे विस्तृत था। गगा और विन्ध्याचल पवत के बीच की भूमि को आर्यो ने अपनी सतति के विस्तार होने पर कुछ पीछे से आबाद किया था। चरक, (चि 1/4/3) मे भी इसका विवरण है

ऋषय· खलु कदाचित् ग्राम्यवासकृतमात्मदोषे मत्वा पूर्वनिवास गगा प्रभव हिमवन्तममराधिपाभिगुप्त जग्मु तानिन्द्र सहस्त्र दृग्भर गुरुवरोऽब्रवीत्।

स्वर्ग मे आने-जाने के प्रमाण

''स्वग'' हिमालय क्षेत्र वाला— देवो का साम्राज्य था जिसके अधिपति इन्द्र थे। और सभी कार्यो के लिय देवता अग्रणी भूमिका निभाते थे। जब तक भारतवष का पूण विकास नहीं हुआ था—तब तक तो ''स्वग'' का कार्य हिमालय निवासी आर्य ही करते रहते थे। परन्तु जब भारतवर्ष मे ''स्वग'' के आय रहने लगे तो उनका ''स्वग'' के साम्राज्य मे आना-जाना लगा रहा। इस सबध मे कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हे।

1 महाभारत मे स्वग जाना ओर वहॉ शस्त्र विद्या सीखकर वापस आने का वर्णन है—महाभारत वन० अ० 164-165

2 रामायण में भी उल्लेख हे कि दशरथ एक बार राक्षसो के विरुद्ध युद्ध में इन्द्र को सहायता देने गये थे।

3 महाभारत आदि० अ० 30-40 मे गरुड का हिमालय पर जाकर इन्द्र से मिलने का वर्णन है।

4 ययाति का स्वर्ग जाने और आने का वणन महाभारत आदि० अध्याय मे 79-86 मे विद्यमान है।

5 महाभारत का ''स्वगारोहण पर्व'' इस बात का प्रमाण है कि पाडव अपने अन्तिम जीवन मे स्वर्ग को गये थे, ओर जहॉ गये थे वह हिमालय ही था। वर्तमान गढवाल से मानसरोवर तक पाडवो के सस्मरण मे अभी तक अनेक स्थान मौजूद हैं। वर्तमान गढवाल के एक विशाल पर्वत खड का नाम स्वर्गारोहण पर्वत है। आजकल लोग उसे ''सतो पथ'' नाम से पुकारते है। लोग उस मार्ग से स्वर्ग जाया करते थे।

6 मानसरोवर, कैलाश, अलका, गगा और अलकनदा आदि स्वर्ग के भोगोलिक चिह्न आज भी हिमालय पर विद्यमान है।

7 आर्य जाति का यह विश्वास कि स्वर्ग ऊपर हे, यही सिद्ध करता है कि स्वर्ग हिमालय के उच्च प्रदेश पर ही था।

8 रघुवश मे कालिदास ने अज की उपमा त्रिविष्टप के राजकुमार जयन्त से दी हे—जो स्वर्ग कहा जाता था और वह राज्य हिमालय पर ही था।— (रघवुश 6-78 देखें)। मल्लिनाथ ने इसकी व्याख्या कुछ इस प्रकार लिखी है—विशिष्टस्यस्वर्गस्य पतिभिद्र जयन्त इव। त्रिविष्टप आज भी तिब्बत है। उसके स्वर्ग नाम का सज्ञा

संज्ञि सबध भौगोलिक दृष्टि मे हम भूल गये थे।

9 अमरकोष मे (चौथी ई० शती) मे त्रिविष्टप स्वर्ग का पर्यायवाची लिखा है।

10 अपने मूल निवास स्थान के प्रेम तथा पुरखो की भक्ति के कारण पुराने आर्य जीवन के अत समय मे मरने के लिये हिमालय (उत्तराखड) मे निवास करने जाया करते थे, ताकि अपने पूर्वजो की भूमि मे प्राण त्याग करे। यह स्वर्गारोहण कहा जाता था। आत्रेय पुनर्वसु आदि ऋषियो के जीवन मे भी हम यह पाते है कि वे पचाल की राजधानी कम्पिल्य मे विश्वविद्यालय के आचार्य पद् से मुक्त होने के उपरात अन्तिम जीवन मे गगा के किनारे-किनारे कैलाश पर्वत पर चले गये थे। यहॉ तक कि चरक सहिता के अन्तिम अध्यायो का उपदेश उन्होने कैलाश पर बैठकर ही दिया। स्वर्ग को जाने का मार्ग गगा के किनारे ही किनारे था। गगा के सहारे स्वर्ग पहुॅचने की भावना का यही आधार है। गगा इसीलिये "स्वर्गसोपान" हुई। कहना न होगा "हरिद्वार" भी स्वर्ग का ही द्वार था।

11 महाभारत मे नहुष की कथा देखिये। वह स्वर्ग जाकर वापस आये थे एव श्रीमद्भागवत स्क० 5 मे स्वर्ग की सीमाओ का विस्तृत वर्णन है जिससे प्रतीत होता है कि "स्वर्ग और नरक की सीमाये निर्धारित थी।

नरक और उसका क्षेत्र

"स्वर्ग" की तरह "नरक" का विवरण भी आर्यो के ग्रथो मे विस्तार से मिलता है। "नरक" कहॉ था और उसका ऐसा नामकरण क्यो हुआ। इस पर भी विचार करना है।

सृष्टि की उत्पत्ति के सबध मे हम पहले विचार कर चुके है कि आज की सृष्टि वैवस्वतमनु के बाद की सृष्टि है। जलप्रलय के बाद वैवस्वतमनु दक्षिणगिरि से अपने साथ सात ऋषियो को लेकर हिमालय के उत्तरगिरि क्षेत्र मे सरस्वती नदी के सर्वोच्च तट पर चमत्कारी मत्स्य के द्वारा ले जायी गई नौका के सहारे जा बसे थे। जलप्लावन के कारण सम्पूर्ण दक्षिणगिरि क्षेत्र भी जलमग्न हो गया था। जल प्रलय के बाद जो ऊॅची भूमि जल से ऊपर रह गई थी। उस भूमि व क्षेत्र को ब्रह्मवर्त्त नाम दिया गया था। मनु ने हिमालय की इसी भूमि मे सृष्टि रचना अपने साथियो के साथ मिलकर करनी शुरू की।

हिमालय आर्यो का आदि देश था। उस देश मे आर्यो के वशज पहले से ही निवास कर रहे थे। और जलप्रलय के बाद ऊॅची भूमि पर रहने के कारण कुछ आर्य डूबने से बच गये थे। मनु के वहॉ (हिमालय) पहुॅचने के बाद आर्यो की जनसख्या मे निरन्तर वृद्धि होने लगी। इन्द्र का "स्वर्ग" साम्राज्य निरन्तर विस्तार पाने लगा।

दूसरी ओर समुद्र का जल धीरे-धीरे समुद्र की ओर जाने लगा। पानी मे डूबी हुई धरती ऊपर आने लगी। कालान्तर मे भूमि वनो, झाड-झखाडो से भर गई। अत उस भूमि मे जीवन रक्षा के सभी तत्त्व विद्यमान होने लगे। तब "स्वर्ग" के आर्यो की ललचाई दृष्टि उस भूमि पर पडने लगी। और वे (आर्य) "स्वर्ग" से नीचे उतर कर "नरक" (मैदानी क्षेत्र) मे रहने लगे।

नरक का नामकरण

स्वर्ग के राज्य मे परिजन (आबादी) बढ जाने के पश्चात् आर्यो ने गगा ओर विध्याचर के बीच की जिस भूमि को आबाद किया उसका नाम नरक रखा। नरक का अर्थ औ कुछ नहीं-नीचे की भूमि होता है। यास्काचार्य ने लिखा हे कि नरक नाम इसीलिए रख गया कि वहॉ पहुँचने के लिये नीचे की ओर जाना पडता था। वहॉ के क्षेत्र रमणीय न थे

"नरकन्यरक नीचैर्गमनम्, नास्मिन् रमण स्थानमल्पमस्तीति वा" निरुक्तअ

(अ) यास्काचार्य की यह निरूक्ति नरक तथा स्वग के भोगोलिक स्वरूप को बहुत स्पष करती है। यह स्पष्ट करने के लिये पयाप्त है कि नरक हिमालय से नीचे की भूि का नाम था।

(ब) महाभारत मे नहुष की कथा को भी देखने से यही अथ निकलता है। श्रीमद्भागवत स्कध 5 मे स्वर्ग की सीमाओं की जानकारी करने से भी "नरक" की स्थिति क ज्ञान हो जाता है।

इस सबध मे, कविराज रत्नाकर शास्त्री की पुस्तक "भारत के प्राणाचाय" के पृष 106 से 108 तक की गई उनकी व्याख्या को यहॉ साभार उद्धृत कर "नरक" व सबध मे आवश्यक जानकारी प्रस्तुत की गयी है।

"वही बात नरक के सबध मे भी ध्यान रखनी होगी। नारक, नरक, निरय, दुर्गति यह नरक के ही पर्याय है। तपन, अवीचि, महारौरव, सघात, कालसूत्र, यह सब नरक व ही भेद हैं। अब इन नामो पर विचार कीजिये। ये नाम अमर कोष मे दिये हुए हैं।

"नरक" उसे इसलिये कहते है कि वह नीची भूमि पर है। "नरक" इसलिये कहत हे क्योंकि जल की धाराय उसी ओर ढलकती हैं। "तपन" इसलिये कहते है क्योंकि वह पर भीषण गर्मी लू चलती है। "अवीचि" इसलिये कहते हैं कि वहॉ (वीचि) सुख नहीं है अथवा वहॉ की हवा मे तरगे दिखाई तो देती है पर वे तरगे नहीं किन्तु (अवीचि मरू-मारीचिकाये है। "रौरव" इसलिये कि वहॉ रूरू नाम के मॉस भक्षी क्रव्याद (गिद्ध) अथव उकाव आदमी को खा जाते है अथवा रूरू नाम के अजगर आदमी को निगल जाते हैं "सघात" इसलिये कि जगली वनमानुष अन्य लोगो को लाठी-पत्थरो से मार डालते हैं "कालसूत्र" इसलिये कहते है कि वहॉ मृत्यु का जाल बिछा है।

नरक के निवासी "प्रेत" कहे जाते थे। क्योंकि वे स्वर्ग से (प्र) खासतौर पर (इता निकाले हुए लोग थे। अर्थात् निर्वासित लोग। नरक की हरेक नदी वैतरणी कही गई थी क्योंकि वहॉ किसी नदी पर (तरणी) नौका नहीं मिलती थी। हिमालय के कश्मीर, तिब्बत कैलाश, अलकनदा और मानसरोवर के जलवायु को विध्याचल की उपत्यकाओं से सतुलित कीजिये और बताइये इसमे क्या अभौगोलिक है। क्या मिथ्या है। नदियो से पार उतर के लिये उस समय नाव मिलने की सुविधा न होने से उस युग का आर्य गाय की पूँछ पकड़ कर ही नदी पार करता रहता था। क्योंकि वह उसी के पारिवारिक जीवन में पलती थी हम आज भी अन्तिम श्वास तक अपने प्रियजनों के लिये गोदान की परिपाटी को अपना

हुए है। क्योंकि प्रत्येक वैतरणी पर वह हमे तारती रही है। और पार जाकर दूध से पोषण करना भी उसकी ही देन थी। इसलिये भारतीय सस्कृति मे वह माता से कम नहीं। वेदना के कठिनतम समय मे जिसने हमारा साथ दिया है, जो इतिहास के एक-एक पग पर हमारे सकटो मे काम आयी है, और नरक की वैतरणी नदियों से पार उतारती रही है, उसे आज हम कैसे छोड दे। विश्वासघात सबसे बढकर पाप है, यही हमारी सस्कृति की देन है। स्वय युधिष्ठिर ने अपने द्वार की चौकसी करने वाले कुत्ते के लिये स्वर्ग छोड दिया था, गाय के उपकारो का ऋण तो हम पर हजारो गुना अधिक है।

स्वर्ग से नरक मे निर्वासित व्यक्ति फिर स्वर्ग नहीं लौट सका। वह स्वर्ग की लालसा के लिये वहॉ की नदियो, पर्वतो, औषधियो, देवियो और देवताओ के गीत गाता रहा। नन्दी, ऐरावत, त्रिशूल, कमल, सिह और मानस के हस उसकी रग-रग मे रम गये। किन्तु इसमे समाज का सम्पोषण समाविष्ट करने के लिये कुछ ऐसे नियम बनाये गये जो स्वर्ग और नरक का सबध अक्षुण्ण रख सकें। स्त्री और पुरुष की प्रथम आवश्यकता एक दूसरे का सम्मिलन है। स्त्री पुरुष के बिना निरर्थक और पुरुष स्त्री के बिना व्यर्थ है। इसलिये नरक मे इस दिशा मे यहॉ तक स्वतत्रता रही कि एक स्त्री एक-एक सतान के लिये अनेक-अनेक पुरुषो की होकर रही। अपने जीवन मं कितने ही पिताओं को उसने पुत्र दिये। महाभारत काल तक यह परिपाटी चल रही थी।

आरम्भ मे नरक को आबाद करना ही आर्यो का मुख्य दृष्टिकोण था। इसलिये पितृ यज्ञ का कानूनी रूप बन गया। स्वर्ग से निर्वासित व्यक्ति नरक मे पुत्र उत्पन्न करके स्वर्ग लौट सकता था। इस पद्धति से नरक की आबादी बढने लगी। वे सभी पुत्र कुलीन थे। सभी को सामाजिक दृष्टि से सम्मान प्राप्त था। मनु के धर्म शास्त्र मे हम इस विधान का उल्लेख पाते हे। सतान का नाम पुत्र रखा ही इसलिये गया था कि वह (पुम्) नरक से (त्र) त्राण देता था। उसके जन्म से पिता को स्वर्ग लौटने का अधिकार मिलता था।

(क) पुत्रेण लोकाजयति पौत्रर्णानन्त्यमश्नुते।
अथ पुत्रस्य पौत्रेण, ब्रध्यनस्याप्नोति विष्टपम्।।
पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्त्रायते पितर सुत॰।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्त॰ स्वयमेव स्वयभुवा।। मनुस्मृति 9/137-138

(ख) तत्रयोवाव लोका मनुष्यलोक॰ पितृलोको देवलोक इति।
सोऽय मनुष्यलोक पुत्रेणैव जयूयो नान्येन कर्मणा। कर्मणा पितृलोको।
विद्यया देवलोक । देवलोको बै लोकाना श्रेष्ठ॰।। ब्रहदा० अ० 1/5

उर्वशी, मेनका, घृताची और माधवी जैसी सुदरिया, वे ही माताये है जिन्होने अनेक वश परपराओ के सस्थापक पुत्रो को जन्म देकर नरक के निर्जन को मानव का आवास बनाकर आर्यावर्त्त के राष्ट्र की आधारशिला रखी थी।

इस प्रकार नरक मे सतान को छोडकर स्वर्ग मे लौटे हुए लोग "पितर" कहे गये। उनकी प्रतिष्ठा स्वर्ग मे देवताओं से उतरकर मानी गयी थी। प्रतीत होता है मानसरोवर

के दक्षिण नेपाल, भूटान, सिक्किम और असम के प्रदेशो मे अधिकाश पितर ही आबाद हो गये थे। आर्यावर्त्त मे उन्हीं की सताने फैल रही थीं। जो वर्षा के चातुमास तक हिमालय न पहुँच सकने के कारण वषा की समाप्ति पर आश्विन के महीने मे पूरे एक पक्ष तक अनेक सोगाते भेजकर अपने पितरो के चरणो मे भक्ति का प्रदशन करते थे। और आज तक करते है। यह पितृपक्ष पितरो का तर्पण ही नहीं है, स्वर्ग के प्रदेश स हमारे गहरे राष्ट्रीय एव आनुवशिक सबधो को सूचित करता है। पचयज्ञ म देवताओ को हव्य और पितरों को कव्य (तपण) देने की यह परम्परा कुछ निराधार नहीं है। भले ही वह आज एक परम्परा है, किन्तु कभी वह हमारे जीवन का तथ्य था। एक बार मुझे बद्रीनाथ के एक वयोवृद्ध पडा मिले। उनसे बात हुइ। उन्होने बताया बद्रीनाथ के उत्तर मानसरोवर के किनारे से तिब्बत को एक प्राचीन माग चलता रहा है जिसे देवयान कहते थ ओर इसके दक्षिण मे नेपाल होकर दूसरा माग चला गया हे जिसे हमारी पहाडी परम्परा मे पितृयान कहते रहे हे। दोनो सडके तिब्बत मे जाकर मिल जाती है। मे अब तक देवयान और पितृयान की आध्यात्मिक व्याख्याएँ ही जानता था, किन्तु यह भौगोलिक वास्तविकता सुनकर इतिहास का एक बडा अध्याय दिखाइ देने लगा। मनु की वह उक्ति ठीक हे जिसमे कहा है—वैदिक शब्दो से ही लौकिक सस्थाये (भोगोलिक ऐतिहासिक सज्ञाएँ) बनाइ गइ।"

कविराज रत्नाकर शास्त्री ने "नरक" के सबध मे जो विचार व्यक्त किये हैं उनमे हमे भारतीय सस्कृति के महत्त्वपूर्ण साक्ष्य मिल जाते हे।

स्वग मे पचजनो का निवास था। स्वर्ग मे उन सबको "देव" कहा जाता था जब ये स्वर्ग के पचजन "नरक" मे आये तो उनकी सतानो को "मनुष्य" शब्द से पहचाना गया। यास्काचार्य ने इस शब्द की व्याख्या करते हुये लिखा है कि "मनुष्य कस्मात। मत्वा कर्माणि सीव्यन्ति।" मनुष्य को नरक मे जन्म लेकर अपने जीवन के लिए सभी प्रकार के साधन अपने मन मे उठी भावनाआ के अनुसार ही करने पडे इसलिये वह "मनुष्य" शब्द को सार्थक करता है। कालिदास ने भी कुमार सभव (12/37) में इसी विचार की पुष्टि की है

देवौकसो देवगृह विहायमनुष्यसाधारणतामवाप्ता।
यूय कुत कारणश्चरध्व महीतले मानभृतो महान्त।।—कुमार सभव 12/3

नरक का ही दूसरा नाम "मृत्युलोक" भी रखा गया। इस आधार पर मनुष्य को ही "मर्त्य" कहा जाने लगा। कठोपनिषद् मे यम ने नचिकेता से यही कहा था कि जो कामनाये मर्त्यलोक मे दुर्लभ हे—सुदरियॉ, रथ, गाजे-बाजे जो वहॉ के मनुष्यो को उपलब्ध नहीं हो सकते तुम मॉग सकते हो। मर्त्यलोक मे विशेषकर मनुष्य शब्द का प्रयोग है।

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान्कामाश्छन्दत· प्रार्थयस्व।
इमा रामा सरथा सतूर्या न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यै। (कठोपनिषद्)

स्पष्ट है, मर्त्यलोक मनुष्यो का था और स्वग लोक देवो का था। डॉ० अविनाश चन्द्रदास ने अपनी "ऋग्वेदिक इडिया" मे यह स्पष्ट किया है कि "नरक" का प्रदेश कभी पूर्ण जलमग्न था। ऊपर हिमालय नीचे विध्याचल और बीच मे समुद्र था। इसी विचार का समर्थन डॉ०

सम्पूर्णानद ने अपनी पुस्तक "आर्यो का आदि देश" के पृष्ठ 41 पर किया है कि "नरक" हिमालय और विध्याचल के बीच वाले क्षेत्र मे स्थित था।

और इसी सदर्भ मे माना गया है कि मर्त्यलोक ही दूसरे शब्दो मे नरकलोक भी है। स्वर्ग में रहने वाले देवो की भी मृत्यु होती है—परन्तु वे स्वर्ग मे ही रहकर अपना शरीरान्त करते है—इसलिये वे अमर कहलाये जाते है जबकि मृत्युलोक या नरक का प्राणी मोक्ष प्राप्ति के लिये स्वर्गलोक अर्थात्—हिमालय मे जाकर शरीरान्त करता है। हिमालय अर्थात् वर्तमान गढवाल के केदारनाथ के ऊपर स्वर्गारोहिणी हिमशिखर पर अभी कुछ वर्ष पहले तक भारत के कोने-कोने से अनेक भक्त शरीरान्त करने आते थे। क्योकि स्वर्ग प्राप्ति करना परमावश्यक समझा जाता रहा है।

स्वर्ग-नरक का भेद मिटाने का प्रयास

स्वर्ग मे देवता अथवा सुर लोग सम्पूजित थे। आर्यावर्त्त के शासन मे जब वर्णव्यवस्था स्थापित हुई, ब्राह्मणो ने अपने को देवताओ के समकक्ष सम्मानित करने के लिये ब्राह्मण का पर्याय "भू-सुर" या "मही-सुर" घोषित किया। भू, पृथ्वी, मही, वसुधा, धरा, जैसे शब्द स्वर्ग की प्रतियोगिता मे ही बने थे। स्वर्ग के देवो ने अपने प्रदेश को स्वर्ग, त्रिदिव, त्रिविष्टप, कैलाश, नदन, सुरलोक, नामक अव्यय आदि सब कुछ कहा, किन्तु धरा पृथ्वी, मही, आदि सज्ञाओ से कभी भी स्वर्ग का सबोधन नहीं किया। यही कारण है कि स्वर्ग मे दी गई शासकीय सज्ञाये रूढ है—इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गौरी, शची और रुद्र नाम स्वर्ग के निवासियो के लिए प्रयुक्त हुये है।

किन्तु स्वर्ग से नीचे नरक के लिए उन्हीं भावो मे भूपति, पृथ्वीपति, महीपति वसुधाधिप, आदि यौगिक शब्द निर्मित हुए। महीतल, धरातल, भूतल आदि शब्दो मे "तल" शब्द हिमालय से नीचे अथवा नरक की भूमि का ही बोध कराता है।" धरा धरेन्द्र हिमालय का नाम है। किन्तु उसके यौगिक रूप की व्यजना तो देखिये। यो तो हिमालय भी "भू" और "धरा" है। किन्तु उसके साथ जुडा हुआ "तल" शब्द स्वर्ग और नरक का भेद बोधक ही है। क्योकि वह स्वर्ग के तले है। तल शब्द नीचे प्रदेश का बोधक आज भी है।

कालिदास ने (रघुवश 2/50) मे लिखा था "महीतल स्पर्शन मात्र भिन्न ऋद्ध हि राज्य पदमेन्द्र माहु" जो महीतल पर नहीं आता, किन्तु जिस पराक्रमी का राज्य महान है, वह इन्द्र है। इन्द्र की यही शान थी, वह नरक मे उतरकर कभी नहीं आया, उसके सहस्त्रो प्रतिनिधि ही शासन चलाते रहे। इसीलिये वह "सहस्त्राक्ष" था।

महीतल पर आने वाले देव, नर और देविया नारियॉ नाम से पुकारी जाने लगीं, नर और नारी शब्द नरक निवासी के भाव को ही अभिव्यक्त करते है।

फिर एक समय ऐसा भी आया कि स्वर्ग की गरिमामय सस्कृति का प्रसार करने वाले ऋषिगण "नरक" मे आकर स्वर्ग की सस्कृति का विस्तार करने लगे। इन ऋषियो मे (1) मरीचि (2) अत्रि (3) अंगिरा (4) पुलस्त्य (5) पुलह (6) ऋतु (7) अचेता (8) वसिष्ठ (9) भृगु ओर (10) नारद प्रमुख ऋषि थे।

रामायण काल तक इनमे से कुछ ऋषि समाप्त हो चुके थे। कुछ अपने जीवन के उपसंहार मे चल रहे थे। नये महर्षि आविर्भत हो रहे थे। आत्रेय पुनवसु (चरक स० सू० 1/6/14) ने नई पीढी के उन महर्षियो का उल्लेख भी किया है। इसमे सदेह नहीं, स्वर्ग की सस्कृति को नरक मे अवतीण करने वाले उपर्युक्त महर्षियो ने वदनीय राष्ट्र सेवा की है। वे वेदों के द्रष्टा ओर समाज के भी द्रष्टा थे। आर्यावर्त्त, स्वर्ग, और दक्षिणपथ को एक समुदित राष्ट्र के रूप मे स्थापित करन का श्रेय उन्हीं को है। पीछे ऋषियो मे श्रेणी भेद होने लगा था। चक्रपाणि ने लिखा है ऋषियों की चार श्रेणियॉ हो गई थीं, ऋषिक पुत्र देवर्षि और महर्षि।

वश ओर विद्या का अतर ही उन ऋषियों के श्रेणी भेद का आधार था। कालान्तर मे (1) मरीचि (2) अंगिरा (3) अत्रि (4) पुलस्त्य (5) पुलह (6) ऋतु और (7) वशिष्ठ की टोली प्रमुख रूप से देव सम्कृति उजागर करने में लग गई। यह सप्त ऋषियों की टोली नरक मे वैदिक कर्मकाड और सदाचार की स्थापना के लिये इतनी आदर्श बन गइ थी कि ज्योतिष शास्त्र मे उत्तर दिशा में स्थित सात नक्षत्रो को सप्त ऋषियो का सस्मरण बनाया जो सृष्टि के अत तक अमर रहेगे।

दक्ष प्रजापति राजनेतिक व्यवस्था के लिये उत्तरदायी थे और सात महर्षि आचार मर्यादा के लिये उत्तरदायी समझे जाते थे। यही इनका अतर था अन्यथा दक्ष प्रजापतियो मे निर्विष्ट व्यक्ति ही सप्तर्षियो की टोली मे भी थे। प्रचेता, भृगु और नारद सप्तर्षियो में नहीं हैं। वैदिक चार संहिताओ मे प्राय इन्हीं महर्षियो को मत्रदृष्टा लिखा गया। इनके साथ इनके शिष्य और कुछ अन्य मित्र भी अवश्य है किन्तु प्रमुख ऋषि यही हैं। सत्य यह है कि वे मत्र द्रष्टा तो थे ही, आचार द्रष्टा, राष्ट्र द्रष्टा भी थे। ऋग्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद के अतिरिक्त इन महर्षियो के नाम से निर्मित अन्य संहिताये भी थीं जिनमे कुछ तो नष्ट हो गई और कुछ आज तक किसी न किसी रूप में उपलब्ध हे।

इन ऋषियो के अथक प्रयास से नरक की व्यवस्था दिन प्रति दिन सुधर रही थी। स्वर्ग के द्वार निर्धारित नियमो के अनुसार नरक के लोगो के लिये भी खुल रहे थे। लेकिन नरक से स्वर्ग जाने के लिये और शर्ते लगा दी गई थीं—

अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान्।
अनिष्टवा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यध ।। मनु 6/37

नरक का व्यक्ति वेद पढा हुआ हो। उसके एक से अधिक पुत्र हो और पचयज्ञ के अनुष्ठान किये हुये हो, वही स्वर्ग जाने का अधिकारी हो सकता हे।

राजाओ के लिये भी कठोर नियम निर्धारित किये गये थे।

यस्य स्तेन· पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक्।
नच साहसिकदण्डघ्नौ स राजा शक्रलोक भाक्।। मनु०8/386

जिस राजा क्रे राज्य में चोरी न हो। व्यभिचार न हो। कटु भाषी न हो। दूसरों का

अहित चाहने वाले न हो—ऐसे राजा ही—इन्द्र (स्वर्ग) के राज्य मे जाने के अधिकारी थे।

इन्द्र की पदवी ''धारण'' करने के लिये भी सौ अश्वमेध करने जैसे कठोर नियम थे। उसके बाद इन्द्र का सर्वोपरि स्थान पाने के लिये ''नरक'' के यशस्वी राजाओ मे प्रतिस्पर्धा होने लगी थी। उस समय स्वर्ग पहुँचने वालो की योग्यता और इन्द्र के स्थान को प्राप्त करने की क्षमता को निर्णय करने वाले ऋषि और महर्षि ही सर्वोच्च अधिकारी थे। यही उनका प्रजापतित्त्व था।

''स्वर्ग'' के साम्राज्य मे विद्रोह

परन्तु स्वर्ग का अधिपति सम्राट इन्द्र अपनी शक्ति को यथावत नही रख सका। वह स्वय राजनीति करने लगा। उसके ऐसे कृत्यो से समस्त स्वर्ग साम्राज्य के राजा और यहाँ तक कि नरक के राजा भी इन्द्र बनने का प्रयत्न करने लगे। वास्तव मे, स्वर्ग की राजनीति मे वह पराक्रम, त्याग, बलिदान और देवत्व की महानता नहीं रह गई थी। जो गरिमा, ब्रह्मदेव, शकर और सविता के समय थी। वह ऐसा समय था जब ब्रह्मा सारथी और रुद्र रथी और इन्द्र रथी तो मातलि उनके सारथी थे। अब तो वह युग बीत चुका था—जब नरक के लोग या स्वर्ग साम्राज्य के निवासी इन्द्र, स्वय तथा देवतागण सकट आने पर ''नरक'' की ओर सहायता के लिए निहारने लगे थे। कौशल, कैकेय और काशी के भरोसे इन्द्र का स्वर्ग का शासन चल रहा था।

सुर-असुर का भेद

स्वर्ग के साम्राज्य की स्थापना कश्यप के पुत्रो ने मिलकर की थी। दिति, अदिति, दनु और कद्रू से उत्पन्न कश्यप ऋषि की सतानो ने मिलकर स्वर्ग की समृद्धि का श्री गणेश किया था। जलप्लावन के बाद भी उनमे भाई चारा था। वे सभी भाई बान्धव ''आर्य'' नाम से ही जाने जाते थे। वास्तव मे देव-असुर एक ही अभिजन के लोग थे।

''देवसुराहवै यत्रसयेतिरे उभये प्राजापत्या'' छान्दोग्य—2/1

दिति के दैत्य और अदिति के आदित्य अन्य सभी बाधवो मे बलशाली थे। दिति के दैत्य बडे और अदिति के आदित्य छोटे थे। पहले उनमे कोई झगडा नहीं था। परन्तु कालान्तर मे इतना अधिक द्वेष बढा कि दोनों की दो सस्कृतियो ने जन्म ले लिया।

अदिति के पुत्र देव (सुर) दिति के दैत्य दनु के दानव तथा कद्रू के पुत्र असुर नाम से विख्यात होने लगे। जो काम अदिति के पुत्र करते—उसका विरोध दिति के दनु के कद्रू के नाग पुत्र करने लगे थे। अदिति के देव-दिति के दैत्यो दनु के दानवो और कद्रू के पुत्रो को अब्राह्मण, अव्रता, असुर, अकमा, अन्यव्रती, अयाज्ञिक, अमानुष, अनार्य अदेव और असभ्य कहकर (ऋग्वेद 10/22/8) दुत्कारने और अपने से अलग श्रेणी का प्राणी समझने लगे थे।

सप्त ऋषिगण और स्वर्ग के प्रमुख राजा भी अदिति के पुत्रो का साथ देने लगे थे।

यज्ञो पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा था। कश्यप के दिति दनु और कद्रू के पुत्रो ने अदिति के पुत्रो के विरुद्ध लडने का सकल्प ले लिया था। तभी उनमे निरन्तर सघष होने लगे थे। उनके मघर्षो अथवा युद्धा को सुर-असुर अथवा "देवासुर" सग्रामो के नाम से जाना जाता है। यह जानना भी आवश्यक ह कि सगे भाइयो मे ऐसी टकराहट हान के क्या कारण थे।

आर्यो के मध्य विचारो की टकराहट

यह समझना भी आवश्यक ह कि एक ही पिता के पुत्रा म "टकराहट क्यो हुइ और व सुर ओर असुर नाम से क्यो जाने गये।

इस सबध मे यह कहा जाता हे कि पहले श्रेष्ठ आर्यो की एक ही श्रेणी थी। ऋग्वेद (1/174/10) मे इन्द्र, वरुण, अग्नि और रुद्र को असुर नाम से जाना गया है। अग्निदेव को "अग्ने असुर " (ऋ 04/2/45, 7/2/3), सूर्य को "असुर सनीथा" (ऋ01/35/10), इन्द्र को 'असुरो वृहच्छवा (1/54/3) और रुद्र को भी ऋग्वेद (5/42/11) में असुर नाम से जाना गया है। इसी तरह वरुण को भी ऋग्वेद (1/24/14) मे "वरुण असुर प्रचेता राजन" कहा गया हैं।

तात्पय यह हे कि ऋग्वेद (1/24/14) मे "असुर" शब्द का शब्दाथ देवता, प्राणदाता और अनिष्ट हता के रूप मे हुआ है।

फिर ऐसा क्या कारण हुआ कि वह "असुर" शब्द सुर" शब्द से हीन हो गया। यह सब पारस्परिक द्वेष के कारण ही हुआ अन्यथा सम्पूर्ण आर्य साहित्य मे देव और असुरो को आर्य कहकर सम्बोधित किया गया है। "देव-असुर" का भाव कटुतापूर्ण नहीं दिखाई देता। पौराणिक साहित्यकारो ने रावण-कुभकर्ण और हरिण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु जैसे राक्षसो को पथभ्रष्ट आर्य मनीषी कहा है।

पथ भ्रष्ट आर्य ही असुर

अब यह प्रश्न है कि पथ भ्रष्ट आर्य कौन थे और उनका पथ कौन सा था। इस सबध मे ठोस प्रमाणो का अभाव है। परन्तु यह सर्वविदित सत्य है कि अदिति के पुत्र देव और कश्यप की दनु, दिति आदि अन्य पत्नियो की सताने असुर नाम से जाने गये थे। देवो मे श्रेष्ठ इन्द्र था। इन्द्र ने अपने स्वर्ग साम्राज्य के लिये कुछ नियम बनवाये। मनु ने आर्यो की सामाजिक, धार्मिक एव आर्थिक जीवन पद्धति के लिये कुछ शर्तो का निर्धारण किया। जो उन नियमो को नहीं मानता था उन्हे ही असुर अथवा अनार्य कहा जाने लगा। दूसरे शब्दो मे कहे तो आस्तिक विचारो के आर्य देव और नास्तिक विचारो के आर्य असुर जाने गये। उनकी पूजा पद्धति मे पर्याप्त अतर आगया था।

आर्यो की उपासना मे पहले इन्द्र, वरुण, अग्नि, मित्र और रुद्र की उपासना करने का धार्मिक प्रावधान था। अग्नि की पूजा को विशेष महत्त्व दिया जाता था। परन्तु इन्द्र के अत्यत प्रभावी होने क कारण अन्य देवताओ की उपेक्षा होने लगी। फलत दो दल हो गये। एक दल मनु के बनाये हुये नियमो का कठोरता से पालन करने लगा और इन्द्र को

सर्वश्रेष्ठ देवता मानकर उनकी पूजा करने लगा। वह दल देवताओ का दल बनकर दूसरे दल पर अपना प्रभाव अथवा अकुश जमाने लगा।

जो आर्य मनु के द्वारा स्थापित नियमो का पालन नहीं करते थे अथवा इन्द्र के प्रभाव को स्वीकार नहीं करते थे और इन्द्र से बढकर अग्नि, वरुण मित्र और रुद्र की पूजा करते थे उन्हे "अनार्य" अथवा "असुर दल" के नाम से जाना गया।

इन्द्र बहुत चालाक विद्वान, शक्तिशाली और कूटनीतिज्ञ था। उसने अपने विरोधियो को बुरी तरह से कुचलने के अनेक चक्रव्यूह रचे। कालान्तर मे उसके साथ विष्णु, रुद्र और मित्र (सूर्य) भी आकर देवपक्ष को मजबूत करने म सहायक हुये।

असुर दल में शक्शिाली योद्धा थे। उन्हे इन्द्र का छलकपट वाला शासन बिलकुल भी पसद नहीं था इसलिये उन्होने देवो का डटकर विरोध करना शुरू कर दिया। इन युद्धो के पीछे कुछ धार्मिक भावनाओ ने भी आग मे घी डालन का काम किया। जेसे देवो ने अग्नि मे मृतक शरीर को जलाने का आदेश प्रसारित किया था। इस प्रथा के विरुद्ध "असुर" खडे हो गये। वैसे तो सभी आर्य "अग्निदेव' के पुजारी थे। परन्तु असुर श्रेणी के आर्यो ने पवित्र अग्नि मे मृतक शरीरो को जलाना "पाप" का कार्य समझकर देवो का डटकर विरोध किया क्योंकि असुर अग्नि को "देवो देवाना" कहते थे।" असुर" स्वय को वैदिक धर्म के कट्टर पक्षधर मानते थे ओर इन्द्र द्वारा स्थापित धार्मिक विश्वासो नियमो, प्रथाओ को अनुचित और अधार्मिक मानकर उनका विरोध करते रहते थे। देव (सुर) पक्ष की ओर से असुर पक्ष को निरन्तर उपेक्षा मिलती रहती थी। उन्हे सम्पूर्ण आर्य जगत मे उपेक्षा और हीन दृष्टि से देखा जाता था। जो भी आर्य सत्कर्म नहीं करता था उसे "असुर" कहकर-असुरो की श्रेणी मे ढकेल दिया जाता था। उस समय यह कहा जाता था कि जो व्यक्ति आज भी दान नहीं देता, जो व्यक्ति विश्वसनीय नहीं है अथवा यज्ञ नहीं करता वह "असुर" हैं।

"तस्मादप्यद्येहाऽददानम् श्रद्धधानम् यजमान माहुरासुरोवत इति"–

ऐसे ही अनेक कारण थे कि सुर-असुरो का द्वद्व बढता गया और कश्यप की सतति असगठित होकर आर्य-अनार्य, सुर-असुर जैसे विभिन्न वर्गो मे बॉटकर एक दूसरे की परम शत्रु हो गई। अदिति के देवो, दिति के दैत्यो दनु के दानवो ओर कद्रू के नागो के बीच मे ही सघर्ष नहीं हुआ अपितु एक ही मॉ के बेटो मे भी विचार भिन्नता के कारण विद्रोह भडकता रहा और इन्हीं अनेक कारणो के फलस्वरूप सुर-असुरो मे सघर्ष होते रहे।

देवासुर सग्राम का निर्णय

सुरो (आर्यो) ने इन्द्र सुदास और सुश्रुवा आदि के नेतृत्व मे सगठित होकर असुरो (अनार्यो) के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करदी। असुर भी वृत्रासुर, शम्बर, कृष्णासुर, वरशिख, शुष्णासुर, तुग्र, चुमुरि, पिपृ, नमुचि, कुत्स आदि बलशाली असुरो के नेतृत्व मे सुरों (आर्यो) से भिड गये। पर्वत प्रदेश इन देवासुर सग्रामो मे रक्तरजित हो उठे। इन्द्र ने वृत्र का

वध किया। नागराजा कृष्ण जो सूर्य के समान अवस्थान करता था और द्रुतगामी दीप्तिमान देह धारण कर सकता था, अशुमती नदी के तट पर अपनी सेना सहित पराजित हो गया। (ऋ० 8/85/13, 14, 15)।

इन्द्र के वज्र-प्रहार से नब्बे नदियाँ (ऋ० 1/80/9) और इक्कीस पर्वत तट काप उठे (8/85/2) इन्द्र ने साठ हजार असुरो का वध किया (ऋ० 5/10/3, 6/26/6)। साथ ही 150 शत्रु सेनाओ को नष्ट किया (ऋ० 1/133/4, 5)। उसने शरत असुरो की सात पुरियो का विध्वस किया इसलिए उसका नाम पुरन्दर हुआ (ऋ० 6/20/10, 10/98/12, 10/99/7)। उसने राजा सुश्रुवा के विरुद्ध लडने वाले बीस राजाओ और उनके साठ हजार निन्यानवे सैनिको को पराजित किया (ऋ० 1/53/9)। इन्द्र ने चालीस वष से पर्वतो में छिपे हुए शम्बरासुर को खोज निकाला तथा अहि-नागो का भी विनाश किया। ऋ० 2/12/11) इन्द्र ने अपने पराक्रम से असुरराज शम्बर के विशाल प्रस्तर खडो से निर्मित निन्यानवे सुदृढ दुर्गो को भूमिसात् करके शम्बर के सोवे दुर्ग पर अधिकार कर लिया (ऋ० 7/19/5) इन्द्र की कट्टर रक्त पिपासा से अमानुषिक हृदयहीनता के कारण अनेक आर्य-पुरुष भी इन्द्र के विरुद्ध हो गये। उसने ऐसे देवो का भी निस्सकोच निर्दयतापूवक वध किया (ऋ० 10/83/1, 6/33/3)। सुर सम्राट इन्द्र ने सरयू नदी (कुमाऊँ की एक बडी नदी) के उस पार रहने वाले आर्यत्वाभिमानी अर्ण और चिवरयू नामक आर्य नरेश को भी मार डाला।

इन घटनाओ ने नि सन्देह इन्द्र के वचस्व को स्थापित कर डाला था। चारों तरफ देवो का आधिपत्य हो गया था।

देवासुर-सग्राम के बाद

इन देवासुर सग्रामो मे कितने असुरो का वध हुआ। इसकी कोई गिनती नहीं। ज्ञात होता है कि चालीस वष से अधिक समय तक देवासुर सग्राम होते रहे। अन्त मे असगठित एव नवीन अस्त्र-शस्त्रो से रहित असुरोपासक आर्यो का दल सुरो (आर्यों) के द्वारा पराजित हो गया। वे बलपूर्वक अपनी जन्मभूमि से बाहर निकाल दिये गये (ऋ० 7/5/6, 3/30/15, 16, 17, 1/133/4, 5)। कुछ आर्य-धर्म मे दीक्षित किये गये, कुछ न विजयी आर्यो के सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया और कुछ दास बनाये गये। शेष जो प्रतिष्ठित आत्मसम्मानी असुर-सामन्त थे, वे देवों की अधीनता स्वीकार न कर, अपने शेष अनुयायियो सहित सदल बल इन्द्र के स्वर्ग साम्राज्य से बाहर निकल गये। तब तक जल प्लावन का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देरहा था। अत उनका शक्तिशाली अभिमान दक्षिण की ओर न जाकर पश्चिमोत्तर प्रदेशो से होता हुआ, ईरान की ओर कालासागर तक चला गया और इन अनार्यो ने दजला, फरात नदियों के क्षेत्र मे असीरियन और सुमेरियन साम्राज्यों की स्थापना कर अपना स्वतत्र "असुर राज्य" बनाकर इन्द्र को सबसे बडी चुनौती दे डाली। यही नहीं इन असुरों ने अपने राज्य की सीमा क्षेत्र के समुद्र का नाम अपने पूवज कश्यप के नाम पर कैशिपियन सागर रख दिया।

स्वर्ग साम्राज्य पर पहला झटका

आर्यावर्त्त के स्वर्ग साम्राज्य पर पहला झटका यह लगा कि जो असुर इन्द्र से परास्त होकर अथवा इन्द्र द्वारा निकाले जाने पर पश्चिमोत्तर पारस्य, असुर क्षेत्र असीरिया और सीरिया पहुँचे थे। उन्होने वहाँ पहुँचकर अपना स्वतत्र राज्य स्थापित कर दिया। और स्वर्गलोक से सबध विच्छेद कर लिया। यह स्वर्गलोक पर असुरो का पहला प्रहार था। अब देव स्वर्गलोक मे और असुर अपने "असुरलोक (असीरिया) मे रहने लगे

कालकदोर्हृद मौयोधसुरविभागास्तु यत्र देशऽस्थु ।
सोऽसीरिया प्रदेश कैलडिया कालकेयानाम् ।।

—(इन्द्र विजय श्री मधुसूदन विद्यावाचस्पति, सीमा प्रसग-54

रत्नाकर शास्त्री ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ 67 पर स्वर्ग और नरक का मानचित्र दिय है। इस चित्र मे कालासागर और कैशिपियन सागर के दक्षिण वाले सम्पूण भू भाग को स्वग के साम्राज्य का अग दिखाया था। परन्तु असुरो के आजाने और स्वर्ग के सम्राट इन्द्र को परास्त कर लेने के बाद सम्पूर्ण असीरिया का क्षेत्र असुरो के अधीन हो गया। यह स्वर्ग साम्राज्य के पतन का पहला अध्याय माना जाता है।

इस मानचित्र से यह भी ज्ञात होता है कि देवासुर सग्राम के तत्काल बाद स्वर्ग के साम्राज्य मे उत्तर गाधार, गधर्व लोक कुलूत, दक्षिण गाधार, नागलोक, देवलोक और प्राग्ज्योतिष के क्षेत्र ही रह गये थे।

नरक मे, हिमालय की तलहटी से लेकर विध्याचल सौवीर क्षेत्र, बगाल की भूमि और दक्षिणपथ का क्षेत्र समाहित था।

आर्यावर्त्त (स्वर्गलोक) से जाने वाले असुर

देवासुर सग्राम के बाद श्रेष्ठ और शक्तिशाली तथाकथित असुर अपना देश छोडकर पश्चिमोत्तर देशो मे चले गये। ऋग्वेद (7/5/6, 3/30/15, 1/133/4-5) के अनुसार कुछ असुरोपासक आर्यो (अनार्यो) को बलपूर्वक जन्मभूमि से बाहर निकाल दिया गया था। वे सभी असुरोपासक आर्य असीरिया की ओर चले गये। इनके नेता जरूथ थे जिनको पारसी धर्म के लोग अपना पैगम्बर मानते है

असुर सम्राट जरूथ और असुर राज्य

ऋग्वेद (7/1/7 तथा 7/9/6) से ज्ञात होता है कि देवो ने असुरो को बहुत कष्ट दिया और उनके नेता जरूथ की झोपडी तथा आश्रम को जलाकर उन्हे मार डालने का पूरा प्रयास किया। परन्तु जरूथ बच गये।

इस सबध मे पारसियो के पेगम्बर भी ऋग्वेद (7/5/6) मे वर्णित इस घटना का समर्थन करते है कि आर्यो द्वारा उन्हे अपने देश के बलपूर्वक निकाला गया था। पारसियो के धर्मग्रथ "अस्तन्वेतिगाथा" मे जरथ्रुष्त (जरूथ) की गाथा का पूर्ण विवरण दिया गया है।

इसमे तनिक भी सदेह नहीं है कि पारसी धर्म की स्थापना आर्यावर्त्त के असुरोपासक जरूथ (जरूथस्त) ने ही की थी।

''जरूथुस्त्र'' के सबध मे ''भविष्यपुराण'' मे भी लिखा है–

वेदोंक्त विधिसुत्सृज्य यतोऽह लंघितस्त्वया
तस्यान्मय· समुत्पन्नस्तव पुत्रो भविष्यति
जरथुस्त्र इतिख्यातो वश कीर्तिविवर्द्धन
अग्निजात्या मगा प्रोक्ता सोमजात्याद्विजातय (139/43, 45)

अथात् वेदोक्तविधि के विरुद्ध तेरे द्वारा मै जो उल्लघित किया गया हूँ, इससे मेरा पुत्र ''मग'' नाम से प्रसिद्ध होगा। उसका नाम ''जरथुष्त्र'' मग होगा और वह अपने वश की कीर्ति को बढाने वाला होगा। इसके वशज अग्नि की उपासना करने वाले मग (शक) के नाम से प्रसिद्ध होगे।

''मग'' महाराज ययाति के तुवसु आदि तीन पुत्रा के अधिकार मे भारत की सिन्धु नदी के पश्चिम मे पचाण के नाम से एक प्रसिद्ध राज्य था। पाणिनी ने भी जरथ्रुष्त को गान्धार देशवासी, पौरसस्य ओर उसकी पत्नी ''दुग्धा'' का पुत्र कहा है।

जरथुस्त के नेतृत्व मे असुरोपासक आर्यो के इस शक्तिशाली अभियान ने ईरान (आयन) आदि देशो मे पहुँचकर दजला ओर फरात नदी प्रदेश मे अत्यत समृद्धिशाली सुमेरियन एव असीरियन साम्राज्यो की स्थापना की। वहाँ व्यवस्थित होने के बाद उन्होने अपने आदि देश की कई सुखद और दु खद अनुभूतियो को लिपिबद्ध कर सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया। असुरो के इसी अभियान द्वारा मित्र, वरुण, अग्नि, वायु, यम आदि वैदिक देवी-देवताओं के नाम, जलप्लावन की घटना, वैदिक उपाख्यान, वैदिक शब्द-भडार और असुरी सस्कृति एशिया माइनर होती हुई यूरोप तक जापहुँची थी। परन्तु वहाँ भी वे अपने आदि देश सप्त सिन्धु को हप्तबिन्दु, सरस्वती को हरवती, सोम को होम सरयू को हरयू के रूप में स्मरण करते रहे।

पश्चिमी विद्वानो का मत

प्रो० मैक्समूलर 'साइन्स ऑफ लैग्वेज' मे लिखते है, उत्तरी भारत मे एक-एक उपनिवेश जोराष्ट्रियन लोगो का भी स्थापित था। वे कुछ समय तक उन साथियो के साथ भी रहे जिनकी पवित्र ऋचाए हमारे लिये वेदों मे सुरक्षित है, परन्तु किसी मतभेद के कारण जोराष्ट्रीयन लोग भारत से पश्चिम की ओर ईरान चले गये।''

''लास्ट रिजल्टस ऑफ दि पर्सियन रिसर्चेज'' (पृ० 112, 113) के अनुसार जोराष्ट्रियनों ने तथा उनके पूर्व पुरुषो ने वैदिक युग मे भारतवर्ष से इरान मे प्रवेश किया, इसके समर्थन में कई प्रमाण उपलब्ध है। जिन देवी-देवताओं के नामो से यूरोप निवासी अपरिचित है वे सस्कृत भाषा और पारसियो की जेन्द म, एक ही नाम से पूजे जाते है। भारतवर्ष फारस के प्राचीन धर्म और पुराणो मे भी विचित्र साम्य है। सस्कृत के कुछ पूज्य देवताओं के नाम

जेन्द मे निकृष्ट रूप मे वर्णित है। अत देवी-देवताओ के सबध मे जहॉ उनमे कुछ मतभेद प्रमाणित होता है, वहॉ यह भी स्पष्ट सिद्ध होता है कि वे किसी समय आर्यो के साथ ही रहते थे और किसी सामाजिक अथवा धार्मिक मत भिन्नता के कारण एक दूसरे से पृथक होगये थे। इस कथा का समर्थन अन्य विद्वान भी करते है। इसका पूण विवरण "द वैदिक एज" (सपादक रा० च० मजूमदार) के पृष्ठ 227 पर अकित है।

डॉ० हॉग ने अपनी प्रसिद्व पुस्तक "ऐतरेय ब्राह्मण" की भूमिका के पृष्ठ 2-3 पर लिखा है, "ब्राह्मण और पारसियो के पूर्वज सजातीय के रूप मे निर्विघ्नतापूर्वक साथ-साथ रहते थे। वह देवासुर सग्रामो के पूर्व का समय था, जिनका उल्लेख ब्राह्मण ग्रन्थो मे हुआ है। ब्राह्मणो के लिए देव शब्द तथा ईरानियो के लिए असुर शब्द प्रयुक्त हुआ है।"

इन टिप्पणी से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्यावर्त्त (स्वर्गलोक) से पश्चिमोत्तर दिशा मे जाने वाले असुर ईरान आदि देशो मे जाकर बस गये और वहीं उन्होने अपना साम्राज्य स्थापित कर अपनी उत्तर वैदिक सस्कृति का प्रचार-प्रसार किया।

पारसी धर्म मे देवो के प्रति घृणा

यह स्वाभाविक है कि असुरो के हृदयो मे देवो के प्रति घृणा भाव उत्पन्न हो गया था। इसीलिये उत्तर वैदिक वाड्मय मे आर्यो द्वारा व्यक्त असुर शब्द मे जो घृणा भाव है वही भाव पारसियो द्वारा प्रयोग किए जाने वाले देव शब्द मे अभिव्यक्त है। पारसी धर्म मे मित्र, यम, वरुण, वायु, अग्नि आदि वैदिक देवताओं को असुर और असुरो के कट्टर शत्रु इन्द्र को बुरी आत्माओ अर्थात् देवो का राजा कहा गया है। देवासुर सग्राम के पश्चात् देवो और असुरो का कट्टर मनोमालिन्य पारसी धर्म-ग्रन्थो (जोरास्टर, यस्न, 12/1) मे अकित है—"मुझे जोरास्टर (अहुरमज्द के पूजक को) देवो का शत्रु और असुरो का भक्त बनना स्वीकार है। मै दुष्ट, बुरे, असत्यवादी और असत्य एव बुराई के जन्मदाता उन देवो का परित्याग करता हूॅ जो अत्यत विषाक्त सघातक तथा सपूर्ण जीवो से अधिक पतित है। मै उन पतित देवो के धर्म की अपेक्षा इस असुर धर्म का प्रशसक हूँ, वह मुझे प्रिय है और स्वीकृत है। जोरास्टर यस्न (12/1) मे जो भाव व्यक्त हुये है उनसे भी स्पष्ट ज्ञान हो जाता है कि प्रत्येक असुर अपने आप असुर कहने मे गौरव अनुभव करता था। पारसी धर्म असुर धर्म की ही प्रतिछाया है।

सोमरस का विरोध

देवताओ को सोम प्रिय था, इन्द्रदेव को तो वह सर्वप्रिय था। उसने घडो सोमपान कर असुरो का वध किया था। इसलिए सोम के आध्यात्मिक महत्त्व को स्वीकार करते हुए भी पारसियो की "अहुनवैतीगाथा" (यस्न 32) मे वैदिक देवताओ के उस अत्यन्त प्रिय सोम के विरुद्ध लिखा है "हे देवो! तुम उसी बुरी शक्ति से उत्पन्न हो जो सोम की मादकता के द्वारा तुम पर अधिकार कर लेती है। मानव जाति को ठगने और उनकी हिसा करने के लिए वह तुम्हे अनेक उपायो द्वारा प्रेरित करती है, जिसके लिए तुम लोक विख्यात हो।"

पारसियो की ''सपेन्टा मैन्यूस'' गाथा मे भी देवो के उस सर्वप्रिय सोम के विरुद्ध लिखा है, ''हे बुद्धिमान' उस उन्मत्तकारक मय (सोम) को भ्रष्ट करने के लिए साहसी और दृढ निश्चयी पुरुष कब जन्म लेगे। यह पैशाचिक कम मूर्ति पूजने वाले पुरोहितो को अत्यन्त घमडी बना देता है। ओर वह पतित आत्मा देश पर शासन करती हुइ उस अभिज्ञान मे वृद्धि करती है।'' इस कथन का उल्लेख डॉ० हॉग ने अपनी पुस्तक ''पारसी धर्म'' के पृष्ठ 159 पर किया हे।

उपयुक्त उद्धहरणो से तथा प्रो० मैक्समूलर आदि विद्वानो के मतानुसार, स्पष्ट है कि स्वगलोक आर्यावर्त्त क उत्तराखड क्षेत्र से पराजित असुरापासक आर्यो का एक शक्तिशाली दल ईरान की ओर गया और वह जलप्रलय ओर उसके पश्चात् होने वाले देवासुर सग्राम की कटु स्मृति भी साथ लेता गया। असीरियन साम्राज्य की स्थापना के उपरान्त उक्त प्रलय वृत्त तथा आर्यो के देवताओ के प्रति ''असुरो'' का उग्र असतोष उनके धर्म ग्रथो मे भी सुरक्षित है। स्मरणीय है कि उपर्युक्त विचारो को सत्य मानने वाले विद्वान् भारतीय आर्यो को जोराष्ट्रियनो के ईरान से होकर भारत मे आने का उल्लेख नहीं करते, वरन् जोराष्ट्रियन आर्यो का भारत से जने का उल्लेख अवश्य करते हे।

उपरोक्त उदाहरण स्वय मे साक्ष्य हे कि असुरो का प्रभाव क्षेत्र इरान से लेकर असीरियन तक फेल चुका था। इन देशो के ये असुर स्वय को श्रेष्ठ आर्य मानते थे। अपने क्षेत्र को ''आर्यन'' कहकर गोग्वान्वित होते थे। अवेस्ता की भूमिका के पृष्ठ 1 से 8 तक उक्त विचारधारा का विस्तृत विवरण मिलता है। वास्तव मे आयन क्षेत्र ही ईरान बना।

इस घटना को विद्वान इतिहासकार ईसा पूव 4500 वर्ष से 3600 वर्ष ईसा पूव बताते हे। चाक्षुष मनु के समय मे भी आयावत्त का विस्तार असीरिया नक फैल चुका था। परन्तु असुरोपासक आर्यो का वर्चस्व पश्चिमोत्तर के इन देशो मे देवासुर सग्राम के बाद स्थापित हुआ।

आर्यावर्त्त अर्थात् स्वर्गशासन मे दरारे

पहले स्वगशासन को प्रभाव असीरियन तक फेला हुआ था। असुरो के विरोध के कारण आर्यावर्त्त अथात् स्वग के शासन मे दरारे पडनी शुरू हो गई। अनेक राज्यों में अलगाव की भावनाये उत्पन्न होने लगी। ''असुर राज्य'' के बनने से आर्यावर्त्त के एकछत्र शासन मे अनेक छिद्र होने लगे। आर्यो के गृह कलह के फलस्वरूप कुन्त, मद्र, वाह्लीक और उत्तरकुरू नामो से वह प्रदेश टूटा। परिस्थिति यहॉ तक बिगडी कि कुन्त मे भी विप्लव होकर सिथिया, पर्थिया और मीडिया राष्ट्र बने। वाह्लीक और उत्तरकुरू भग होकर वैक्ट्रिया, तुरूष्क और सिमकियाग बन गये। गधार भी विद्रोह के साथ था। राजनैतिक दूरियॉ बढती गई। हम एक थे, अनेक हो गये। फिर पूव मे त्रिविष्टप भी छिन्न-भिन्न हो गया। अमरावती में मृत्यु ने भीषण ताण्डव किये। किन्तु शकर के त्रिशूल ने दक्षिणपथ और गधार को ही नहीं, सारे स्वर्ग को शत्रुओ से खाली कर दिया। देवताओ की बेटी होकर भी शकर की भवानी खाडा और त्रिशूल लेकर रणक्षेत्र मे चमक उठी। कार्तिकेय सेनापति थे और गणेश गृहमत्री। असुरों,

पिशाचो और दस्युओ के दिल काप गये। अब स्वर्ग का सम्मान त्रिविष्टप मे नहीं कैला मे निवास कर रहा था। विश्व मे नागवशियो की धाक बैठ गई। पुरातत्त्व की खुदाइयो नागमुद्रावाली मूर्तियॉ प्राप्त हाती है जिन्होने रणक्षेत्र मे वैरियो के छक्के छुडा दिये। स्व फिर सगठित हो गया।

स्वर्ग सगठित न रह सका

इन्द्र की कूटनीति के कारण सभी असुर भावना के अर्थ, निरन्तर विरोध मे आन ल स्वर्ग के सिहासन पर उनकी दृष्टि लगी रहने लगी। कश्यप द्वारा दिति के गर्भ से हिरण्यकशि और हिरणयाक्ष दो पुत्र और सिहिका नाम की कन्या हुई थी। बलि, नमुचि और शम्ब भी उसी वश परम्परा मे थे, जो देवताआ की राजनैतिक परम्परा के विरुद्ध सौ यज्ञ बि किये ही इन्द्रासन पाने का प्रयास करने लगे, असुरलोक (असीरिया) से शक्तिशाली असुर स्वर्ग साम्राज्य" ओर इन्द्र के विरुद्ध निरन्तर सघर्षरत रहे। इसका परिणाम यह हुआ ि एक बार देवो को परास्त कर हिरण्यकशिपु इन्द्रासन पर विराजमान हो गया। इसका उल्ले माघ (1/42) ने भी किया

अभूदभूमि· प्रतिपक्षजन्मना भिया तनूजस्तपनद्युतिर्दिते ।
यमिन्द्रशब्दार्थनिबूदन हरेर्हिण्यपूर्ण कशिपु प्रचक्षते।।

असुरो के भयकर आक्रमणो ने देवो का दिल दहला दिया था। इन्द्र, उस समय देवताउ (सुरों) की रक्षा करने मे असफल हो गया था। इसीलिये उस कालखड मे हजारो की सख्र मे देवता नरक की भूमि मे आकर बसने लगे थे। विष्णु पुराण (1/17/5) मे इस घटन का उल्लेख है

देवा स्वर्ग परित्यज्य तत्रासान्मुनिसत्तम्।
विचेरूरघनों सर्वे विभ्राणा मानुषीं तनुम्।।

यह वह समय था जब देवा (सुर) स्वर्ग छोडकर काशी को अपना केन्द्र बनाने मे जु गये थे। नरक की सारी शक्तिया काशी मे "आर्यावर्त्त" के नाम से सगठित होने लगीं थीं "स्वर्ग" के समान "काशी" को प्रतिष्ठा मिलनी शुरू हो गई थी। उस कालखड मे स्व की सारी शक्ति सिमटकर नागों के हाथ आचुकी थी। परन्तु कालान्तर मे जन्मेजय के नागयइ मे नागो को भी मार दिया गया था। उस समय की घटनाये प्राचीन इतिहास की धरोह है।

गाधार का विद्रोह

असुरो का अलग राष्ट्र असीरिया के बन जाने के बाद दूसरी विशिष्ट घटना गाधा का विद्रोह मानी जाती है। गाधार के विद्रोह ने स्वर्ग साम्राज्य की दीवारे पूरी तरह हिल दीं थीं। उस समय काशी मे धन्वन्तरि का शासन था।

भेड ने अपनी भेड सहिता मे आत्रेय की गधार यात्रा का उल्लेख किया है। उस समय

नग्नजित वहॉ का सम्राट था। वह अत्यत विद्वान और पराक्रमी था शतपथ और ऐत
ब्राह्मणो मे भी नग्नजित का उल्लेख है। उसने अनेक यज्ञ कर डाले इसलिये भारी सामाजि
प्रतिष्ठा उसे प्राप्त हुई। उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई सम्राट खडा नहीं रह सका। उस
पूरा नाम "दारूवाह नग्नजित्" था। नग्नजित के लिए वहॉ "स्वगमार्गद " विशेषण लि
गया। वह स्वग म चाहे जिसे जाने दे जिसे न चाहे न जाने दे। इन्द्र, कुबेर, शकर अ
शतनु उस समय नग्नजित् की कृपाकोर के काक्षी थे। स्मरण रहे नग्नजित् प्रह्लाद का शि
था। वह प्रह्लाद, जिसके पूर्वज बलि और हिरण्यकशिपु जैसे असुर थे। वे सभी स्वर्ग के ि
शत्रु थे। ये न जीत सके। महाभारत आदि पर्व 63 के अनुसार प्रह्लाद ने नरक की शक्ति
से मिलकर स्वर्ग के विरुद्ध अभियान चालू रखे।

असुरो के अभियानो का ऐसा परिणाम हुआ कि इन्द्र का शासन डगमगा गया। उ
समय स्वग का व्यापार काम्बोज वाल्हीक और पुष्कलावती से होकर चल रहा था। म
गाधार होकर अमरावती जाता था। नग्नजित् का नाम अश्वपति युधाजित् भी था। व
पश्मिोत्तर कैकेय गाधार का शक्तिशाली सम्राट था। उस कालखड मे अश्वपति युधाजि
को राजा दशरथ ओर अज का पूरा सहयोग प्राप्त था। अश्वपति युधाजित (नग्नजित्) व
बहन कैकेयी का विवाह दशरथ हुआ था।

इन्द्र को नरक की सहायता

नरक मे रहने वाले आर्यो का झुकाव देवो की तरफ अधिक था। नरक मे भी दे
सस्कृति का ही बोलबाला था। जब असुर राज्य असीरिया से देवो के विरुद्ध आक्रमण
रहे थे तो उस समय नरक का समृद्ध शासन काशी के राजा धन्वन्तरि के हाथ मे था
धन्वतरि ने डटकर इन्द्र का साथ दिया। धन्वन्तरि ने न केवल राहु केतु और बलि जै
असुरो को परास्त करने मे इन्द्र की सहायता की बल्कि आयावर्त्त का साम्राज्य भूमध्यसाग
तक "धन्व" के उस पार तक पहुँचाने मे पूर्ण योगदान दिया।

काशी ओर कौसल के राजाओ ने इन्द्र की सहायता प्रत्येक कठिनाई के समय मे व
थी। सूर्यवशी इन सम्राटो ने दक्षिणपथ के राक्षसो का विध्वस करने मे विशेष योगदान ह
नहीं दिया प्रत्युत पश्चिमोत्तर देशो की ओर से उठने वाले असुर पिशाचो के आक्रमणो क
भी बडी वीरता से कुचला।

उस समय कौसल और काशी के सम्राट भी अश्वमेध यज्ञ का स्वर्ग साम्राज्य की प्राप्ति
हेतु प्रयास करने लगे थे। नरक का स्वर्ग पर आधिपत्य करने का प्रयत्न था। इसी क्रम
मे रघु का अश्वमेध यज्ञ उनकी दिग्विजय का एक प्रशसनीय प्रयास था।

पश्मिोत्तर देशो मे अपनी विजय का झडा फहराने के लिए रघु ने समुद्री मार्ग का अनुसरण
किया। रघु दिग्विजय करते हुये अदन होकर लालसागर पार कर भूमध्यसागर (अपरात सागर
अथवा कैशिपियन सागर के कोने तक पहुँचे थे। वही क्षेत्र अब तक आर्यावर्त्त की अंतिम
सीमा का क्षेत्र बना था।

रघु को कर देने वाले उस समय महत्त्वपूर्ण देश मिस्र (ईजिप्ट), असुरलोक (असीरिया)

और यवन (यूनान) प्रमुख थे। इसका विवरण रघुवश (4/58) मे भी दिया हुआ है

अवकाश किलोदन्वान् रामायाभ्यर्थियों ददौ।
अपरान्त महीपाल व्याजेन रघवे करम्।।—रघुवश 4/58

उस समय रघु का विरोध करने वाला तत्काली "पारस्य" राज्य था। उस पारस्य राज्य को रघु ने स्थलमार्ग से जाकर परास्त किया था

पारसीकास्ततो जेतु प्रतस्थे स्थल वर्त्मना।—रघुवश 4/60

यह भी ऐतिहासिक तथ्य है कि "पारस्य" ने रघु के पिता दिलीप की दिग्विजय मे भी विद्रोह किया था। रघु ने पारस्य को परास्त कर उनके विद्रोह को समाप्त किया।

आर्यावर्त्त मे रहने वाले जो लोग या राजा स्वर्ग जाना चाहे वे वैदिक यज्ञ-योग किया करे। यह परिपाटी शताब्दियो तक रही। अपना पद् छीन लेने के भय से इन्द्र ने रघु को पूरे सौ यज्ञ नहीं करने दिये थे। कालिदास ने इस इतिहास को भी रघुवश मे लिखा है। किन्तु इन्द्र की इस कुटिलता के परिणामस्वरूप नग्नजित् गधर्व, एव असुर शासक बलि ने बिना यज्ञ किये ही स्वर्ग पर आक्रमण कर दिये थे ताकि वह इन्द्र बन जाये। इनके प्रतिकार के लिये इन्द्र को पहले काशी, और तदुपरान्त कोशल के सूर्यवशी सम्राटो की सहायता लेनी पडी। अज, रघु और दशरथ तीनो के इतिहास मे कालिदास ने उस सहायता का उल्लेख (रघुवश) 6/72 तथा 81 और 9/19-22) मे किया है।

हूणो का विद्रोह

"रघुवश" मे कालिदास ने वर्णन किया है कि देवो के विरुद्ध केवल असुरो ने ही विद्रोह नहीं किया बल्कि तुर्को, हूणो और शको ने भी विद्रोह का झडा खडा किया था। कालिदास के इस वर्णन को कई विद्वान चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की दिग्विजय से जोडने का प्रयत्न करते है। परन्तु जिन्हे सुर-असुरो के मध्य हुए सघर्षो और तत्कालीन पिशाच आदि लोगो के विद्रोहो की जानकारी है वे भली भॉति जानते हे कि कालिदास ने देवासुर सग्राम और उसके बाद की घटनाओ का वर्णन अत्यत कुशलता से किया है। इन वर्णनो मे उस समय के राजनीतिक एव सामाजिक स्थितियो का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। हम कुछ उदाहरणो मे तत्कालीन समाज की झलकियो के दर्शन कर सकते है।

जब रघु ने अपने दिग्विजय के अभियान मे गाधार पर विजय की थी तो उस समय गधार के गणनायक लोग रघु के सामन फलो से लदे अखरोटो के पेडो की भॉनि झुक गये। और घोडो पर सोना, चॉदी तथा अन्यान्य बहुमूल्य भेट लाद-लादकर रघु के चरणो मे अर्पित करने लगे। रघु के दो पीढी बाद जब राम ने राज्य सभाला ओर भरत को उनके मामा अश्वपति युधाजित् की इच्छा से गधार का शासन सूत्र सौपा तो किसी ने भेट नहीं दी, प्रत्युत शस्त्र उठाये। भरत को अयोध्या से बडी सेना लेकर युद्ध करना पडा। तब कहीं तक्षशिला मे अपने पुत्र तक्ष और पुष्कलावती मे पुष्कल को शासन करने के लिये बैठा पाये। कालिदास ने उस स्थिति और समय का निम्न श्लोको मे चित्रण किया है

भरतस्तत्र गंधर्वान्युधिनिर्जित्य केवलम्।
आतोद्य ग्राह्यामास समत्याजयदायुधम्।।—रघु 15/88
सतक्षपुष्कलौ पुत्रौराजधान्योस्तदाख्ययो ।
अभिषिच्याभिषेकार्हौ रामान्तिकमगात्पुन ।।—रघु 15/89

रघु के दिग्विजय के समय "पारस्य" के समान हूणो ने भी विद्रोह का झडा उठाया था। समय-समय पर इन हूणो ने इन्द्र के साम्राज्य पर भी अनेक बार आक्रमण किये थे। स्वर्ग के साम्राज्य पर हूणो की ललचायी दृष्टि सदैव रहती थी। रघु ने जिन हूणों को परास्त किया था—वे अपना सगठन बनाकर विद्रोह पर उतरते रहते थे

तत्रहुणावरोधाना भर्तृषुव्यक्तविक्रमम्।
कपोलपाटलादेशि बभूव रघुविक्रमम्।।—रघु 4/68

और वे (हूण) अपने बबर आक्रमणो से स्वर्ग साम्राज्य की श्री और समृद्धि को नष्ट करते रहते थे। एक समय ऐसा भी आया कि स्वर्गाधिपति इन्द्र के विरुद्ध नग्नजित् ने तुरुष्क (तुर्की) के हूण और शकस्थान (ताजिकिस्तान) के शको को सगठित करके स्वर्ग पर बर्बर अभियान किये। उत्तर मे निषध ओर कश्मीर की ओर दक्षिण पश्चिम के केकेय सौवीर और मद्र को शको और हूणो ने गधर्वो की आड मे जिन अनैतिक अनाचारो के साथ लूटा, बर्बरता का दिल भी दहल गया। इतिहास ने एक बात अमिट सत्य कही—जिस विद्रोही ने आततायियो को साथ लेकर कही आक्रमण किया, वह विद्रोही विश्व के मानचित्र से सदा के लिये मिट गया। फिर गधव ही कैसे बचते। स्वर्ग के पचजन मे से गधार ही सबसे पहले समाप्त हुआ।

जैसाकि हम पहले वर्णन कर चुके है कि राजा दिलीप और रघु के दिग्विजय अभियानों मे पारस्य" (पारसिकों) के लोगो ने विरोध किया और दोनो बार पारसिको को परास्त होना पडा था। तब उनका साथ हूणो ने ही दिया था। पारसिको की तरह हूण भी असुर आर्यो की सन्ताने थीं। हूणो के बर्बर आचरण के कारण उन्हे म्लेच्छ भी कहा जाता था। हूणों के सबध मे महाभारत के "आदिपर्व-39" वे मे इस प्रकार कहा गया है कि उनकी उत्पति कामधेनु के मुख के फेन से हुई थी

चिबुकाश्च पुलिन्दाश्च चीणान् हूणान् सकेरलान्।
ससज फेनस सागौ म्लेच्छान् बहु विधानपि।।

असुरोपासक आर्यो के साथ जो दल आर्यावर्त्त (स्वर्ग साम्राज्य) से पश्चिमोत्तर गये थे। उन्हीं मे कुछ दल के लोग हूण कहलाने लगे थे। अनेक दल थे। अनेक दलपति थे। प्रत्येक दल का निशाना इन्द्र के स्वर्ग साम्राज्य पर होता था। इसीलिये पश्चिमोत्तर देशो के विभिन्न जाति के लोग इन्द्र और उसके साम्राज्य पर आक्रमण करते रहते थे। हूण उनमे प्रमुख थे। "हूण" भयकर आतक मचाने वाले वीर योद्धा थे, उनकी आक्रमण करने की कला अनोखी थी। वे एक हाथ मे तलवार और दूसरे हाथ मे मशाल लेकर युद्ध करते थे। डेन्यूब से लेकर

सिन्धु तट तक उनके भयकर आक्रमणो की गाथाऍं रामायण और महाभारत काल तक मिलती है।

रामायण काल मे दिलीप, रघु से लेकर भरत के पुत्र "तक्ष" तक ने हूणो के आक्रमणो को रोका ही नहीं अपितु उन्हे परास्त भी किया था। उसी तरह महाभारत काल मे पाडु पुत्र नकुल ने हूणो को परास्त किया था। महाभारत (सभापर्व-29-11) के अनुसार नकुल की हूणो पर विजय प्राप्त करने का स्पष्ट उल्लेख है। नकुल ने हूणो को बुरी तरह से परास्त किया था। इसीलिये "हूण" किरात, तगण और खशो के साथ मिलकर पर्वतीय क्षेत्र मे रहने लगे थे। मारकण्डेय पुराण (57-35) मे लिखा है

अतोदेशान प्रवस्यामि पर्वताश्रयिणाश्च ये।।
निराहारा, हसमार्गा कुरवस्तगणा खषा।।
कर्ण प्रावरणार्श्चव हूणा दार्वा सुहृदुका।।

वास्तव मे, "हूण" असुरो की श्रेणी वाले दैत्य, दानव थे जो अपनी विशिष्ट सैन्य प्रणाली और बर्बरता के कारण म्लेच्छ और उसके (म्लेच्छ के) पर्याय हूण-हार हूण नाम से विख्यात हुये। सुर-असुर सग्राम के बाद हूणो का प्रभाव क्षेत्र पश्चिमी देशो मे अधिक बढा। इसीलिये यूरोप मे उन्हे "काले हूण" और फारस मे "श्वेत हूण" की श्रेणियो मे जाना गया। परन्तु उनकी वीरता को सभी ने स्वीकारा। बोरखारी भाषा मे हूणो को "हैतल" नाम से जाना जाता है। "हैतल" का अर्थ बलिष्ठ पुरुष होता है। आक्सस (आवजल) के तट पर उनका (हूणो का) निवास था। इसलिये उन्हे "अबेतले" नाम से भी जाना गया था। जे० जे० मोदी ने अपनी पुस्तक "अर्ली हिस्ट्री आव द हुन्स" के पृष्ठ 545 और पृष्ठ 656 पर इसका विवरण लिखा हुआ है। काले हूणो के वशज आज भी यूरोप मे "मैग्यार" नाम से जाने जाते हैं। इनकी बोली-भाषा आज भी पश्चिमी तिब्बत के मानसरोवर और सतलुज क्षेत्र के निवासियो की बोली-भाषा के अनुरूप है।

गढवाल-कुमाऊँ के लोग भी कैलाश मानसरोवर और सतजल क्षेत्र के लोगो को 'हुणिया' नाम से पुकारते है। रामायण-महाभारत काल से इस क्षेत्र के हुणियो का सबध उत्तराखड के निवासियो के साथ रहा है और वह सबध आज भी पूर्ववत् चला आरहा है। माकण्डेय पुराण मे हूणो का जो सबध तगण, किरात और खसो के साथ बताया गया है—वह सबध आज भी उत्तराखड मे बना हुआ है। क्योकि उत्तराखड के खसो, तगणो और किरातो का "हूणों" से रोटी" बेटी तक का सबध रहा है। आज सब एक दूसरे मे समा गये है—परन्तु "हुणियो" का अलग से अस्तित्त्व-उत्तराखड म आज भी पूववत् बना हुआ है।

हूणो का क्षेत्र

वैसे तो देवासुर सग्राम के बाद से ही खानाबदोश लडाकू कबीलो के रूप मे हूणो की पहचान होने लगी थी और उनका मुख्य निवास स्थान आज का मध्य एशिया का भू-भाग माना जाता था। फिर भी इतिहासकारो मे मत-भिन्नता थी। क्योकि हूणो का लडाकू कबीला

एक स्थान पर नहीं रहता था। अनेक दलो मे बॅटकर ''हूण'' अलग-अलग क्षेत्रो मे पहुँचकर भयकर युद्ध करते थे। और उन्हीं क्षेत्रो मे बसकर अपना राज्य स्थापित कर लेते थे।

परन्तु, यह सत्य है कि तिब्बत से लगे पश्चिमी प्रदेशो मे हूणो का आदि स्थान था। इस बात की पुष्टि इस तथ्य से भी हो जाती है कि पश्चिमा निब्बत स लडाकू हूण अपने एक कबीले के साथ बोलगा ओर वक्षु नदियो के तट पर जाकर बस गये थे। यह बात इसा से 200 वप पुरानी हे। तब वक्षु तट वाले हूण ''श्वेत हूण'' ओर बोलगा तट वाले हूण—''काले हूण'' विख्यात हुये। जिन्होने सपूण यूरोप मे भयकर उत्पात मचाया था।

इतिहास की चुप्पी और हूणो का पुन वर्चस्व

इसा पूव 200 वर्ष के बाद से लेकर ई० 421 तक हूणा का भयकर रूप अज्ञात सा रहा। इस कालखड मे हूणो के सबध मे कोइ ठोस जानकारी नहीं मिलती। बल्कि इस कालखड मे कोइ विशेष घटना भी न्हीं घटी। इतिहास की इस चुप्पी ने हूणा की गनिविधियो को भी खामोशी के वातावरण मे ही रहने दिया।

सन् 421 ईसा मे फारस देश की सीमा पर श्वेत हूणो की भयकर गतिविधियॉ शुरू हा गई। हूणो ने पहले फारस देश को जीता। फिर वे अनेक देशा को परास्त करते हुये भारतवर्ष मे पहुँचे। उस समय भारत मे गुप्त का शासन था। हूणो का स्कन्दगुप्त स भीषण युद्ध हुआ। यह उल्लेख भितरी स्तम्भ अभिलेख मे इस प्रकार किया गया

हूणोर्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्या धरा कंपिता

इस घटना के बाद हूण सरदार तोरमाण का शासन मालवा मे हो गया। वह सन् 500 ईसा का समय था। उसके बाद हूण मध्य भारत, दो आवे के क्षेत्र से आगे बढते हुये बगाल तक पहुँच गये थे।

मन्दसौर स्तम्भ अभिलेख के अनुसार हूण नरेश तोरमाण के पुत्र मिहिरकुल को गुप्त नरेश बालादित्य ने परास्त किया। मालवा मे ही यशोधर्मन ने हूण नरेश मिहिरकुल को बुरी तरह परास्त कर अपना आधिपत्य स्थापित किया।

भ्रातपूर्ण धारणा

उपरोक्त घटना को आधार बनाकर कुछ इतिहासकार कालिदास को गुप्तकालीन सिद्ध करने का प्रयास करते है। उनका कहना और मानना है कि स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य के समय जो हूणो का आक्रमण हुआ था उसी को स्मरण कर कालिदास ने हूणो की विजय का उल्लेख अपने प्रसिद्ध ग्रथ रघुवश मे किया है।

परन्तु यह भ्रात धारणा है। कालिदास ने सपूर्ण सूर्यवश का इतिहास रघुवश मे वर्णित किया है। परन्तु ग्रथ का नाम ''रघुवश'' रखा। इसका स्पष्ट अर्थ यह निकलता है कि ''रघु'' को ही वे इस वश का सूर्य समझते है। और रघु को ही केन्द्र मानकर सपूर्ण ''रघुवश'' का इतिहास प्रस्तुत करते है।

इस सबध मे इतना लिखना ही पर्याप्त है कि रघुवश मे वर्णित दिलीप, रघु और राम राज्य का समय देवासुर सग्राम के अति निकट का समय है। उस कालखड मे आर्यो के खड-खड हुये राज्यो एव अनेक दलो का वर्णन मिलता है। ईसा से 500-700 वर्ष पूर्व मे हूणो और पारस्यो (पारसियों) एव असुरो स सूर्यवशी राजाओ की अनेक बार झडपे हुई है। कई अश्वमेध यज्ञो मे इनका विद्रोह सामने आया है। अत कालिदास ने तत्कालीन समय के इतिहास को दृष्टि मे रखकर सूर्यवशीय राजाओ के पराक्रम के इतिहास को काव्य रूप मे उतारा है इसलिये हूणो के आक्रमणो को गुप्तकाल मे ही देखना उपयुक्त नहीं है जबकि हूणो के आक्रमण देव असुर सग्रमियो के समय में भी होते रहे हे। दिलीप तथा रघु ने भी हूणो के साथ युद्ध किये थे।

अत हूणो के आक्रमणो को गुप्तकाल के इतिहास मे देखना उचित नही हे। इसलिये इस भ्रात धारणा का निराकरण होना भी आवश्यक है। ऐतिहासिक तथ्यो एव प्राचीन साहित्य के गभीर अध्ययन करने के पश्चात् इस भ्रात धारणा का अत हो जाता है।

आर्यो का दक्षिणपथ की ओर जाना

जलप्लावन के बाद जब आर्यावर्त्त का दक्षिणी भाग भूमि के रूप मे प्रकट हुआ तो ऋग्वेद प्रथम मडल के 165 से 191 सूक्त के मत्रदृष्टा अगस्त्य, बदरिकाश्रम से अपने कुछ साथियो के साथ दक्षिण की ओर गये। उन्होने दक्षिण मे पहुँचकर आर्य सस्कृति को नया रूप दिया। तमिल साहित्य की रूप रेखा अगस्त्य ने ही बनाई थी, तमिल का आदि व्याकरण उन्होंने ही लिखा था, महाभारत (104, 105) के अनुसार अगस्त्य ने समुद्र का शोषण किया था। उसमे यही भावना है कि समुद्र जैसे-जैसे नीचे उतरता रहा अगस्त्य वैसे-वैसे सस्कृति का प्रचार-प्रसार करते गये।

दस प्रजापतियो मे पुलस्त्य और पुलह भी थे। वे भी अगस्त्य की तरह नरक के सामाजिक एव राष्ट्रीय सगठन के लिए यहाँ आये थे। किन्तु दक्षिण पथ मे पहुँचकर उन्हे स्वार्थो ने घेर लिया। वे लका मे राजधानी बनाकर दक्षिण पथ पर शासन करके एक नया राष्ट्र खडा करने की योजना बनाने मे लग गये। न केवल इतना ही, उनके पौत्र रावण ने तो एक बार स्वग पर आक्रमण तो कर ही दिया। महाकवि माघ ने उसी इतिहास का उल्लेख शिशुपाल वध (1/5) आदि के प्रारभ मे किया है। रावण ने नन्दनवन और अमरावती को घेरकर नन्दन वन काट डाला। इन्द्र के धन-धान्य को लूटा। देवताओ की सुन्दरियॉ अपहरण कीं, और स्वर्ग की सम्पूर्ण शाति तथा सपत्ति को छिन्न-भिन्न कर दिया।

पिता दक्ष की यज्ञ मे सती के भस्म हो जाने के प्रश्न पर देवो और नागो के सघर्ष का फल यह हुआ कि नाग-प्रमुख शकर ने रावण को अभय कर दिया। "तुम लूटो और हम हँसे इसी प्रवृति ने स्वर्ग की सीमाये हिला दीं। रावण चाहता था कि वह लका से लेकर स्वर्ग तक एकछत्र सम्राट हो जाय, किन्तु अनाचार और अत्याचार की आधार शिला पर उसका यह काल्पनिक साम्राज्य न बन सका। तो भी आर्यो की सगठित राष्ट्र शक्ति तो छिन्न-भिन्न होने लगी थी। लोग राम-रावण के युद्ध के समय विभीषण को राम का सहयोग

करने के कारण "घर का भेदी लका ढावै" कहकर व्यर्थ बदनाम करते हैं। विभीषण ने वही किया जो उसके पूर्वज कर गये थे। राम और रावण युद्ध भी स्वदेश ओर विदेश की लडाई नहीं थी। गृहकलह का ही लज्जास्पद निदर्शन था। अनाचारी रावण को यह अभिमान हो गया था कि मैने स्वर्ग के इन्द्र को पीट लिया, कौशल की गणना ही क्या हे। परन्तु वीर राम ने उसका यह स्वप्न भग कर दिया। इसका यह अर्थ तो स्पष्ट हे ही कि स्वर्ग से नरक की शक्तियॉ समृद्ध हो गई थीं। हम पीछे लिख आये हैं कि एक बार असुरो और पिशाचो से युद्ध मे इन्द्र वाल्हीक (बलख) तथा उत्तर कुरू (सिकियाग) की रक्षा न कर सके। उन्हे दशरथ को कौशल से सहायता को बुलाना पडा। दशरथ की शक्तिशाली सेना ने आक्राताओ को परास्त कर दिया ओर इसी पुरस्कार मे उस प्रदेश पर दशरथ को शासन का अधिकार दिया गया। केकेयी तभी दशरथ की पत्नी बनी। क्योकि कैकेयी का भाइ युधाजित् उसका पडोसी शासक था। वाल्हीक गाधार था, और कैकेय उसका पूर्व दक्षिण पडोसी सिध ओर पजाब था। सप्तसिन्धु प्रदेश का पूर्वी भाग केकेय था और पश्चिमी गाधार दशरथ के इस शासन का उल्लेख महाभारत के वनपर्व के 17 वे अध्याय में भी है।

उपरोक्त ऐतिहासिक घटनाओ से यह स्पष्ट हो जाता है कि राम-रावण युद्ध के समय तक "स्वर्ग का साम्राज्य" अपना वर्चस्व खो चुका था। अब तो स्थिति यह हो गयी थी कि इन्द्र आदि देवता सकट आने पर "नरक" के सशक्त राजाओ की ओर निहारने लगे थे। एक तरह से देखा जाय तो "स्वर्ग" का शासन काशी, कौशल और कैकेय के सहारे चलने लगा था।

रामायण-महाभारत काल

रामायण और महाभारत के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्यावत्त का सपूर्ण क्षेत्र कैशिपियन सागर से लेकर प्रशात महासागर तक फैला हुआ था। आर्यावर्त्त के अतर्गत जो इन्द्र का स्वर्ग साम्राज्य था—वह इस कालखड मे छितरा गया था। नरक का प्रभुत्व बढ गया था। देवो का प्रभाव क्षीण हो गया था। स्वर्ग का शासन नरक के सहारे चलने लगा था। पूर्व के देशो का सबध पूर्णत आर्यावर्त्त से हो गया था। पूर्व और पश्चिम के देशो मे आर्यावर्त्त का वर्चस्व पूर्णत स्थापित हो गया था। पश्चिम की तरह पूर्वी अचल म भी समुद्री व्यापार स्थापित हो चुका था। कालिदास ने रघुवश (6/57) मे इन्दुमती के स्वयवर के ब्याज से कलिग देश के सामुद्रिक व्यापार का वर्णन किया है। चीन के साथ तत्कालीन आर्यावर्त्त के व्यापार का उल्लेख "अभिज्ञान शाकुन्तल" और चरक संहिता मे विस्तार से मिलता है।

बाल्मीकि रामायण से लेकर महाभारत के अध्ययन से यह ज्ञात हो जाता है कि उस समय का आर्यावर्त्त शक्तिशाली और समृद्ध भारत था—जिसका क्षेत्र उस समय कैशिपियन सागर से उत्तरापथ और दक्षिणपथ भी हो गया था।

ऐतिहासिक दृष्टि से रामायण का विषय आर्य नेता राम द्वारा एक हिंस्र युद्ध मे अनाय

नेता रावण के वध के परिणामस्वरूप लका तक दक्षिण मे आर्य सभ्यता का विस्तार है। यह केवल शस्त्रो का सघर्ष ही नहीं था वरन् विचारधाराओ का द्वन्द्व भी था। आर्यो का उद्देश्य महाभारत के युग मे पूर्ण हुआ। इस ग्रन्थ मे धर्म युद्ध (पाप के विरुद्ध पुण्य के द्वन्द्व) का वर्णन है। युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण के नेतृत्व मे पाडव और दुर्योधन के नेतृत्व मे कौरव क्रमश पुण्य ओर पाप के प्रतिनिधि है। कुरूक्षेत्र के युद्ध मे समस्त भारत सम्मिलित हुआ और इसमे बडे प्रदेश के राजाओ ने पाडवो का साथ दिया। अत मे युधिष्ठिर और उसके वीर भ्राता अर्जुन और भीम के नेतृत्व मे सत्य की जय हुई और धर्म का राज्य स्थापित हुआ, जिसके लिए स्वय भगवान ने कृष्णावतार लिया।

रामायण मे घरेलू जीवन के आदर्श, आदर्श पत्नी, भाई, मित्र, भक्त आदि उपस्थित किये गये है। महाभारत मे महत्त्वपूर्ण राजनीतिक सामग्री है। इसमे उस युग के गणो का उल्लेख है। जिसमे बहुसख्यक वर्ग प्रभुसत्तासम्पन्न होता था। इसमे गणो के सघ (सघातसघ) की भी चर्चा है। गण को सघ भी कहते थे, जैसे वृष्णिसघ। कृष्ण को सघातगण का सघ मुख्य कहा गया है।

रामायण-महाभारत काल तक स्वर्ग शासन और नरक शासन की स्थितियॉ स्थापित थीं। देवत्व की भावना का उदय होने लगा था।

पाणिनीकालीन भारत

पाणिनी का समय ईसा पूर्व 900 सौ वर्ष माना गया है। कुछ विद्वानो का स्पष्ट मत है कि महाभारत का युद्ध ईसा पूर्व 1500 वर्ष पहले में लडा गया था। उस युद्ध के समय तक बृहद् भारत की सीमाये पश्चिम मे कैशिपियन सागर और पूर्व मे प्रशात महासागर तक फैली हुई थीं। इस सपूर्ण क्षेत्र मे आर्यो के वशजो का ही राज्य था। स्वर्ग की महिमा यत्र-तत्र दिखाई देती थी।

परन्तु, पाणिनी के समय (ईसा पूर्व 900 वर्ष) तक स्वर्ग की महिमा और स्वर्ग के पचजन की एकता भग हो चुकी थी। ईसा से 900 वर्ष पहले तक स्वर्ग का शासन छिन्न-भिन्न हो गया था। नये-नये जनपद और देश बन गये थे। पाणिनी के समय मे गाधार जनपद बृहद्भारत का एक श्रेष्ठ जनपद था। पाणिनी स्वय गाधार जनपद के शालातुर नगर के निवासी थे। उन्होने अपनी अष्टाध्यायी (4/3/100) मे गधार को "जनपदिना" लिखकर अपने जनपद का सम्मान बढाया है। महाभारत के समय मे भी गाधार भारत का विशिष्ट क्षेत्र था। महाभारत के उद्योग पर्व मे "गधारराज शकुनि पार्वतीय का स्पष्ट उल्लेख है यह वही गधार का शकुनि था—जिसने महाभारत युद्ध की शतरज खेलकर कौरव-पाडवो के बीच भयकर द्वेष उत्पन्न कर दिया था। इसी तरह रामायण काल के कैकेय जनपद का भी पाणिनी ने उल्लेख किया है। वास्तव मे पाणिनी का काल "जनपदो" का काल भी माना जाता है।

पाणिनीकाल की विशेषता

पाणिनीकाल की मुख्य विशेषता यह है कि इस कालखड से स्वर्ग के पचजनो की पूजा शुरू होने लगी थी। शिव और विष्णु की पूजा सर्वत्र होने लगी थी। यही नहीं यक्ष, किन्नर और गधवो तक को आर्यजन देवता के रूप में पूजने लगे थे।

पाणिनी के समय मे यक्षो को विशेष रूप से पूजा जाने लगा था। अष्टाध्यायी मे पाणिनी ने नीचे लिखे पाच यक्षो पर सूत्र लिखा है। शैवल, सुपरि, विशाल वरुण और अर्यमा नाम के पाच यक्षो को विशेष रूप से पूजा जाता था। प्रियदर्शन नाम के एक यक्ष भी उस समय पूजे जाते थे। इन यक्षो के सबध मे बौद्ध ग्रन्थो (दिघ्घ निकाय) में भी उल्लेख मिलता है।

सूत्र साहित्य की उत्पत्ति पाणिनी की उपलब्धि

पाणिनी का विशिष्ट कार्य "पाणिनी व्याकरण" है। विज्ञान की साधना का प्रतीक पाणिनि का व्याकरण है जो विज्ञान विषय की महत्त्वपूर्ण कृति है। इसका परिचय वेदाग नामक सूत्रो मे भी मिलता है जिनमे निम्नलिखित विषय शामिल है 1 शिक्षा (ध्वनिशास्त्र) 2 कल्प (वैदिक उपचार) 3 व्याकरण (शब्दशास्त्र) 4 निरूक्त (व्युत्पतिशास्त्र) 5 छन्द (छन्दशास्त्र), और 6 ज्योतिष (ज्योतिषशास्त्र) इनमें (1) (3) (4) और (5) के सूत्र भाषाशास्त्र के विविध पक्षो से सम्बन्धित है। चौथे सूत्र की प्रसिद्ध कृति यास्त का निरूक्त है। छठे सूत्र का विषय भौतिक विज्ञान है। दूसरी सख्या के सूत्र से तीन कक्षाओ के सूत्र—साहित्य की उत्पत्ति हुई है यह उल्लेखनीय है कि "सूत्र" शब्द स्वय वैज्ञानिक शब्दावली के विकास की प्रगति का प्रतीक है जिसका मूल अर्थ अथवा आदर्श थोडे शब्दों मे अधिक भावों की अभिव्यक्ति करना है। इस शैली का सर्वश्रेष्ठ निदर्शन पाणिनी के सूत्र है। इनमे वैदिक मत्रो की शैली हे। जिसमे अकेले ॐ शब्द मे जिज्ञासुओ के लिए विस्तृत अर्थ—जगत प्रच्छन्न रूप से व्याख्यायित हुआ है।

उपचार —सूत्रो मे उपचार का वर्णन है जीवन के मोडो पर उनका अनुष्ठान आवश्यक है। प्रत्येक उपचार मे आध्यात्मिक महत्त्व प्रच्छन्न रूप से वर्णित है जिसे भूलना नहीं चाहिए। उदाहरण के लिए उपनयन का अर्थ शिक्षा द्वारा नया जन्म है और विवाह एक अटूट धार्मिक सबध और साहचर्य है। सूत्रो मे सामान्य उपचारो का वर्णन है जिनका प्रचार प्राय सब जगह था। उन्हे पच महायज्ञ कहते है। उनमे (1) देव (देवयज्ञ) (2) पितृ (पितृयज्ञ) (3) ऋषि (ऋषियज्ञ) (4) नर (नृयज्ञ), और (5) जीवन (भूतयज्ञ) सबधी उपचार सग्रथित है। विभिन्न यज्ञो का अभिप्राय व्यक्ति के समष्टि मे अधिकाधिक प्रवेश करने की प्रक्रिया को व्यक्त करना है, जो धर्म के उच्चतम आदर्श के रूप मे समस्त भूत-जगत् के साथ एकत्व और सान्निध्य की अनुभूति मे विकसित होती है।

वर्णाश्रम धर्म —सूत्रो के सामाजिक विधान के अपने निराले सिद्धात है जिसके अनुसार समाज को व्यवसायो के अनुरूप स्थूल रूप से चार भागो मे बॉटा गया था। ये भाग बाद मे जाति या वर्ण के रूप मे जकड गये थे। प्रथम भाग ब्राह्मणो का था जो विद्या और शिक्षा

का कार्य सभालते थे। उन्हे सासारिक जीवन से दूर तटस्थ वातावरण मे वैराग्य की भावना से अनुप्राणित होकर एकाग्र चितन द्वारा विद्या और ज्ञान को बढावा देना और उन्हे सम्पन्न करना पडता था और फिर उन नियमो को अपने जीवन मे उतारकर उन सत्यो का प्रसार करना पडता था। देश की सस्कृति की रक्षा करना सबसे बडा दायित्व समझा जाता था। इसका उत्तरदायित्व क्षत्रियो को दिया गया था। राज्य का सचालन और देश की रक्षा का भार क्षत्रियो को ही उठाना पडता था। इस उत्तरदायित्व को निभाने के लिये उन्हे जीवन का बलिदान करने का भी सौभाग्य मिलता था, तीसरा भाग वैश्यो का था, जो कृषि पशुपालन वाणिज्य और कुसीद (बैकिग) द्वारा देश के आर्थिक हितो की रक्षा करते थे। चौथा भाग शूद्रो का था जो सेवा (परिचर्या) मजदूरी (वृत्ति) और दस्तकारी (शिल्पादि वृत्ति) से जीविकोपार्जन करते थे और देश की खुशहाली बढाते थे।

उस समय का जीवन वर्णो और आश्रमो मे पूर्णत विभक्त हो गया था। पहला आश्रम ब्रह्मचर्य था। इस आश्रम का पालन सभी जातियॉ समान रूप से करती थीं। दूसरा आश्रम गृहस्थ आश्रम था। इस आश्रम का पालन भी सभी समान रूप से करते थे। तीसरा आश्रम वानप्रस्थ का था जिसका पालन विशेषकर ब्राह्मण जाति के लोग करते थे। बाद मे बौद्ध भी इस आश्रम का पालन करने लगे थे। अतिम आश्रम सन्यासी या परिव्राजक का था। जिस आश्रम की व्याख्या आपस्तम्भ (2/9/21/13) ने इस प्रकार की है' "सन्यासी वह जो सत्य और असत्य, सुख और दुख, वेद जगत और स्वर्गापवर्ग के विचार को छोडकर केवल आत्मा को खोजता है।"

पाणिनी का समय भारतीय वाड्मय का अत्यत गौरवशाली कालखड है। इस युग मे वेदो का सकलन होने लगा था। रामायण और महाभारत जैसी कृतियो को सवारा जारहा था। आर्यो के लिये स्मृतियो के माध्यम से जीवनोपयोगी नियम बनाये जारहे थे।

पाणिनीकाल मे जनपदो के अलावा सघराज्य की व्यवस्था भी थी। काशी उस कालखड मे श्रेष्ठ जनपद बन गया था। काशी और कौशल का अटूट सबध था।

तिलक का काल निर्णय

आर्यो के विकास क्रम को समझने के लिये बाल गगाधर तिलक के "काल निर्णय" को ध्यान में रखकर प्राचीन बृहद् भारत की स्थिति को गभीरता से भलीभॉति जाना जा सकता है। "भारत के प्राणाचार्य" के पृष्ठ 312 के अनुसार बाल गगाधर तिलक ने वैदिक युग दो भागो मे बॉटा है। सहिता काल और ब्राह्मण काल। दिवोदास और प्रतर्दन का उल्लेख ब्राह्मण ग्रथो मे पर्याप्त मिलता है। ब्राह्मण युग मे ब्राह्मण और आरण्यक साहित्य दोनो समाविष्ट है। दिवोदास और प्रतर्दन का उल्लेख दोनो में है। सहिता काल के ऋषियो मे (1) गृत्समद (2) विश्वामित्र (3) वामदेव (4) अत्रि (5) भारद्वाज तथा (6) वसिष्ठ आदि महर्षि तत्ववेत्ताओ मे प्रमुख थे। अत्रि ने आयुर्वेद सहिता मे "धन्वन्तरि" के नाम की आहुति का विधान लिखा है। इसलिये हमे यह स्वीकार करना ही होगा कि धन्वन्तरि सहिताकाल के ही महापुरुष है। लोकमान्य तिलक के अनुसार यह समय कम से कम 6075 ई० पू०

अवश्य है। लोकमान्य तिलक ने इस काल खड को अदिति काल का नाम दिया ह। भारतीय सस्कृति का यह प्राचीनतम युग है।

लोकमान्य तिलक के विचार से अदिति काल 6075-4075 इ० पूव नक हे। इस युग मे प्रमुख-प्रमुख उपास्य देवताओ के स्तुति मत्र तैयार हुए। कतिपय यज्ञीय निविदा (विधि मत्रों) की रचना भी होने लगी थी।

दूसरा भाग मृगशिरा काल है जो इसा 4075 ई पूर्व से 2075 इ पूव तक आता है। इस काल मे नेत्तिरीय सहिता, शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रथो की रचना हुइ। ऋग्वद के कितने ही अश पूर्ण हुए। यह युग विशेष क्रियाशील था। दिवोदास और प्रतदन इनी युग की विभूनि थे।

तीसरा कृतिका काल 2575 ई० पू० से 1475 इ० पूव तक रहा हे। इस भाग म उपनिषद, तथा वेदागो का विकास हुआ। ज्योतिष के ग्रथ इसी युग मे निर्मित्त हुए। काशीराज ब्रह्मदत्त इसी समय के महापुरुषो मे थे। चोथा अंतिम काल 1475 इ० पूव स 500 ई० पूर्व तक रहा हे। इस काल मे गृह्यसूत्र, श्रोतसूत्र, दशन आदि साहित्य का सृजन हुआ था। सूत्र साहित्य इसी युग की विशेषता है। यास्क, पाणिनी तथा गौतम बुद्ध का आविभाव इस युग की विशेषना है। इस चौथे युग मे आयुर्वेद सहिताओं क प्रतिसस्कार भी हुए।

लोकमान्य तिलक क अनुसार दिवोदास और प्रतदन अदिति काल के अत मे तथा मृगशिरा के प्रारभ मे आविर्भूत हुए थे। इस युग के साहित्य मे इन दानो का पयाप्त उल्लेख है और इसलिये तिलक की काल गणना के अनुसार दिवोदास कम से कम 6075 वष ई पूर्व तथा धन्वन्तरि इनसे दो पीढी पूर्व हुए। इन दो पीढियो का समय यदि 150 वर्ष और रख ले तो धन्वन्तरि ईसा से 6225 वर्ष हुए। इसके अर्वाचीन युग मे उन्हे नहीं लाया जा सकता। प्राचीन भले हो सकता है।

उपनिषदो की प्राचीन रचनाओ मे काशी के सम्राटों के लिए ''काश्य'' विशेषण ही प्रयुक्त है ''वाराणसेय'' नहीं। वह दिवोदास के बसाये जाने पर भी प्रतिष्ठित न हो सकी। और हैहयो ने उसे उजाड दिया। दो पीढी बाद अलर्क ने उसे प्रतिष्ठित किया। इसलिए सुश्रुत संहिता मे दिवोदास ने भी अपने को ''काशिराज'' ही कहा ''वाराणसेय'' नहीं। अत दिवोदास ब्राह्मण काल मे 4075 ई० पूर्व हुए।

वृहज्जावालोपनिषद मे काशी और वाराणसी दोनो का उल्लेख है। यह काशी के उत्तर काल को प्रकट करते है। कौशीतिकि ब्राह्मण उपनिषद मे दिवोदास के पुत्र प्रतदन का इन्द्र के साथ सम्वाद वर्णित है

> **प्रतर्दनो ह वै देवोदासि· इन्द्रस्य प्रिय धामोपजगाम युद्धेन**
> **पौरुषेण च त हेन्द्रउवाच''**
>
> —कौ ब्रा० उपनिषद् 3/1

कतिपय पाश्चात्य विद्वानो ने उन ग्रन्थो के काल निर्णय का प्रयत्न किया है। जिनमे प्रतर्दन, दिवोदास के उदाहरण मिलते है। भारतीय साहित्य का इतिहास लिखते हुए वेबर

ने पृष्ठ 52 पर लिखा कि—श्वेतकेतु, आरुणि, बालाकि गार्ग्य, काशी के सम्राट अजातशु (सभवत दिवोदास) तथा जनक के उल्लेखो मे समानता होने के कारण कौषीतकि ब्राह्म उपनिषद् तथा वृहदारण्यक उपनिषद् का रचनाकाल समान ही है। विण्टरनिज का विच भी। (हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिट्रेचर) ऐसा ही है। कौषीतकि ब्राह्मण (17-4) का यास्काच के निरूक्त (1-9) मे उल्लेख है। पाणिनि ने "विकर्षण कुषीतकात् काश्यपे" इस सूत्र कौषीतकि के पूर्वज कुषीतक का उल्लेख किया है। अतएव कोषीतकि ब्राह्मण, पाणि और यास्काचार्य से भी पूर्व ऋग्वेद ब्राह्मण अनुवाद कीथ ने पृष्ठ 42 पर लिखा है। पाणि ने गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी तथा उनके बौद्ध एव जैन सम्प्रदायो का कहीं उल्लेख न किया। इस कारण यह स्पष्ट है कि पाणिनि बुद्ध और महावीर से पहले हो चुके थे। र समय ईसा से 800-900 वर्ष पूर्व का है। गोल्डस्टूकर का 'पाणिनी, हिज प्लेस इन सस्कृ लिट्रेचर' का विचार भी ऐसा ही है। श्री विनायक चितामणि ने पणिनि का यह समय ई से 900 वर्ष पूर्व सिद्ध किया। इन सब विचारो के मथन से यह स्पष्ट हे कि कौषीतं ब्राह्मण बुद्ध के आविर्भाव से बहुत पूर्व की रचना है। वृहदारण्यक उपनिषद् उससे भी प का है। अतएव प्रतर्दन और दिवोदास (अजातशत्रु) को हमे उनसे भी पूर्व का मानना पडेगा। अत सिद्ध हो जाता है कि धन्वन्तरि उनसे भी दो पीढी पूर्व का मनीषि पुरुष थ

पाणिनी के बाद का बृहद् भारत

भारतवर्ष मे छठवीं शताब्दी ई० पूर्व मे जैन और बौद्ध दो बडे परम्परा विरोधी अ सुधारवादी धर्मो का उदय हुआ। जनता मे इन धर्मो का विशेष प्रचार हुआ। जिससे प्र वैदिक मार्ग और परम्परा विरोधी पथ दो दलो मे बॅट गया। ध्यान देने की एक मुख्य बा यह है कि महावीर और बुद्ध के बाद नाग, नन्द और मौर्य वश के अधिकाश राजाओ इन नये पन्थो को ग्रहण किया, जो इनके पक्के अनुयायी नहीं थे फिर भी इनसे प्रभावि थे। इन राजाओ ने वैदिक धर्म, आचार तथा नीति का त्याग किया तथा धर्म और राजनीं दोनो क्षेत्रो मे नये-नये प्रयोग किया। वैदिक धर्म मानने वालो की समाज मे अब भी ब सख्या थी। परन्तु राजाओ के प्रभाव के कारण जनता उनके उपदेशो को मानने के लि विवश थी। वैदिक मार्गियो का नये प्रयोगो और मार्गो से असतोष पुराणो और धर्मशार के ग्रन्थों मे स्पष्ट दिखाई पडता है, जहॉ व्रात्य, वृषल शूद्र पतित, वर्णसकर आं उपाधियो से सुधारवादी राजवश लांछित किये गये।

परम्परा विरोधी धर्म के रूप मे सबसे पहले जैन धर्म का उदय हुआ। जैन धर्म ‹ सस्थापक वर्धमान महावीर थे। जैन परम्परा के अनुसार इनसे पहले 23 आचार्य अथर तीर्थंकर और हुये थे। जिनमे प्रथम ऋषभ और अतिम पार्श्व तीर्थकर थे।

जैन धर्म सिद्धात, कर्म और उसके परिणाम आवागमन मे विश्वास करने वाल धर्म है। जीवन के आवागमन को कर्मो के माध्यम से रोका जा सकता है और इच्छाउ के निग्रह से कर्म का अत होता है। इच्छाओ का निग्रह व्रत, समिति (अभ्यास) और गुप्ि (नियत्रण) द्वारा सम्भव है। इसीसे वैदिक परम्परा का विरोध जैनियों ने किया।

महावीर का निवाण विक्रमादित्य के जन्म से 470 वर्ष पूर्व हुआ ऐसी सवसम्मत मान्यता है। विक्रम के जन्म से 18 वष बाद 57 ई० पूव मे विक्रम सम्वत शुरू किया गया। इस प्रकार महावीर का निर्वाण 470-57-18=545 ई० पूव में हुआ। बोद्ध परम्परा के अनुसार महावीर का निर्वाण बुद्ध के परिनिवाण से पहले हुआ और बुद्ध निवाण की तिथि 543 इ० पूर्व है।

बौद्ध धर्म के सस्थापक गौतम राजकुमार थे। वे शाक्या क राजा शुद्धोधन के पुत्र थे। उनका जन्म ईसा पूव 654 मे कपिलवस्तु नामक स्थान के लुम्बिनी वन मे हुआ था। उनका जन्म वैदिक परम्परा वाले परिवार मे हुआ था। परन्तु बचपन से ही उनका मन सासारिक दु खो को देखकर विचलित रहता था। 21 वष की अवस्था मे उन्होने घर छोडकर सन्यास ले लिया। तब उनका पुत्र राहुल पैदा ही हुआ था। गौतम तब सत्य की खोज मे निकल पडे थे।

बुद्धत्व प्राप्त होने पर उन्होने पहला उपदेश धमचक्र–प्रवर्तन सूत्र का दिया। जिसमे उन्होने चार आय सत्य-अर्थात् (1) दुख (2) इसका कारण (समुदाय या तृष्णा), (3) निरोध और (4) माग (प्रनिपदा)–की व्याख्या की। बुद्ध का मानना था सासारिक दु ख के कारण के निरोध का माग मध्यमा प्रतिपदा है–जिससे मनुष्य भोग और तप की सीमाओ को छोडकर–रुचि का मार्ग अपनाता है। और यह माग "आयाष्टांगिक माग" कहलाता हे। बुद्ध के ये आठ मार्ग है सम्यक दृष्टि, सम्यक सकल्प, सम्यक वचन, सम्यक आजीव, सम्यक कर्म, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति ओर सम्यक समाधि।

बुद्ध ने अपने जीवन क अतिम क्षण तक धर्मोपदेश दिया ओर अपने विचारो को सर्वत्र पहुँचाने के लिये निरतर यात्राये कीं। इन्हीं यात्राओ और धर्मोपदेश का व्यापक प्रभाव पडने के कारण तत्कालीन समाज, वेद धर्म के नियमो के विरुद्ध खडा हो गया।

बृहद भारत का नया रूप

हम पहले वर्णन कर चुके है कि बृहद भारत का जो विस्तृत आयावर्त्त रूप था वह देवासुर सग्राम के बाद से ही छिन्न-भिन्न होने लगा था। पाणिनी के समय आने तक प्राचीन स्वरूप लगभग समाप्त हो गया था।

कैशिपियन सागर तक के अनेक राज्य स्वतत्र होकर आपस मे लडने लगे थे। आर्यो के वैदिक धर्म के विरुद्ध असुर राष्ट्र खडे हो गये थे। धार्मिक विरोध के साथ-साथ राजनीतिक विरोध भी शुरू हो गया था। बृहद भारत टूटकर छिन्न-भिन्न रूप मे प्रकट होने लगा था। जैन बौद्ध काल मे अनेक छोटे-छोटे राज्य बन गये थे।

तत्कालीन राज्य और जैन-बौद्धो का प्रभाव

बृहद भारत के तत्कालीन राजनीतिक इतिहास पर जैन और बौद्ध ग्रन्थो और पुराण आदि सस्कृत ग्रन्थो से प्रचुर प्रकाश पडने लगा था। उस समय विशेषकर उत्तरी भारत बहुत से राज्यो मे विभक्त था, जिन्हे महाजनपद् कहते थे और जिनकी सख्या 16 थी। पालि

ग्रथ अगुत्तर निकाय मे उनकी गणना इस प्रकार की गयी है—1 अग (पूर्वी विहार) जिसक
राजधानी चम्पा थी, 2 मगध (दक्षिणी विहार) 3 काशी, 4 कोशल (अवध) 5 वज
(उत्तरी बिहार) 6 मल्ल (गोरखपुर) 7 चेटी (चेदी, यमुना और नर्मदा के नीचे) 8 व
(वत्स प्रयाग) 9 कुरू (थानेसर, देहली और मेरठ) 10 पाचाल (बरेली, बदायूँ अ
फर्रूखाबाद) 11 मच्छ (मत्स्य जयपुर) 12 शूरसेन (मथुरा) 13 अस्मक (अश्मक गोदाव
नदी पर स्थित जिसकी राजधानी पोतन, प्रतिष्ठान पैठान थी) 14 अवन्ती जिस
राजधानी माहिस्सति माहिष्मती थी, 15 गधार (पाकिस्तान के पेशावर और रावलपिं
और 16 काम्बोज (दक्षिण पश्चिम कश्मीर और काफिरिस्तान के कुछ भाग)। कुछ ग्र
मे इन सोलह राज्यो के अतिरिक्त 17 कलिग (जिसकी राजधानी दन्तपुर थी) 18 सौव
(जिसकी राजधानी रोरूक थी), और 19 विदेह (जिसकी राजधानी मिथिला थी) का
उल्लेख मिलता है। जैन ग्रन्थ भगवती सूत्र मे मालव, कोच्छ (कच्छ), पाढ (पुण्ड्र), ल
(बगाल मे राढ) और मोली (मल्ल) का जिक्र है। ये राज्य बहुत छोटे थे।

यह उल्लेखनीय हे कि यद्यपि बृहद् भारत इतने छोटे राज्यो मे विभक्त था, तथ
इस विभाजन का अर्थ देश का पृथक्-पृथक् टुकडो मे विघटन होना नही था। ये सभी रा
उस समय तक भी भारतीय विचारधारा और समाज पद्धति के समान सास्कृतिक बध
से परिबद्ध थे। राजनीतिक दृष्टि से वे पृथक् राज्य थे, किंतु वे भारतीय शासन पद्धति
समान ढॉचे के अन्तर्गत कार्य कर रहे थे जो सत्ता के विकेन्द्रीकरण और स्वयशासित सस्था
के रूप मे ये सभी राज्य जनता के स्वाभाविक वर्गीकरण के द्वारा स्थानीय स्वायत्तता
रक्षा पर अवलम्बित थे।

जैन-बौद्ध कालखड मे अनेक छोटे-छोटे राज्य अवश्य हो गये थे। परन्तु इन राज
मे भी अवती, वत्स, कोशल और मगध राज्यो का विशेष महत्त्व था। इन्ही राज्यो ने तत्काली
भारत के जन-जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया था।

अवन्ती यह पालि ग्रन्थो मे वर्णित चण्ड पज्जोत (प्रद्योत) महासेन के राज्यक
में प्रसिद्ध हो गया जो अपनी क्रूरता के लिए बदनाम था। अपने पुरोहित महाकच्चायन
प्रभाव के कारण उसने बौद्ध धर्म ग्रहण किया। इसके बाद अवन्ती महाकच्चायन, धम्मपा
और सोन आदि आचार्यो के कारण बौद्ध धर्म का प्रसिद्ध केन्द्र बन गया। उन्होने प्रचलि
लोक भाषा मे धर्म-प्रचार किया वही लोक भाषा पालि भाषा का मूल बनी। परन्तु वह भा
मागधी से भिन्न थी।

वस (वत्स) यह राज्य राजा उदयन के राज्यकाल मे प्रसिद्ध हो गया था। इसक
राजधानी कौशाम्बी थी। ऐतिहासिक तथ्यो के अनुसार 1 प्रद्योत की पुत्री राजकुमा
वासवदत्ता, 2 मगध की राजकुमारी पद्मावती, 3 अग की राजकुमारी और 4 वासवद
की सेविका सागरिका से उदयन का प्रेम सबध था। अत मे उदयन को घोषिताराम विह
के भिक्षु पिण्डोल ने बौद्धधर्म मे दीक्षित किया। उसके बाद कौशाम्बी और उसके अने
विहार, बौद्धधर्म के प्रमुख केन्द्र बन गये थे। जहॉ बुद्ध ने धर्मोपदेश किया। यह उल्लेखनी
है कि कौशाम्बी से प्राप्त एक अभिलेख मे घोषिताराम के विहार का उल्लेख मिलता है

कोशल —प्रसेनजित् के राज्यकाल म कोशल प्रसिद्ध हो गया था। प्रसेनजित् बुद्ध का अनुयायी बन गया था। तब प्रमेनजित भी बुद्ध की अवस्था का था। उसने काशी को अपने राज्य मे मिलाया, किन्तु अजातशत्रु के राज्यकाल मे मगध मे उसका सघष हुआ। उसके पापी पुत्र विडूढम ने जो, निरीह शाक्यो की हत्या के कारण कुख्यात था, अपने दुष्ट साथियो के साथ मिलकर अपने पिता को गद्‌दी से उतार दिया। किन्तु विडूढम और उसके साथी श्रावस्ती मे बाढ में बह गये।

मगध —बौद्ध ग्रथो के अनुसार हर्यक वश के राजा बिबसार और अजानशत्रु क राज्यकाल मे मगध एक शक्तिशाली सत्ता थी। किन्तु पुराणो मे शिशुनाग द्वारा सस्थापित एक भिन्न वश को इसकी महानता का श्रेय दिया गया है। इतिहासकार बोद्ध साक्ष्य पर अधिक बल देते है, जिसका अनुसरण यहा किया गया है।

बिंबसार —बिबसार (603-551 इ० पू०) ने राजनीतिक महत्त्व के वेवाहिक सबध स्थापित किये। उसने कोशल राजकुमारी, लिच्छिवी मुख्य की पुत्री और वैदही राजकुमारी बासवी से विवाह किया। उसके अनेक पुत्र थ जिनमे कुणीक अजातशत्रु प्रसिद्ध हुआ। उसकी राजधानी गिरिव्रज थी जा पॉच दीवारो ने सुरक्षित थी। इसकी बडी-बडी दीवारे आज तक खडी हे और प्राचीनतम भारतीय पाषाण-स्थापत्य का निदशन करती हे। बाद मे राजधानी राजगृह चली गयी जिसकी योजना महागोविन्द नाम स्थापित ने बनायी थी। बिबसार ने अग और उसकी राजधानी चम्पा पर विजय प्राप्त कर अपने राज्य का विस्तार किया। और कुणीक को चम्पा का शासक नियुक्त किया।

बिबसार पहले जैन धर्मावलम्बी था। जब बुद्ध राजगृह पहुँचे तो बिबसार ने बौद्ध धर्म मे दीक्षा ले ली। अपने प्रसिद्ध बेलु वन नामक उद्यान को गौतम बुद्ध को दान कर दिया ताकि बुद्ध अपने उपदेश सहज होकर दे सके। साथ ही अपने राजवैद्य जीवक को तथागत और सघ की परिचार्य-चिकित्सा के लिए नियुक्त कर दिया।

बिबसार की मृत्यु के सबध मे बोद्ध ग्रथो मे लिखा हुआ हे कि उनके पुत्र अजातपुत्र ने ही बिबसार की हत्या की थी। जैन किवदन्ती के अनुसार यह कहा जाता हैं कि अजातशत्रु ने अपने पिता बिबसार को बदीगृह मे कैद किया हुआ था। वहीं बन्दीगृह में बिंबसार ने स्वय आत्महत्या की थी।

अजातशत्रु —(लगभग 551-519 ई० पू०) बहुत शक्तिशाली योद्धा-नरपति था। उसको अपने राज्य विस्तार की अधिक चिन्ता रहती थी। उसने कोशल राज्य के राजा प्रसेनजित पर सर्वप्रथम आक्रमण किया। कोशल के राजा ने अपनी पुत्री का विवाह अजातशत्रु से कर दिया। तब उनमे संधि हो गई। उसके बाद अजातशत्रु ने गगा-पार के लिच्छवि राज्य पर आक्रमण किया। यह आक्रमण उसे बहुत महगा पडा, परन्तु कई वर्षो के सघर्ष के बाद अजातशत्रु को विजय मिल पायी।

अपने पिता बिबसार की तरह अजातशत्रु भी पहले जैन धर्मावलम्बी था। बाद मे उसने भी बौद्ध-धर्म स्वीकार कर गौतम बुद्ध के चलाये हुए नियमो के अनुसार राज्य का सचालन किया।

अजातशत्रु के उत्तराधिकारियो मे कई नाम गिने जाते है परन्तु उनका कोई ठोस ऐतिहासिक विवरण नही मिलता। केवल उदायी भद्र (लगभग 519-503 ई० पूर्व में) ही उसका एक ऐसा उत्तराधिकारी था जिसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। वह पहले चम्पा का उपराजा था। उदायीभद्र के अवन्ती के राजा के पालक के साथ युद्ध होते रहते थे। राजा पालक के एक भेदिए ने उदायीभद्र को मार डाला था। उसके बाद राजा दर्शक (लगभग 495-471 ई० पू०) गद्दी पर बैठा। राजा दर्शक के बाद सैसुनाग (लगभग 471-450 ई० पू०) का शासन हुआ। सैसुनाग के बाद कालाशोक (लगभग 453-425 ई० पू०) राज्य किया। कालाशोक के बाद उनके दस पुत्रो ने ईसा पूर्व 400 ई० तक शासन किया।

नद वश का राज्य

कालाशोक की हत्या के बाद मगध का राज्य नद वश के राजाओ अधीन आया। नद वश का प्रथम राजा महापद्म नद था। वह सैसुनाग राजा महानदी की शूद्रपत्नी से उत्पन्न हुआ था। तभी से नदराजाओ को शूद्र कहा जाने लगा था। पुराणो के अनुसार नदवशिय को अधार्मिक कहा गया है। परन्तु उनके पराक्रम की अनेक कथाये यत्र-तत्र मिलती है नदवश के प्रथम राजा महापद्म ने अतुल धन सम्पत्ति को जुटाकर एक विशाल सेना तैयार कर ली थी। अपने युद्ध कौशल से उसने तत्कालीन पाचाल, काशी, कलिग और अश्मक जैसे महान देशो को अपने अधीन कर डाला था। कलिग के राजा खारखेल के हाथी गुम्फ के अभिलेख से नदराजा की कलिग विजय का प्रमाण मिलता है।

नद वश पहला ऐसा राजवश था, जिसने बिबसार व अजातशत्रु के द्वारा डाली गई नीव पर प्रथम बृहद् मगध साम्राज्य की स्थापना की। नद वश के सम्राटो ने विशाल सेना का सगठन किया और देश के लिए एक सुव्यवस्थित तथा सगठित शासन प्रणाली को जन्म दिया। उन्होने पाटलिपुत्र को समस्त उत्तरी भारत का केन्द्र बना दिया। पाटलिपुत्र न केवल राजनीति का वरन् शिक्षा और सस्कृति का भी केन्द्र बन गया। नदो के नेतृत्व मे मगध साम्राज्य का इतना उत्थान हुआ कि चारो ओर मगध राज्य का ही प्रभाव जम गया।

पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार महापद्म नद के आठ पुत्र थे जिनमे से केवल अतिम पुत्र धननद के विषय मे थोडी-सी जानकारी मिलती है। धननद उस समय मगध पर राज्य कर रहा था, जब भारत पर सिकदर का आक्रमण हुआ। धननद के पास एक बडा साम्राज्य तथा प्रचुर धन था। परन्तु चन्द्रगुप्त मौर्य ने चाणक्य की सहायता से मगध पर आक्रमण किया और धननद को मारकर राजसिहासन प्राप्त कर लिया।

''प्राचीन भारत'' के लेखक डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी ने पृष्ठ 56 पर लिखा है कि ''प्रथम नद राजा ने 403 ई० पू० मे राज्य किया। उस समय उसकी आयु 20 वर्ष रही होगी। इससे प्रकट होता है कि उसका जन्म 423 ई० पू० हुआ होगा। पुराणो के अनुसार नद राजाओ ने 100 वर्ष तक राज्य किया। इस प्रकार वे 423 ई० पू० से लेकर 323 ई० पू० तक गद्दी पर रहे। यह तथ्य उनके बाद राज्य करने वाले मौर्यों के कालक्रम से भी प्रतिपादित हो जाता है। इस प्रकार पौराणिक कालक्रम और मौर्यकाल के सुनिश्चित कालक्रम की सगति

ठीक बैठ जाती है।"

ईरान का आक्रमण

उर्मिला भागोवालिया के लेख "महाजनपदो का उदय ओर फारस एव यूनान के आक्रमण" (प्राचीन भारत का इतिहास) का उपयोग इस सदभ मे किया गया है उन्होने लिखा है जिस समय मगध के नेतृत्व मे पूव भारत मे एकीकरण का दोर चल रहा था, लगभग उसी समय पश्चिमोत्तर भारत मे विकेन्द्रीकरण दोर राजनीतिक अस्थिरता की धारा प्रबल थी। छोटे-छोटे राज्य अपनी स्वतत्रता बनाए रखने के लिए आतुर थे। सभी राज्यो म परस्पर वेमनस्य ओर सघष चलता रहता था। ऐसा कोइ शक्तिशाली राज्य नहीं था जो अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार करके राजनीतिक एकता स्थापित करता। इस राजनीतिक दुबलता ओर अराजकता ने विदेशी आक्रमणकारियो को अपनी ओर आकर्षित किया जिससे भारत पर दो भीषण विदेशी आक्रमण हुए। इनम स प्रथम इरानी (हरवामनी) आक्रमण था तथा दूसरा आक्रमण सिकदर महान ने किया।

इरानी आक्रमण के विषय मे हीरोडोटस, स्ट्रीवो तथा एरियन ने लिखा है। स्वय हरवामनी राजाओ के शिलालेख भी इस विषय मे बहुत कुछ बनाते हे। इसा पूव 559 मे साइरस फारस का राजा था। उसने ईसा पूर्व 529 तक राज्य किया। उसने बेक्ट्रिया, सीस्तान और मकरान को जीतकर कपिला पर चढाई की ओर हिन्दू कुश पर्वतमाला तक क प्रदेश को अपने अधीन कर लिया। इस प्रकार फारस साम्राज्य की पूर्वी सीमा भारत की पश्चिमी सीमा के साथ आगयी थी।

इस वश के डेरियस प्रथम (ईसा पूर्व 521-485) का भारत के साथ घनिष्ठ सबध था। हरवामनी साम्राज्य का विस्तार करते हुए उसने काम्बोज, पश्चिमी गाधार और सिन्धु को भी जीत लिया। डेरियस ने अपने राज्य को 23 प्रातो मे विभक्त किया, जिनके शासको को "क्षत्रप" कहा जाता था। काम्बोज, गधार और सिन्ध इन्ही प्रांतों मे शामिल थे और इन राज्यो मे डेरियस को बहुत धन प्राप्त होता था।

ये प्रदेश हरवामनी साम्राज्य की अधीनता से सभवत ईसा पूर्व चौथी सदी में स्वतत्र हो गए थे। सिकदर ने जब दिग्विजय करते हुए पूव की ओर आक्रमण किया तो पश्चिमी भारत के ये जनपद स्वतत्र थे और इन्होने स्वतत्र राज्यो के समान ही यमन सेनाओ का सामना किया था।

ईरानी आक्रमण का भारत मे प्रभाव

यद्यपि भारत का कुछ ही प्रदेश हरवामनी साम्राज्य के अधीन हुआ था पर इसमें संदेह नही कि इस आक्रमण ने भारतीय इतिहास एव सस्कृति को प्रभावित किया। विशाल ईरानी साम्राज्य की स्थापना के कारण भारत का पश्चिमी ससार के सम्पर्क अधिक दृढ हो गया। हरवामनी साम्राज्य से सबध होने पर भारत के विदेशी व्यापार को बहुत प्रोत्साहन मिला। इस समय के बहुत से व्यापारी समुद्र माग द्वारा पश्चिमी देशो मे आने-जाने शुरू हो गए।

और उनका सामान सुदूर मिस्र और यूनान तक पहुँचने लगा। ईरान के लोगो का भारत मे निरन्तर आना-जाना शुरू होने के कारण ईरानी सभ्यता और सस्कृति का भी प्रभाव गहराई से पडने लगा।

ईरानी लोगो से सपर्क का एक अन्य महत्त्वपूर्ण परिणाम पश्चिमी भारत मे खरोष्ठी लिपि का प्रचार हुआ। अनेक इनिहासकारो का मत है कि ईरानी लोगो के शासनकाल मे उनकी अरामाइक लिपि का भारत के उन प्रदेशो मे प्रचार हुआ, जो हरवामनी साम्राज्य के अन्तर्गत थे। इसी कारण बाद मे इन प्रदेशो मे दाई से बाई और लिखी जाने वाली खरोष्ठी लिपि का विकास हुआ।

ईरानी नरेश अपने साम्राज्य को प्रशासन-व्यवस्था के लिए प्रान्तो मे विभाजित करते थे। इन प्रान्तो को "क्षवपी" और इन पर राज्य करने वाले मुख्य अधिकारी को "क्षत्रप" कहा जाता था। मोर्यकाल मे भी ईरानी प्रभाव के फलस्वरूप साम्राज्य को प्रान्तो मे विभक्त करने की प्रथा जारी रही। उत्तर पश्चिमी भारत मे "क्षत्रप" शब्द काफी प्रचलित रहा। प्राचीन भारत मे उज्जयिनी तथा मथुरा के दो "क्षत्रप" वशो का उस समय प्रमुख स्थान है। उन्होने देश की राजनीतिक व सास्कृतिक गतिविधियो मे सक्रिय भाग लिया। यही कारण है कि यूनानी जीवन शैली का भारतीय जन-जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पडा। कालान्तर मे उनके अनेक रीति-रिवाज अथवा प्रशासनिक एव सामाजिक नियम भारतीय समाज के अभिन्न अग बन गये।

सिकन्दर का यूनानी आक्रमण

सिकन्दर मकदूनिया का राजा था और अरस्तू का शिष्य था। उसकी सैनिक प्रतिभा अनुपम थी। उसने एशिया मे विस्तृत विजय यात्राएँ कीं। 333-327 ई० पू० के बीच मे उसने फारसी साम्राज्य, मिस्र और बक्त्र पर विजय प्राप्त की और भारत पर आक्रमण किया अपने जीते हुए राज्यो की रक्षा के लिए उसने अपनी प्रगति के मार्ग से यूनानी सैनिको की छावनियॉ बसायी।

पहले यूनानी आक्रमण के समय भी पश्चिमोत्तर भारत की राजनीतिक दशा कुछ वेसी ही थी जैसी सिकन्दर के ईरानी आक्रमण के समय थी। मगध मे विशाल नद साम्राज्य था। पश्चिमोत्तर भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यो मे विभक्त था जिनमे से कुछ गणतत्रात्मक ओर कुछ राजतत्रात्मक राज्य थे। इनमे परस्पर फूट थी। इनका पारस्परिक सघर्ष ही इनके पतन का कारण बना। पश्चिमोत्तर भारत के प्रमुख राज्य थे—पश्चिमी व पूर्वी गधार, अभिसार, पुरू ग्लौगनिकाय, कठ, सौभूति, शिवि, क्षुद्रक, मालव, अम्बष्ठ, मद्र आदि। अपने भारत अभियान मे सिकन्दर को अनेक देशद्रोही और पदलोलुप राजाओ की प्रत्यक्ष एव परोक्ष सहायता मिली। शशिगुप्त और आम्भीक ने सिकन्दर को सहायता का वचन दिया, जिससे उसे बडा प्रोत्साहन मिला। पुष्करावती के सजय तथा अन्य कई राजाओ ने सिकन्दर की मैत्री स्वीकार करके उसे हर सभव सहायता दी। लेकिन सिकन्दर का मार्ग आसान नही था, क्योकि कपिशा और तक्षशिला के बीच की स्वतत्रता प्रिय और लडाकू जातियो ने पग-पग

पर सिकन्दर से लोहा लिया।

झेलम और चेनाब नदियो के बीच पुरू का राज्य था। सिकन्दर के साथ हुइ मुठभेड मे पुरू परास्त हुआ कितु सिकन्दर ने पुरू की वीरता पर प्रसन्न होकर उसका प्रदेश उसे लौटा दिया।

पुरू के बाद ग्लोगनिकाय तथा कठ जातियो से सिकन्दर का युद्ध हुआ परन्तु विजय सिकन्दर की रही। व्यास के पश्चिमी तट पर पहुँचकर सिकन्दर की सेना ने आगे बढने से इन्कार कर दिया। भारत के विविध जनपदो ने जिस वीरता से यूनानिया का मुकाबला किया था उससे यवन सैनिको का उत्साह भग हो गया। नद साम्राज्य की शक्ति के कारण भी यवन सेनिक आगे नही बढना चाहते थे। सिकन्दर को उनकी हठ के सम्मुख झुकना पडा।

ई० पू० 326 मे सिकन्दर वापस झेलम पहुँचा। यहाँ पर उसने अपने विजित प्रदेशो की समुचित शासन व्यवस्था की। व्यास और चेलम के बीच का भाग उसने पुरुराज को दे दिया। झेलम और सिन्ध के बीच का इलाका गाधारराज आम्भीक के सुपुर्द किया गया। सिन्ध के पश्चिम के भारतीय प्रदेश सेनापति फिलिप्स को दिए। भारत के जिन प्रदेशो पर सिकन्दर का आधिपत्य स्थापित हो गया था, उनके अनक नगरों मे यवन सेना की छावनियॉ स्थापित की गइ ताकि वे प्रदेश यवनराज के विरुद्ध विद्रोह न कर सके।

लौटते समय झेलम के समीपवर्ती प्रदेश मे सिकन्दर ने सौभूति को हराया। रावी नदी के साथ के प्रदेश मे मालव गण स्थित था। मालवो के पूर्व मे क्षुद्रक गण था। सिकन्दर ने अचानक मालवो पर आक्रमण किया। बहुत से मालवा अपनी जन्मभूमि की रक्षा के लिए लडते हुए मारे गए। सिकन्दर ने क्षुद्रको से संधि कर ली। इनके अतिरिक्त सिकन्दर को अबष्ठ, शत् और वसाति आदि जातियो से भी लडना पडा। उत्तरी सिन्ध में सिकन्दर ने मूसिकनोई नामक जनपद को हराया। सिन्धु नदी के मुहाने पर पहुँचकर उसने अपनी सेना को दो भागो मे विभक्त किया। जल सेनापति "नियार्कस" को जहाजी बेडे के साथ समुद्र के मार्ग से वापस लौटने का आदेश देकर वह स्वय मकरान के किनारे-किनारे स्थल मार्ग से अपने देश की ओर चला। मौर्य साम्राज्य का इतिहास पृष्ठ 309-310 पद लिखा है कि उस समय भारत अपनी समुद्री शक्ति मे इतना अधिक बलशाली था कि सिकन्दर की सेनाओ को भेजने के लिए भारत ने ही अपने जहाज दिए थे। रास्ते मे ई० पू० 323 बेबीलोन में सिकन्दर की मृत्यु हो गई।

भारत पर सिकन्दर के आक्रमण का प्रभाव

सिकन्दर भारत मे लगभग 19 महीने रहा और किसी स्थान पर साधारण जनजीवन से उसका विशेष सम्पर्क नहीं हुआ। वह भारत मे अपने साम्राज्य को सुदृढ बनाना चाहता था किन्तु उसके भारत छोडने से पहले ही उसके विरुद्ध विद्रोह प्रारम्भ हो गए थे। ऐसे विद्रोह उसके जाने के बाद और भी बढ गए होगे। भारत मे जो यवन सैनिक रह गए, उनमें से शायद कुछ स्वदेश लौट गए और कुछ चन्द्रगुप्त मौर्य की सेना मे भर्ती हो गए।

और उनका सामान सुदूर मिस्र और यूनान तक पहुँचने लगा। ईरान के लोगो का भारत मे निरन्तर आना-जाना शुरू होने के कारण ईरानी सभ्यता और सस्कृति का भी प्रभाव गहराई से पडने लगा।

ईरानी लोगो से सपर्क का एक अन्य महत्त्वपूर्ण परिणाम पश्चिमी भारत मे खरोष्ठी लिपि का प्रचार हुआ। अनेक इतिहासकारो का मत है कि ईरानी लोगो के शासनकाल मे उनकी अरामाइक लिपि का भारत के उन प्रदेशो मे प्रचार हुआ, जो हरवामनी साम्राज्य के अन्तर्गत थे। इसी कारण बाद मे इन प्रदेशो मे दाई से बाई और लिखी जाने वाली खरोष्ठी लिपि का विकास हुआ।

ईरानी नरेश अपने साम्राज्य को प्रशासन-व्यवस्था के लिए प्रान्तो मे विभाजित करते थे। इन प्रान्तो को "क्षचपी" और इन पर राज्य करने वाले मुख्य अधिकारी को "क्षत्रप" कहा जाता था। मौर्यकाल मे भी ईरानी प्रभाव के फलस्वरूप साम्राज्य को प्रान्तो मे विभक्त करने की प्रथा जारी रही। उत्तर पश्चिमी भारत मे "क्षत्रप" शब्द काफी प्रचलित रहा। प्राचीन भारत मे उज्जयिनी तथा मथुरा के दा "क्षत्रप" वशो का उस समय प्रमुख स्थान हे। उन्होने देश की राजनीतिक व सास्कृतिक गतिविधियो मे सक्रिय भाग लिया। यही कारण है कि यूनानी जीवन शैली का भारतीय जन-जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पडा। कालान्तर मे उनके अनेक रीति-रिवाज अथवा प्रशासनिक एव सामाजिक नियम भारतीय समाज के अभिन्न अग बन गये।

सिकन्दर का यूनानी आक्रमण

सिकन्दर मकदूनिया का राजा था और अरस्तू का शिष्य था। उसकी सैनिक प्रतिभा अनुपम थी। उसने एशिया मे विस्तृत विजय यात्राएँ कीं। 333-327 ई० पू० के बीच मे उसने फारसी साम्राज्य, मिस्र और बक्त्र पर विजय प्राप्त की और भारत पर आक्रमण किया अपने जीते हुए राज्यो की रक्षा के लिए उसने अपनी प्रगति के मार्ग से यूनानी सैनिको की छावनियॉ बसायी।

पहले यूनानी आक्रमण के समय भी पश्चिमोत्तर भारत की राजनीतिक दशा कुछ वेसी ही थी जैसी सिकन्दर के ईरानी आक्रमण के समय थी। मगध मे विशाल नद साम्राज्य था। पश्चिमोत्तर भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यो मे विभक्त था जिनमे से कुछ गणतत्रात्मक और कुछ राजतत्रात्मक राज्य थे। इनमें परस्पर फूट थी। इनका पारस्परिक सघर्ष ही इनके पतन का कारण बना। पश्चिमोत्तर भारत के प्रमुख राज्य थे—पश्चिमी व पूर्वी गधार, अभिसार, पुरू ग्लौगनिकाय, कठ, सौभूति, शिवि, क्षुद्रक, मालव, अम्बष्ठ, मद्र आदि। अपने भारत अभियान मे सिकन्दर को अनेक देशद्रोही और पदलोलुप राजाओ की प्रत्यक्ष एव परोक्ष सहायता मिली। शशिगुप्त और आम्भीक ने सिकन्दर को सहायता का वचन दिया, जिससे उसे बडा प्रोत्साहन मिला। पुष्करावती के सजय तथा अन्य कई राजाओ ने सिकन्दर की मैत्री स्वीकार करके उसे हर सभव सहायता दी। लेकिन सिकन्दर का मार्ग आसान नही था, क्योंकि कपिशा और तक्षशिला के बीच की स्वतंत्रता प्रिय और लडाकू जातियो ने पग-पग

पर सिकन्दर से लोहा लिया।

झेलम और चेनाब नदियो के बीच पुरू का गज्य था। सिकन्दर के साथ हुई मुठभेड़ मे पुरू परास्त हुआ कितु सिकन्दर ने पुरू की वीरता पर प्रसन्न होकर उसका प्रदेश उसे लौटा दिया।

पुरू के बाद ग्लोगनिकाय तथा कठ जातियो से सिकन्दर का युद्ध हुआ परन्तु विजय सिकन्दर की रही। व्यास के पश्चिमी तट पर पहुँचकर सिकन्दर की सेना ने आगे बढने से इन्कार कर दिया। भारत के विविध जनपदो ने जिस वीरता से यूनानिया का मुकाबला किया था उससे यवन सैनिको का उत्साह भग हो गया। नद साम्राज्य की शक्ति के कारण भी यवन सेनिक आगे नहीं बढना चाहत थे। सिकन्दर को उनकी हठ के सम्मुख झुकना पडा।

ई० पू० 326 मे सिकन्दर वापस झेलम पहुँचा। यहाँ पर उसने अपने विजित प्रदेशा की समुचित शासन व्यवस्था की। व्यास और झेलम के बीच का भाग उसने पुरुराज को दे दिया। झेलम और सिन्ध के बीच का इलाका गाधारराज आम्भीक के सुपुर्द किया गया। सिन्ध के पश्चिम के भारतीय प्रदेश सेनापति फिलिप्स को दिए। भारत के जिन प्रदेशों पर सिकन्दर का आधिपत्य स्थापित हो गया था, उनके अनेक नगरो म यवन सेना की छावनियाँ स्थापित की गइ ताकि वे प्रदेश यवनराज के विरुद्ध विद्रोह न कर सक।

लौटते समय झेलम के समीपवर्ती प्रदेश मे सिकन्दर ने साभूति को हराया। रावी नदी के साथ के प्रदेश मे मालव गण स्थित था। मालवो के पूर्व मे क्षुद्रक गण था। सिकन्दर ने अचानक मालवो पर आक्रमण किया। बहुत से मालवा अपनी जन्मभूमि की रक्षा के लिए लडते हुए मारे गए। सिकन्दर ने क्षुद्रको से सधि कर ली। इनके अतिरिक्त सिकन्दर को अबष्ठ, शत् और वसाति आदि जातियो से भी लडना पडा। उत्तरी सिन्ध में सिकन्दर ने मूसिकनोई नामक जनपद को हराया। सिन्धु नदी के मुहाने पर पहुँचकर उसने अपनी सेना को दो भागो मे विभक्त किया। जल सेनापति "नियाकस" को जहाजी बेडे के साथ समुद्र के मार्ग से वापस लौटने का आदेश देकर वह स्वय मकरान के किनारे-किनारे स्थल मार्ग से अपने देश की ओर चला। मौर्य साम्राज्य का इतिहास पृष्ठ 309-310 पद लिखा है कि उस समय भारत अपनी समुद्री शक्ति मे इतना अधिक बलशाली था कि सिकन्दर की सेनाओ को भेजने के लिए भारत ने ही अपने जहाज दिए थ। रास्ते में ई० पू० 323 बेबीलोन मे सिकन्दर की मृत्यु हो गई।

भारत पर सिकन्दर के आक्रमण का प्रभाव

सिकन्दर भारत मे लगभग 19 महीने रहा और किसी स्थान पर साधारण जनजीवन से उसका विशेष सम्पर्क नहीं हुआ। वह भारत मे अपने साम्राज्य को सुदृढ बनाना चाहता था किन्तु उसके भारत छोडने से पहले ही उसके विरुद्ध विद्रोह प्रारभ हो गए थे। ऐसे विद्रोह उसके जाने के बाद और भी बढ गए होगे। भारत मे जो यवन सैनिक रह गए, उनमें से शायद कुछ स्वदेश लौट गए और कुछ चन्द्रगुप्त मौर्य की सेना में भर्ती हो गए।

सिकन्दर के आक्रमण से पश्चिमी ओर उत्तर पश्चिमी भारत के छोटे-बडे राज्यो की सत्ता नष्ट हो गई थी। उसकी प्रबल इच्छा शक्ति के सम्मुख वह अपनी स्वतत्रता की रक्षा नही कर सके। इन राज्यो के कमजोर पड जाने पर चन्द्रगुप्त मोर्य के लिए अपना साम्राज्य प्रशस्त करने मे आसानी हो गई। सिकन्दर के आक्रमण से यह स्पष्ट हो गया कि केवल देशप्रेम की भावना ही सुरक्षा के लिए काफी नही थी। उस कार्य के लिए सगठन, सैन्य शक्ति ओर योग्य नेता की आवश्यकता थी। शायद इन्ही कारणो से चन्द्रगुप्त अपने प्रयास मे सफल हो सका था। एशिया मे यवनो की कई बस्तियॉ हो गई। इनसे भारतीयो का सास्कृतिक आदान-प्रदान होने लगा था। सिकन्दर ने अपनी विजय यात्रा के मध्य जिन स्कधागारो ओर बस्तियो का निर्माण करवाया, उनके द्वारा यूनानी जीवन का क्षीण प्रभाव अपने सीमित क्षेत्र मे भारत पर पडता रहा।

अप्रत्यक्ष रूप से सिकन्दर के आक्रमण का सास्कृतिक प्रभाव भी पडा। दो भिन्न जातियो के सम्पर्क ने एक-दूसरे पर प्रभाव डाला और दोनो के बीच सास्कृतिक आदान-प्रदान हुआ।

चन्द्रगुप्त मौर्य और मौर्यकाल

मौर्यकाल के सबध मे "प्राचीन भारत का इतिहास" के सम्पादक द्विजेन्द्र नारायण का और कृष्णमोहन श्रीमाली (हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय द्वितीय सस्करण 1995) ने उक्त पुस्तक मे हरिशकर कोटियाल का लेख (मौर्यकाल) सकलित किया है। हम उस लेख से अधिकाश उद्धरणो को यहा पर साभार प्रस्तुत कर मौर्यकाल की स्थिति को स्पष्ट कर रहे है –

"ईसा पूर्व 326 मे सिकन्दर की सेनाऍ पजाब के विभिन्न राज्यो मे विध्वसक युद्धो मे व्यस्त थीं। मध्यदेश और बिहार मे नद वश का राजा धननद शासन कर रहा था। सिकन्दर के आक्रमण से देश के लिए सकट पैदा हो गया था। धननद का सौभाग्य था कि वह इस आक्रमण से बच गया। यह कहना कठिन है कि देश की रक्षा का मौका पडने पर नद सम्राट यूनानियो को पीछे हटाने मे समर्थ होता या नहीं। मगध के शासक के पास विशाल सेना अवश्य थी किन्तु जनता का सहयोग उसे प्राप्त नही था। प्रजा उसके अत्याचारो से पीडित थी, असह्य कर भार के कारण राज्य के लोग उससे असतुष्ट थे। देश को इस समय एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो मगध साम्राज्य की रक्षा तथा वृद्धि करे, विदेशी आक्रमण से उत्पन्न सकट को दूर करे और देश के विभिन्न भागो को एक शासन-सूत्र मे बाधकर चक्रवर्ती सम्राट के आदर्श को चरितार्थ करे। शीघ्र ही राजनीतिक मच पर ऐसा व्यक्ति प्रकट भी हुआ। इस व्यक्ति का नाम था चन्द्रगुप्त' जस्टिन आदि यूनानी विद्वानो ने इसे "सेन्ड्रोकोट्टस कहा है। विलयम जोन्स पहले पश्चिमी इतिहास के विद्वान थे जिन्होने सेन्ड्रोकोट्टस की पहचान भारतीय ग्रथो के चन्द्रगुप्त से की है। यह पहचान अब भारतीय इतिहास के तिथिक्रम की आधारशिला बन गई है।

चन्द्रगुप्त के वश और जाति के सबध मे विद्वान एकमत नही है। कुछ विद्वानो ने ब्राह्मण ग्रथो मुद्राराक्षस, विष्णुपुराण की मध्यकालीन टीका तथा 10वी शताब्दी की धुण्डिराज

द्वारा रचित मुद्राराक्षस की टीका के आधार पर चन्द्रगुप्त को शूद्र माना हे। चन्द्रगुप्न के वश के सबध मे ब्राह्मण, बौद्ध एव जेन परपराओ मे अनुश्रुतियो के आधार पर केवल इतना ही कहा जा सकता हे कि वह किसी कुलीन घराने से सबधित नहीं था। विदेशी वृतान्तो एव उल्लेखो से भी स्थिति कुछ अस्पष्ट ही बनी रहती हे। मुरा नाम की शूद्रा से उनका जन्म होना बताया जाता हे। इसीलिए उन्हे मुरा से मौय होने का नाम मिला हे।

चन्द्रगुप्त के वश के समान उसके आरंभिक जीवन के पुनर्गठन का भी आधार किवदतियॉ एव परपराएँ ही अधिक है ओर ठोस प्रमाण कम हे। इस सबध मे चाणक्य चन्द्रगुप्त कथा का साराश उल्लेखनीय हे जिसके अनुसार नद वश द्वारा अपमानिन किए जाने पर चाणक्य ने धननद को समूल नष्ट करने का प्रण किया। सयोगवश चाणक्य की भेट चन्द्रगुप्त से हो गई और वह चन्द्रगुप्त को तक्षशिला ले गया। कहा जाता हं कि उत्तर-पश्चिमी भारत मे ही चाणक्य की सिकन्दर स भेट हुइ थी। शिक्षा-दीक्षा के पश्चात् चाणक्य की कूटनीति और चन्द्रगुप्त के मौर्य एव रणकोशल के सगम द्वारा नद वश के अतिम राजा धननद का उन्मूलन किया गया। इससे पहले ही चन्द्रगुप्त ने पजाब ओर सिन्धु मे भी सिकन्दर के विदेशी शासन से अप्रसन्न जनता के मनोभावा का लाभ उठाकर उन क्षेत्रो मे अपना अधिकार स्थापित करने मे सफलता प्राप्त कर ली थी।

मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त को नद वश के उन्मूलन तथा पजाब और सिन्धु म विदेशी शासन का अत करने का ही श्रेय नही ह। वरन् उसने भारत के अधिकाश भाग पर भी अपना आधिपत्य स्थापित किया। प्लूटाक ने लिखा हे कि चन्द्रगुप्त ने 6 लाख सेना लेकर समूचे भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। जस्टिन के अनुसार सारा भारत उसके कब्जे मे था। महावश मे कहा गया हे कि कोटिल्य (चाणक्य) ने चन्द्रगुप्त को ज्बूद्वीप का सम्राट बनाया। प्लिनी ने—जिसका वृतात मेगस्थनीज की इडिया पर आधारित हे—लिखा है कि मगध की सीमा सिन्ध नदी हे। पश्चिम मे सोराष्ट्र चन्द्रगुप्त के अधिकार मे था, इसकी पुष्टि शक महाक्षत्रप रुद्रदामन के जूनागढ अभिलेख से होती हे।

मैसूर से प्राप्त कुछ शिलालेखो के अनुसार उत्तरी मेसूर मे चन्द्रगुप्त का शासन था। एक अभिलेख मिला हे जिसके अनुसार शिकारपुर ताल्लु के नागरखड की रक्षा मौर्यो के जिम्मे थी। यह उल्लेख 14वी शताब्दी का हे। अशोक के शिलालेखो से भी स्पष्ट हे कि मैसूर साम्राज्य का महत्त्वपूर्ण अग था। प्लूटार्क, जस्टिन, तमिल ग्रथों तथा मेसूर के अभिलेखो के सम्मिलित प्रमाणो से स्पष्ट हे कि प्रथम मोय सम्राट ने विध्य पार के काफी भारतीय भागो को अपने साम्राज्य मे मिला लिया था।

चन्द्रगुप्त मौर्य का सेल्यूकस से युद्ध

जिस समय चन्द्रगुप्त मौय साम्राज्य के निर्माण मे तत्पर था, सिकन्दर का सेनापनि सेल्यूकस अपनी महानता की नीव डाल रहा था। सिकन्दर की मृत्यु के बाद उसके सेनानियो मे यूनानी साम्राज्य की सत्ता के लिए सघर्ष हुआ जिसके परिणामस्वरूप सेल्यूकस, पश्चिमी एशिया मे प्रभुत्व के मामले मे, ऐन्टिगोनस का प्रतिद्वद्वी बना। इ० पू० 312 मे उसने बेबीलोन

पर अपना अधिकार स्थापित किया। इसके बाद उसने ईरान के विभिन्न राज्यो को जीतकर वैक्ट्रिया पर अधिकार किया। अपने पूर्वी अभियान के दौरान वह भारत की ओर बढा। ई० पू० 305-4 मे काबुल के मार्ग से होते हुए वह सिन्धु नदी की ओर बढा। उसने सिन्धु नदी पार की और चन्द्रगुप्त की सेना से उसका सामना हुआ। सेल्युकस पजाब और सिन्ध पर अपना प्रभुत्व पुन स्थापित करने के उद्देश्य से आया था। किन्तु इस समय की राजनीतिक स्थिति सिकन्दर के आक्रमण के समय से भिन्न थी। पजाब और सिन्ध अब परस्पर युद्ध करने वाले छोटे-छोटे राज्यो मे विभक्त नही था, बल्कि एक बृहद् साम्राज्य का अग थे। आश्चर्य की बात है कि यूनानी तथा रोमी लेखक सेल्यूकस और चन्द्रगुप्त के बीच हुए युद्ध का कोई विस्तृत ब्यौरा नही देते। केवल एम्पियानस ने लिखा है कि "सेल्यूकस ने सिन्धु नदी पार की और भारत के सम्राट चन्द्रगुप्त से युद्ध छेडा। अत मे उनमे सधि हो गई और वैवाहिक सबध स्थापित हो गया।" जस्टिन के अनुसार चन्द्रगुप्त से सन्धि करके और अपने पूर्वी राज्य को शात करके सेल्यूकस एण्टीगोनस से युद्ध करने चला गया। एप्पियानस के कथन से स्पष्ट है कि सेल्यूकस चन्द्रगुप्त के विरुद्ध सफलता प्राप्त नहीं कर सका। अपने पूर्वी राज्य की सुरक्षा के लिए सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त से सधि करना ही उचित समझा और उस सधि को उसने वैवाहिक सबध (अपनी पुत्री का विवाह चन्दगुप्त से करके) और अधिक पुष्ट कर लिया। स्ट्रैवो का कथन है कि सेल्यूकस ने ऐरियाना के प्रदेश, चन्द्रगुप्त को विवाह सबध के फलस्वरूप दिए। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि यूनानी राजकुमारी मौर्य सम्राट को ब्याही गई और ये प्रदेश दहेज के रूप मे दिए गए। इतिहासकारो का आमतौर पर यह मत है कि सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त को चार प्रात-एरिया, अराकोसिया, जेड्रोसिया और पेरीपेमिसदाई (अर्थात् काबुल, कधार, मकरान और हैरात प्रदेश) दहेज मे दिए। अशोक के लेखों से भी सिद्ध होता है कि काबुल की घाटी मौर्य साम्राज्य के अतर्गत थी। इन अभिलेखो के अनुसार योन (यवन) गाधार भी मौर्य साम्राज्य के अतर्गत थे। प्लटार्क के अनुसार चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस को 500 हाथी उपहार मे दिए। सभवत इस सन्धि के परिणामस्वरूप ही हिन्दूकुश मौर्य साम्राज्य और सेल्यूकस के राज्य के बीच की सीमा बन गया। 2000 से अधिक वर्ष पूर्व भारत के सम्राट ने उस प्राकृतिक सीमा को प्राप्त किया जिसके लिए अग्रेज तरसते रहे और जिसे मुगल सम्राट भी पूरी तरह प्राप्त करने मे असमर्थ रहे। वैवाहिक सबध से मौर्य सम्राटो और सेल्यूकस वश के राजाओ के बीच मैत्रीपूर्ण सबध का सूत्रपात हुआ। सेल्यूकस ने अपने राजदूत मेगस्थनीज को चन्द्रगुप्त के दरबार में भेजा। ये मैत्री-सबध दोनो के उत्तराधिकारियो के बीच भी बने रहे। इन सबधो से भारत और यूनान की सास्कृतिक एकता भी मजबूत होती रही।

चन्द्रगुप्त एक कुशल योद्धा, सेनानायक तथा महान् विजेता ही नही था, वरन् एक योग्य शासक भी था। इतने बडे साम्राज्य की शासन व्यवस्था कोई सरल कार्य नही था। अत अपने मुख्य मत्री कौटिल्य (चाणक्य) की सहायता से उसने एक ऐसी शासन-व्यवस्था का निर्माण किया जो उस समय के अनुकूल थी।

चन्द्रगुप्त मौर्य की शासन व्यवस्था एक हद तक मगध के पूर्वगामी शासको द्वारा

विकसित शासन तत्र पर आधारित थी किन्तु इसका अधिक श्रेय चन्द्रगुप्त और कौटिल्य (चाणक्य) की सृजनात्मक क्षमता को ही दिया जाना चाहिए। कौटिल्य ने लिखा है कि उस समय शासनतत्र पर जो भी ग्रथ उपलब्ध थे और भिन्न-भिन्न राज्यो में जो शामन-प्रणालिया प्रचलित थी उन सबका भली-भॉति अध्ययन करने के बाद उसने अपना प्रसिद्ध ग्रथ अर्थशास्त्र लिखा है। विद्वानो का विचार है कि मौय शासन व्यवस्था पर तत्कालीन यूनानी तथा आख्मीनी शासन प्रणाली का भी कुछ प्रभाव पडा।

सक्षेप मे इतना उल्लेख काफी होगा कि चन्द्रगुप्न ने ऐसी शासन व्यवस्था स्थापित की जिसे परवर्ती भारतीय शासको ने भी अपनाया। इस शासन की मुख्य विशेषताएँ थीं—सत्ता का अत्यधिक केन्द्रीकरण, विकसित अधिकारितत्र, उचित न्याय व्यवस्था, नगर-शासन, कृषि, शिल्प, उद्योग, सचार, वाणिज्य एव व्यापार की वृद्धि के लिए राज्य द्वारा अनेक कारगर उपाय ढूँढकर राज्य को सम्मुन्नत करना था।

बिन्दुसार का राज्य

चन्द्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र बिदुसार सम्राट बना। यूनानी लेखको के अनुसार उसका नाम अमित्रकेटे था। विद्वानो के अनुसार अमित्रकेटे का सस्कृत रूप है अमित्रघात या अमित्रखाद (शत्रुओ का नाश करने वाला)। सभवत यह नाम बिन्दुसार का विरुद रहा होगा। तिब्बती लामा तारनाथ तथा जैन अनुश्रुति के अनुसार चाणक्य बिदुसार का भी मत्री रहा। चाणक्य ने 16 राज्यो के राजाओ और सामतों का नाश किया और बिन्दुसार को पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र पर्वत भू-भाग का सम्राट बनाया। हो सकता है चन्द्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् कुछ राज्यों ने मौर्य सत्ता के विरुद्ध विद्रोह किया हो। चाणक्य ने सफलतापूर्वक उनका दमन किया। दिव्यावदान मे उत्तरापथ की राजधानी तक्षशिला मे ऐसे ही विद्रोह का उल्लेख है। इस विद्रोह को शात करने के लिए बिन्दुसार ने अपने पुत्र अशोक को भेजा था। इसके पश्चात् अशोक स्वस देश गया। स्वस सभवत नेपाल के आस-पास के प्रदेश के खस रहे होगे। तारनाथ के अनुसार खस्या और नेपाल के लोगो ने विद्रोह किया और अशोक ने इन प्रदेशों को जीता।

विदेशो के साथ बिन्दुसार ने शांति और मैत्रीपूर्ण सबध बनाए रखा। सेल्यूकस वश के राजाओ तथा अन्य यूनानी शासकों के साथ चन्द्रगुप्त के समय के सबध बने रहे। स्टैवों के अनुसार सेल्यूकस के उत्तराधिकारी एण्टियोकस प्रथम ने अपना राजदूत डायमेकस बिन्दुसार के दरबार मे भेजा। प्लिनी के अनुसार टोलमी द्वितीय फिलेडेल्फस ने डायोनिसस को बिन्दुसार के दरबार मे नियुक्त किया था।

अपने पिता की भाति बिन्दुसार भी जिज्ञासु था और विद्वानो तथा दार्शनिको का आदर करता था। ऐथेनियस के अनुसार बिन्दुसार ने एण्टियोकस (सीरिया का शासक) को एक यूनानी दार्शनिक भेजने के लिए लिखा था। दिव्यावदान की एक कथा के अनुसार, आजीवक परिव्राजक बिन्दुसार की सभा को सुशोभित करते थे।

पुराणो के अनुसार बिन्दुसार ने 24 वर्ष तक, किन्तु महावश के अनुसार 27 वर्ष तक

राज्य किया। डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी ने बिन्दुसार की मृत्यु-तिथि ईसा पूर्व 272 निध की है कुछ अन्य विद्वान यह मानते है कि बिन्दुसार की मृत्यु ईसा पूर्व 270 मे हु

अशोक महान्

बिदुसार की मृत्यु के बाद अशोक राजा हुआ। अशोक के सबध मे जानकारी करने के प्रमुख साधन उसके शिलालेख तथा स्तभो पर उत्कीर्ण अभिलेख है। कि अभिलेख अशोक के प्रारभिक जीवन पर कोई प्रकाश नही डालते। इनके लिए हमे स तथा पालि मे लिख हुए बौद्ध ग्रथो पर निर्भर रहना पडता है। परपरानुसार अशोक ने भाइयो का हनन करके सिहासन प्राप्त किया था।

अपने राज्याभिषेक के नवे वर्ष तक अशोक ने मौर्य साम्राज्य की परपरागत नीति ही अनुसरण किया। अशोक ने देश कं अन्दर साम्राज्य का विस्तार किया किन्तु दूसरे के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार की नीति अपनाई।

भारत के अदर अशोक एक विजेता के रूप मे विख्यात रहा। अशोक ने खस, न को विजित किया और तक्षशिला के विद्रोह को शात किया। अपने राज्याभिषेक के वर्ष मे अशोक ने कलिग पर विजय प्राप्त की। ऐसा प्रतीत होता है कि नद वश के के बाद कलिग स्वतत्र हो गया था। प्लिनी की पुस्तक मे उद्धृत मेगस्थनीज के वि के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य के समय मे कलिग एक स्वतत्र राज्य था। अशोक के शिल के अनुसार युद्ध मे मारे गए तथा कैद किए हुए सिपाहियो की सख्या ढाई लाख थी इससे भी कई गुने सिपाही युद्ध में घायल हुए थे। मगध की सीमाओ से जुडे हुए शक्तिशाली राज्य की स्थिति के प्रति मगध शासक उदासीन नहीं रह सकता था। खा के समय मगध को कलिग की शक्ति का कटु अनुभव हुआ था। सुरक्षा की दृष्टि से क का जीतना आवश्यक था। कुछ इतिहासकारो के अनुसार कलिग को जीतने का एक व कारण भी था। दक्षिण के साथ सीधे सम्पर्क के लिए समुद्री और स्थल मार्ग पर मौर्यो नियत्रण आवश्यक था। कलिग यदि स्वतत्र देश रहता तो समुद्री और स्थल मार्ग से वाले व्यापार मे रुकावट पड सकती थी, अत कलिग को मगध साम्राज्य मे मिलाना आवश् था। किन्तु यह कोई प्रबल कारण नहीं प्रतीत होता, क्योंकि इस दृष्टि से तो चद्रगुप्त के समय से ही कलिग को मगध साम्राज्य मे मिला लेना चाहिए था। कौटिल्य के वि से स्पष्ट है कि वह दक्षिण के साथ व्यापार को बहुत महत्त्व देता था। विजित कलिग मगध साम्राज्य का एक अग हो गया। राजवश का कोई राजकुमार वहॉ का वाइस (उपराजा) नियुक्त कर दिया गया। तोसली इस प्रात की राजधानी बनाई गई।

कलिग युद्ध मे हुए नर सहार तथा विजित देश की जनता के कष्ट से अशोक अतरात्मा को तीव्र आघात पहुॅचा। युद्ध की भीषणता का अशोक पर गहरा प्रभाव प अशोक ने युद्ध की नीति को सदा के लिए त्याग दिया और "दिग्विजय" के स्थान "धम्म विजय" की नीति को अपनाया। डॉ० हेमचद्र रायचौधरी के अनुसार मगध का स बनने के बाद यह अशोक का प्रथम तथा आखिरी युद्ध था। इसके बाद मगध की वि

तथा राज्य विस्तार का वह युग समाप्त हुआ जिसका सूत्रपाठ बिबिसार की अग विजय के बाद हुआ था। अब एक नए युग का आरभ हुआ। यह युद्ध शांति, सामाजिक प्रगति तथा धर्मप्रचार का था, किन्तु इसके साथ-साथ राजनैतिक गतिरोध और सामरिक अकुशलता भी दिखाइ देने लगी थी। सैनिक अभ्यास के अभाव मे मगध का सामरिक आवेश और उत्साह क्षीण होने लगा।

कलिग की प्रजा तथा कलिग की सीमा पर रहने वाले लोगो के प्रति कैसा व्यवहार किया जाए इस सबध मे अशोक ने दो आदेश जारी किए। वे दो आदेश आज भी धोली और जौगड नामक स्थानो पर सुरक्षित है। ये आदेश तोलसी और समाया महायत्वों तथा उच्च अधिकारियो को सबोधित करते हुए लिखे गए है "सम्राट का आदेश हे कि प्रजा के साथ पुत्रवत् व्यवहार हो, जनता को प्यार किया जाए, अकारण लोगो का कारावास का दड तथा यातना न दी जाए। जनता के साथ न्याय किया जाना चाहिए। सीमात जातियो को आश्वासन दिया गया कि उन्हे सम्राट से कोई भय नहीं करना चाहिए। उन्हे राजा के साथ व्यवहार करने से सुख ही मिलेगा, कष्ट नहीं। राजा यथाशक्ति उन्हे क्षमा करेगा, वे धम्म का पालन करे। उन्हे सुख मिलेगा और मृत्यु के बाद स्वर्ग।"

ब्राह्मणधर्मी अशोक का धर्म परिवर्तन

इसमे कोई सदेह नहीं कि अपने पूर्वजो की तरह अशोक भी ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था। महावश के अनुसार वह प्रतिदिन 60,000 ब्राह्मणो को भोजन दिया करता था और अनेक देवी-देवताओ की पूजा किया करता था। कल्हण की राजतरंगिणी के अनुसार अशोक के इष्टदेव शिव थे। पशुबलि मे उसे कोइ हिचक नहीं थी। किन्तु अपने पूर्वजो की तरह वह जिज्ञासु भी था। मौर्य राजसभा में सभी धर्मो के विद्वान विवाद मे भाग लेते थे—जैसे ब्राह्मण, दार्शनिक, निग्रथ, आजीवक, बौद्ध तथा यूनानी दार्शनिक दीपवश के अनुसार अशोक अपनी धार्मिक जिज्ञासा शात करने के लिए विभिन्न सिद्वातो के व्याख्याताओ को राजसभा मे बुलाता था, उन्हे उपहार देकर सम्मानित करता था ओर साथ ही स्वय भी विचारार्थ अनेक प्रश्न प्रस्तावित करता था। वह यह जानना याहता था कि धर्म के किन पथों में सत्य है। उसे अपने प्रश्नो के जो उत्तर मिले उनसे वह सतुष्ट नहीं हुआ। एक दिन अपने राजभवन की खिडकी से उसने श्रमण निग्रोध को भिक्षा के लिए जाते हुए देखा ओर उसके व्यक्तित्त्व से बहुत प्रभावित हुआ। निग्रोध अशोक के बडे भाई सुमन का पुत्र था। निग्रोध के प्रवचन को सुनकर अशोक ने बौद्ध धर्म अपना लिया। बाद मे वह मोग्गलिपुत्त तिस्स के प्रभाव मे आ गया। ऐसी मान्यता है कि उपगुप्त ने अशोक को बौद्धधर्म मे दीक्षित किया।

बौद्धधर्मी अशोक का साम्राज्य

बौद्ध बनने के बाद अशोक ने युद्ध करना जहाँ समाप्त किया—वहाँ उसने बौद्ध धर्म का प्रचार और प्रसार करना शुरू कर दिया था। चद्रगुप्त मौर्य के विशाल साम्राज्य

को अशोक ने सुदृढ किया और समीपवर्ती अन्य राज्यो मे बोद्ध धर्म का प्रचार किया। इ
प्रचार कार्य मे उनके पुत्र महेन्द्र और पुत्री सघमित्रा ने विशेष योगदान दिया। अशोक
साम्राज्य की सीमा का विस्तार उनके शिलालेखो मे मिलता है। पश्चिमोत्तर मध्य एशि
से लेकर महाराष्ट्र तक अशोक का साम्राज्य था। पश्चिमी एशिया के ईरान, दजला, फुर
नदियो के अचल मे अशोक के अनेक शिलालेख मिले है—जिनसे स्पष्ट हो जाता है
अशोक का साम्राज्य अफगानिस्तान, ईरान, हिन्दुकुश से लेकर काम्बोज के पश्चिमी भ
द्वयक्ष तक फैला हुआ था।

अशोक के समय का निर्धारण

"प्राचीनभारत" के लेखक डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी ने इस पुस्तक के मौर्य साम्रा
शीषक के अतर्गत पृष्ठ 73 पर कालक्रम मे इस प्रकार लिखा है —

"महावश के अनुसार अशोक को उसके पिता ने 18 वर्ष की आयु मे अवती रा
का शासक नियुक्त किया था। उसकी राजधानी उज्जयिनी थी। वहाँ उसने विदिशा
शाक्य राजकुमारी महादेवी से विवाह किया। उससे महेन्द्र नामक पुत्र और सघमित्रा न
की कन्या का जन्म हुआ। पुराणो के अनुसार चद्रगुप्त ने 24 वर्ष अर्थात् ई० पू० 3
से ई० पू० 299 तक राज्य किया और बिदुसार ने 25 वर्ष अर्थात् ई० पू० 274 त
राज्य किया। इस प्रकार अशोक ई० पू० 274 मे गद्दी पर बैठा होगा। महावश के अनुस
उसका राज्याभिषेक 4 वर्ष बाद अर्थात् ई० पू० 270 मे हुआ। इस ग्रथ के अनुसार उस
अभिषेक के 6 वर्ष बाद अर्थात् ई० पू० 264 मे उसका ज्येष्ठ पुत्र महेन्द्र बौद्ध धर्म
दीक्षित हुआ। उस समय उसकी आयु 20 वर्ष की थी। अत महेन्द्र का जन्म 284
पू० मे माना जाना चाहिए। यह अनुमान किया जा सकता है कि उसके जन्म के सम
उसके पिता की आयु 20 वर्ष होगी। अत अशोक का जन्म 304 ई० पू० मे हुआ होग

मौर्य साम्राज्य का अंत

40 वर्ष तक राज्य करने के बाद लगभग ई० पू० 232 मे अशोक की मृत्यु हुई। उस
बाद लगभग 50 वर्ष तक अशोक के अनेक उत्तराधिकारियो ने शासन किया। किन्तु
मौर्य शासको के सबध मे हमारा ज्ञान अपर्याप्त तथा अनिश्चित हे। पुराण, बौद्ध तथा जै
अनुश्रुतियो मे इन उत्तराधिकारियों के नामो की जो सूचियॉ दी गई है वे एक-दूसरे से मे
नहीं खाती।

पुराणो के अनुसार अशोक के बाद कुणाल गद्दी पर बैठा। दिव्यावदान मे उसे धग
विवर्धन कहा गया है। "धर्म विवर्धन" सभवत उसके विरुद्ध था, किन्तु अशोक के अ
भी पुत्र थे। राजतरगिणी के अनुसार अशोक की मृत्यु के बाद जलौक कश्मीर का स्वत
शासक बन गया। तारनाथ के अनुसार वीरसेन भी अशोक का पुत्र था, जो गाधार का स्वत
शासक बन गया। इस प्रकार हम देखते है कि अशोक की मृत्यु के बाद ही साम्राज्य व
विघटन होना आरभ हो गया था। कुणाल अधा था, अत वह शासनकार्य मे असमर्थ था।

जैन तथा बोद्ध ग्रथो के अनुसार शासन की बागडोर उसके पुत्र सप्रति के हाथ में थी। अनुश्रुतियो के अनुसार सप्रति ही कुणाल का उत्तराधिकारी था। पुराणो तथा नागार्जुनी पहाडियो की गुफाओ के शिलालेखो के अनुसार दशरथ कुणाल का पुत्र था। नागार्जुनी गुफाओ को दशरथ ने आजीविको को दान मे दिया था। इन प्रमाणा के आधार पर यह मत प्रस्तुत किया गया है कि अशोक के बाद मगध साम्राज्य दो भागो मे विभक्त हो गया। दशरथ का अधिकार साम्राज्य के पूर्वी भाग मे तथा सप्रति का अधिकार पश्चिमी भाग मे हो गया था। विष्णु पुराण तथा गार्गी संहिता के अनुसार सप्रति का तथा दशरथ के बाद उल्लेखनीय मौर्य शासक सालिसुक था। उसे सप्रति का पुत्र वृहद्रथ (वृहस्पति) भी माना जा सकता हे। पुराणो मे ही नहीं वरन् हर्षचरित मे भी मगध के अंतिम सम्राट का नाम वृहद्रथ दिया गया है। इनके अनुसार मौर्य वश के अतिम सम्राट वृहद्रथ की उसके सेनापति पुष्यमित्र ने हत्या कर दी और स्वय सिहासन पर आरूढ हो गया।

मौर्य साम्राज्य की लडखडाती हुई दीवार ई० पू० 187 मे ढह गई और मौर्य साम्राज्य के अत के साथ ही भारतीय इतिहास की राजनीतिक एकता कुछ समय के लिए खंडित हो गइ। मौर्य साम्राज्य के बाद हिन्दुकुश से लेकर कर्नाटक एव बगाल तक एक ही राजवश का आधिपत्य नहीं रहा। देश के उत्तर-पश्चिमी मार्गो से कई विदेशी आक्राताआ ने आकर अनेक भागो मे अपने-अपने राज्य स्थापित कर लिए। दक्षिण मे स्थानीय शामक वश स्वनत्र हो उठे। कुछ समय के लिए मध्य प्रदेश का सिन्धुघाटी एव गोदावरी क्षेत्र से सबध टूट गया और मगध के वेभव का स्थान साकल, विदिशा प्रतिष्ठान आदि कई नगरो ने ले लिया।

सातवाहन तथा शुगयुग

गहराइ से देखा जाय तो चन्द्रगुप्त मौर्य के बाद से ही बृहद भारत की शक्ल बदलनी शुरू हो गई थी। जो कुछ भी भारतीय वचस्व शेष था—वह अशोक के बाद नया रूप लेन लगा। अशोक के बाद तो बृहद भारत की शक्ल अनेक रूपो मे परिवर्तित होने लगी थी। इस तस्वीर की झॉकी हमे आगे की पक्तियो में मिलेगी।

"भारतीय कृष्टि का क, ख" (हिन्दी भवन, इलाहाबाद) के प्रसिद्ध इतिहासकार जयचन्द्र विद्यालकार ने इस सबध मे विस्तार से लिखा हे। अत पाठको की जानकारी के लिये हम उन्हीं के शब्दो म "भारतीय कृष्टि का क ख" पुस्तक के पृष्ठ 142 को साभार उद्धृत कर तत्कालीन स्थितियो पर प्रकाश डालना अत्यावश्यक समझते है।

"सेलेडक्स के चन्द्रगुप्त मौर्य को अफगानिस्तान कलात लास-वेला सौप देने के बाद भी यूनानी साम्राज्य ईरान मर्व और बलख तक फैला हुआ था। लगभग 150 ई० पू० मे बलख का यूनानी शासक स्वतत्र राजा बन बेठा। ईरान के उत्तर पूर्वी प्रात (खुरासान) मे पाथव या पहलव लोग रहते थे। दो पार्थव सरदारो ने तभी इरान को स्वतत्र कर वहॉ अपना राजवश स्थापित किया।

सातवाहन युग का उदय

अशोक की मृत्यु के 25 वर्ष पीछे मौर्य साम्राज्य के भी दूर के प्रात स्वतत्र होने कलिग मे वैद्य और महाराष्ट्र मे सातवाहन या शालिवाहन राजवश खडा हुआ । अफगा का शासक सुभागसेन स्वतत्र हो बैठा। सुभागसेन की मृत्यु के बाद बलख के यूनानी ने अफगानिस्तान को जीत लिया। उस राजा का बैटा देमेत्रियस् लगभग 190 ई० गद्दी पर बैठा तो मौर्य साम्राज्य और ढीला पड चुका था। देमेत्रियस ने पजाब सिन्धु जीते, फिर मथुरा अयोध्या और पाटलिपुत्र पर चढाई की।

शुगवश का उदय

मौर्य राजा वृहद्रथ ने अपने को गड्ढे मे बद कर लिया। सेनापति पुष्यमित्र उसे सेना का निरीक्षण करने को बुलाकर सेना के सामने तलवार के घाट उतार दिया तब राजाहीन राजधानी मे डटकर शत्रु का सामना किया । तभी कलिग का जैन राजा ख झाडखड पार कर राजगृह तक आ पहुँचा। उसे आता देख यवन राजा डिमित घबडा और वाहनो को कठिनाई से बचाकर मथुरा को भाग गया। खारवेल ने इसके बा हिन्दुस्तान और उत्तरमथ (पजाब) पर चढाइयॉ कर वहॉ से भी यूनानियो को ठेला। भारत के दक्खिन छोर तक भी दिग्विजय किया, पर कोई टिकाऊ साम्राज्य खडा नहीं कि

"देवो के देव वासुदेव का यह गरुडध्वल" गरुड की मूर्ति विदिशा (भिलसा) म तक खडी है।

ऋषिक तुखारों का बलख कम्बोज आना

आधुनिक ठेठ चीन के उत्तरपच्छिम भाग के चिन प्रदेश के राजा ने अशोक के मे 246 ई० पू० में ठेठ चीन के दूसरे सब राज्यो को अपने अधीन कर अपना ना हुआग ती अर्थात् पहला सम्राट् रखा। मगोल मचु देशो के उत्तर इर्तिश से आमूर नद हूण लोग विचरते थे जो चीन पर धावे मारा करते थे। उनके धावो को रोकने के लिए पहले सम्राट् ने चीन की सारी उत्तरी सीमा पर भारी परकोटा बनवा दिया।

चीन की पच्छिमी सीमा पर लोपनोर के कॉठे मे ऋषिक लोग रहते थे। चीन की से रोके जाने पर हूणो ने 176 ई० पू० मे ठीक जबकि भारत मे नये राज्यों का स स्थापित हुआ था, तभी ऋषिको पर आक्रमण किया। ऋषिक उनसे हारकर तारीम के श्वेत पर्वत के दक्खिन आधुनिक कूचा प्रदेश मे जा बसे जहॉ उनसे पहले तुखार लोग थे। ऋषिक तुखारो के राजा बन गये। महाभारत सभापर्व (अ०28) मे ऋषिको के पर्वत के पास रहने का उल्लेख है। उस पहाड को वह नाम (श्वेतपर्वत) भारतीय उपनिवे ने दिया था जिसका चीनी अनुवाद पाइशान है जो अब तक उसका नाम है।

हूणो का आक्रमण

165 ई० पू० मे हूणो ने ऋषिको पर वहॉ भी चढाई की। ऋषिक और तुखार

थियानशान को लॉघकर पच्छिम की ओर बढे और सीर नदी के कॉठे मे शकों की बस्ती मे पहुँचे। उन्होने शको को वहॉ से भगा दिया और बलख को भी जीतकर वहॉ के यूनानी राज्य को मिटा दिया। वे बदख्शॉ पामीर (कम्बोज) मे भी फैल गये जिससे वह तुखार देश कहलाने लगा। उसके बाद वे हिन्दकोह के दक्खिन कपिश और गधार मे भी उतरने लगे।

चीन सम्राट वूती (143-85 इ० पू०) को अपनी पच्छिमी सीमा पर ऋषिको के बजाय हूणो का आ जाना नहीं रूचा। 138 ई० पू० मे उसने चाड किएन नामक दूत को ऋषिको को ढूँढने और उनसे फिर सम्पर्क को भेजा। चाडु किन को रास्ते में हूणो ने पकड लिया और दस बरस-केद मे रखा। पर कैद से छूटते ही वह फिर आगे बढा और 127 इ० पू० मे वक्षु के उत्तरी तट पर ऋषिक राजा के डेरे मे जा पहुँचा। उसकी वह यात्रा विश्व-इतिहास की बडी घटना थी। उसके द्वारा चीन वालो को पहले-पहले पच्छिमी देशो का पता मिला।

बलख के बाजार में चाड किएन ने चीनी रेशम और बॉस की बनी वस्तुएँ बिकती देखी। पूछने पर उसे बताया गया कि दक्खिन तरफ विशालशिनतू (सिन्धु-हिन्द) देश है जहॉ से वे आती है। चीन की दक्खिनपच्छिमी सीमा के किरात लोग भारत की उत्तरपूर्वी सीमा तक उस माल को ले आते थे, पर दोनो देशो के शिक्षित वर्गो को एक दूसरे का पता न था।

चाड किएन के लौटने पर पश्चिमी देशो से व्यापार बढाना चीन के शासको का विशिष्ट लक्ष्य बन गया। 115 ई० पू० तक वूती ने हूणो को अपनी पच्छिमी सीमा से उत्तर की तरफ खदेड दिया। तारीम कॉठे मे तब 36 राज्य थे। कुछ भारतीय उपनिवेशको के कुछ स्थानीय सरदारो के उपनिवेश। "भारतीय कृष्टि का क ख" लेखक जयचन्द्र विद्यालकार ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ 144 पर एक नक्शा-4 दिया है जिसमें एक सूची यह सदेश देती है कि ईसा पूर्व 300 से 100 वर्ष तक निम्न नगर व जनपद तथा रज्य बृहद भारत के अग थे। और कुछ राज्य तो मुगलकाल ओर अग्रेजो के समय तक बृहद भारत के विशिष्ट राज्य रहे । यजचन्द्र विद्यालकार की सूची इस प्रकार है।

1	गाधार जनपद	तक्षशिला, पुष्करावती, पुरुषपुर
2	काम्बोज	पामीर, बदख्शॉ
3	दव्यक्ष	काम्बोज का पश्चिमी अश (बदख्शॉ)
4	लम्पाक	लगमान
5	नगर हार	निग्रहार
6	कपिश जनपद	काफिरीस्तान
7	कश्मीर जनपद	श्रीनगर, शारदातीर्थ
8	दरददेश	दरदपुरी (गुरैज)
9	कबन्ध राज्य	तागदुम्बाश पामीर
10	खश राज्य	काशगर
11	ओशक राज्य	यगे हिसार

12	चौक्कुक	यारकद
13	खोतन	रल्ल्क, भीम, निजाग
14	मूल तुखारदेश	अन्दारा
15	चल्मद	चर्चन
16	नाभक	लौलान
17	कौशाग	तुर्फान
18	अग्नि	काराशहर
19	कुचि	कुचार
20	भरूक	अक्सू प्रदेश

खोतन मे अशोक के प्राय सौ सवा सौ वर्ष बाद राजा विजयसभव ने अपना रा स्थापित किया था। उसके प्रशासन मे आर्य बैरोचन ने खोतन के पशु पालको को लि सिखाया था, अर्थात् वहॉ की भाषा को पहले-पहल लिपिबद्ध किया था। सम्राट वू सीमा तारीम कॉठे के सब राज्यो से मैत्री स्थापित की थी।

शको का भारत आना

सीर कॉठे से खदेडे जाकर शक लोग हरात होते हुए लूटते मारते शकस्थान आने हरात और शकस्थान दोनो पार्थव राज्य मे थे। दो पार्थव राजा शको से लडते 128 123 ई० पू० मे मारे गये। उनके उत्तराधिकारी राजा मिथ्रदात द्वितीय ने शको के र का निश्चय किया। उस दशा मे वे लोग शकस्थान से सौवीर देश (सिन्ध) आये और जीतकर यहॉ अपना राज्य स्थापित किया। शको के सरदार शहि कहलाते, बडा शाहानुशाहि और प्रातीय शासक क्षत्रप। सिन्ध से शको ने सुराष्ट्र पर चढाई कर वहॉ गण को मिटाकर उसे भी जीत लिया। फिर उज्जैन पर चढाई कर उसे भी अपने अधि मे ले लिया (100 ई० पू०)। राजस्थान मे मालव गण को हराते हुए शुग साम्राज्य से म छीन वहॉ भी उनका एक क्षत्रप वश स्थापित हो गया (लग० 75 ई० पू०)। शुग से तब मगध का राज्य भी उसके काण्व वश के मत्री ने छीन लिया। दूसरी ओर उ और गुजरात से दक्खिन बढते हुए शको ने नासिक से पूने तक महाराष्ट्र का उत्तर पि अश सातवाहनो से ले लिया।

मथुरा से शक शाकल को बडे रास्ते मे रोहतक प्रदेश मे यौधेयो के गणराज्य मे हिमालय तराई मे कुनिन्दगण के राज्य मे तब बडी मारकाट मची। यौधेय पच्छिम से ह सतलज पर जा बसे। सिन्ध से शक सीधे गधार को भी बढे और तक्षशिला और पुष्करा से यवन राज्य मिटा वहॉ अपना राज्य स्थापित किया। यो उस कालखड मे पूने से पुष्करा तक शक क्षत्रप छा गये थे। यवन और शुग राज्य उन्होंने मिटा दिये थे। उनके साम्र के बीच घिरे हुए अनेक गणराज्य जहॉ-तहॉ से रह गये।

शको के जो लेख मिले है उनसे उनका मुख्यत जैन और बौद्ध धर्मानुयायी होना प्र होता है।

सातवाहनो का चरम उत्कर्ष

मथुरा और मगध मे शुग साम्राज्य जब मिट रहा था, तभी प्रतिष्ठान (पैठन) मे सातवाहन गद्दी पर गौतमी पुत्र सातकर्णि बैठा। उसने 18 बरस तैयारी करके 57 इ० पू० मे उज्जैन के क्षत्रप वश को हराकर "निरवशेष कर" दिया। तब मथुरा मे भी शको की सफाई हो गई थी।

विक्रम सम्वत् का प्रारम्भ होना

मालवगण उज्जैन के युद्ध मे गौतमी पुत्र क साथ था और उसने उस जीत के उपलक्ष्य मे मालव या विक्रम सवत् चलाया। शको का पजाब जीतना इसके बाद अधूरा रह गया। गधार मे कुछ अरसे के लिए उनका राज्य बचा रहा।

गौतमी पुत्र के साम्राज्य मे समूचा दक्खिन भारत, सुराष्ट्र ओर मध्यमेखला का बडा अश भी था। उसके बेटे वासिष्ठीपुत्र पुलु मावी ने लगभग 30 इ० पू० मे मगध ओर मध्यप्रदेश को भी जीत लिया। तब अफगानिस्तान-पजाब-सिन्ध के सिवाय प्राय समूचा भारन सातवाहन साम्राज्य मे आ गया। पुलु मावी ने अपने दूत रोम सम्राट औगुस्तुस के पास भी भेजे। रोम मे गणराज्य के बजाय साम्राज्य तभी स्थापित हुआ था।

भारत मे यह दशा आगे एक शताब्दी तक और कुछ व्यवधान के बाद फिर प्राय 30 बरस तक बनी रही।

हरउवती-गधार का पह्लव राज्य

कन्दहार शहर जिस अरगन्दाब या अरगन्द नदी पर बसा हे उसका नाम "अरखुती" का रूपातर हे। उसका पुराना नाम हरहैती, हरक्वैती या हरउवती था, जो यूनानी उच्चारण मे अरखुनी हुआ। "हरह्वैती" भी 'सरस्वती" का रूपातर था। अरगन्द नदी हेलमद (सेतुमत) मे मिलती हे जिसकी निचली धारा भारत की सीमा थी।

लगभग 40 ई० पू० मे शकस्थान म बनान नामक पुरुष ने नया राज्य स्थापित किया। उसने हरउवती को भी जीत लिया और वहॉ अपने भाई को उपराजा के रूप मे बिठाया। शकस्थान वाले बनान के सिक्को पर केवल यूनानी लेख है, पर हरउवती वाले सिक्का पर प्राकृत भी। अर्थात् उस समय तक हरउवती (कन्दहार दून) भारत मे था। बलख और गधार से यूनानी राज्य मिट जाने के बाद भी काबुल में तब छोटा सा यूनानी राज्य चला आता था। बनान के कनिष्ठ भाइ श्पलिरिष ने उसे भी जीत लिया। लगभग 10 ई० पू० से 10 ई तक अय का बेटा गुदुह्वर इस राज्य का राजा रहा। सब मिलाकर इस वश को पह्लव या हिन्दी-पार्थव कहा जाता है, पर इसका स्थानीय पठान होना भी सम्भव है। इसके राजा सिक्को पर अपने को धार्मिक कहते हे जिसका अर्थ माना गया है बौद्ध अनुयायी।

कम्बोज-गधार मे ऋषिक राज्य

ऋषिक लोग कम्बोज मे हिन्दकोह के घाटों द्वारा धीरे-धीरे कपिश और स्वात (उत्तरी

गधार) मे भी उतर आये । लग० 25 ई० पू० मे कुषाण कपस नामक उनका सरदार कम
कपिश स्वात के सब ऋषिको का मुखिया बन गया था। 2 ई० पू० मे उसने अपने
बनने की सूचना चीन-सम्राट के पास भेजी, और साथ ही पहले-पहल बौद्ध धर्म का
ग्रथ चीन भेजा। गुदुह्वर के बाद कुषाण कप्स ने पह्लव राज्य को भी जीत लिया।
उसकी राजधानी बदख्शॉ मे थी।

कुषाण के उत्तराधिकारी विम कपस ने पूर्वी पजाब और मथुरा तक अपना राज्य फैला
ऋषिको और शको का रगरूप वेश-भूषा एक सी होने से भारत के लोग ऋषिको के
शक कहते थे। विम के पूरब बढने पर सवा सौ बरस पुराना शक सातवाहन युद्ध
छिडा।

शालिवाहन-शकाब्द का प्रारभ होना

भारतीय ज्योतिषियो की अनुश्रुति है कि विक्रमादित्य की जीत के 135 वर्ष बाद उ
वशज शालिवाहन फिर शको से लडा, उसने शक राजा पर पूरब से चढाई कर मुल
के पास करोड की लडाई मे उसे मारा तब से शालिवाहन शकाब्द चला। मुलतानी दत
के अनुसार रावलपिडी तराफ के राजा सिरकप का बेटा रिसालू विक्रमादित्य के व
शालिवाहन के हाथ करोड की लडाई मे मारा गया। आधुनिक युग की लम्बी खोज
भी अन्तत इसी निष्कर्ष पर पहुँची है।

"सिरकप" का अर्थ है श्री कपस और रिसालू "ऋषिक" का तुच्छतासूचक रूप
कुषाण कपस बौद्ध था, विम शिव का उपासक था। उसके सिक्को पर नदी सहित
की मूरत है।

मध्य एशिया मे खोतन और चीन के साम्राज्य

विम जब पूर्वी पजाब की ओर अपना राज्य बढा रहा था तभी (लग० 60 ई०) ख
के राजा ने नीया से काशवर तक 13 राज्यो पर आधिपत्य जमा लिया। 73 ई० मे
के सम्राट होती ने सेनापति पानछाओ को वहॉ भेजा। खोतन-राज की सहायता से पानछ
ने उस सारे देश से चीन का आधिपत्य मनवा लिया। फिर पच्छिम के पहाडो को
सुग्ध को जीतते हुए कास्पी सागर के तट पर चीन का झडा जा गाडा। तारीम कॉठे
उत्तरपूर्वी छोर पर कुचि (कूचा) को अपना अधिष्ठान बना पानछाओ 102 ई० तक
के उस मध्य एशियाई साम्राज्य का शासन करता रहा। उसके बाद चीनी प्रभाव की
मध्य एशिया से उतर गई।

पेशावर और पैठन के साम्राज्य

करोड की लडाई के बाद पजाब के छोटे-छोटे राज्य और गणराज्य फिर उठ खडे
गधार मे ऋषिक सरदार बने रहे। सीता-तारीम कॉठो मे खोतन राज्य की शक्ति बनी
थी। ऋषिको की एक छोटी खॉप के मुखिया कनिष्क ने खोतन राज विजय सिह के

विजयकीर्ति और कुषाण वशी राजा को साथ ले उत्तर भारत पर चढाइ की। गधार से करोड तक सारे पजाब को, फिर मथुरा और अयोध्या को ले उन्होने पाटलिपुत्र पर चढाई कर वहाँ के राजा को हराया। वह राजा कोइ सातवाहन था। सारे उत्तर भारत पर कनिष्क ने अपने क्षत्रप नियुक्त कर दिये। इसके बाद उसने अफगानिस्तान की सीमा पर पाथव राजा को हराया और सीमा-तारीम कॉठे के सब राज्यो को आधिपत्य मे लेते हुए ठेठ चीन की सीमा तक अपना प्रभाव पहुँचा लिया। पुष्करावती के दक्खिन पुरुष पुर (पेशावर) बसा कर उसे उसने अपने विशाल साम्राज्य की राजधानी बनाया। उसने अपना सवत् भी चलाया जिसका आरभ लग० 108 ई० में है। अनेक भारतीय विद्वान् 78 ई० के शकाब्द को कनिष्काब्द मानते है, पर पानछाओ के रहते कनिष्क का आधिपत्य चीन की सीमा तक नहीं हो सकता था।

कनिष्क ने अपने सबधी षस्तन या चष्टन को अपने महाक्षत्रप रूप मे भारत का पश्चिमदेश अर्थात् सिन्धु सौवीर कच्छ सुराष्ट्र अवन्ति आदि जीतने का काम सौपा। ऋषिको और सातवाहनो का युद्ध तब उत्तर भारत से हटकर पच्छिम भारत मे आ गया। चष्टन एक बार इन जनपदो का महाक्षत्रप बन बैठा। पर पीछे राजा गौतमीपुत्र पुलोमावी ने अवन्ति और सुराष्ट्र वापिस ले लिये। क्षत्रप राज्य तब कच्छ और सिन्धु-सौवीर मे रह गया। चष्टन के पोते रूद्रदामा ने अपनी बेटी गो० पुलोमावी के बेटे वासिष्ठीपुत्र चकोर सातकर्णि को ब्याह दी। बीस-बरस पीछे गौ० पुलोमावी की मृत्यु के बाद रुद्रदामा ने सुराष्ट्र ओर अवन्ति पर फिर चढाई की और "दक्षिणापथपति सातकर्णि को दो बार खुली लडाई मे जीत कर भी निकट सबध के कारण नहीं उखाडा।" उन जनपदों की प्रजा ने रुद्रदामा को "रक्षण के लिए पति रूप मे बरा।" अपनी उत्तरी सीमा पर करोड के पास, रुद्रदामा ने "सब क्षत्रियो में प्रसिद्ध हुई अपनी वीर पदवी के कारण अभिमानी बने अविधेय यौधेयों को जबरदस्ती उखाड डाला।" यौधेय गण इससे पहले किसी के अधीन न हुआ था और विम के विरुद्ध सातवाहन राजा को शायद उसी ने अपनी सहायता के लिए बुलाया था।

कनिष्क की चढाई से प्रकट हुई सातवाहनो की कमजोरी से लाभ उठा कर तमिल्नाड के चोल चेर पाडय राज्य भी स्वतत्र हो गये।

भारत का यह राजनीतिक नक्शा अर्थात् उत्तर भारत अफगानिस्तान बलख कम्बोज सुग्ध और सीता तारीम कॉठे मे कनिष्क वशजो का साम्राज्य, दक्खिन भारत मे पैठन का सातवाहन साम्राज्य और पच्छिम भारत मे क्षत्रप राज्य, कनिष्क के काल से प्राय: दशाब्दियों तक बना रहा। सातवाहन राज्य लग० 210 ई० पू० से 220 ई० तक कभी भारत की एक बडी और कभी एकमात्र शक्ति के रूप मे लगातार बना रहा। इसलिए हम इस सारी अवधि को सातवाहन युग कहते है।

सीता कॉंठे का हिन्द

सातवाहन युग के राजनीतिक इतिहास का जो खाका ऊपर दिया गया है उससे प्रकट है कि सीता और वक्षु के कॉठो का गगा कॉठे से तब कैसा घनिष्ठ सबध था। पामीर और

ठेठ के बीच के देश से भारतीय कृष्ठि के जो अवशेष मिले हे, उनसे उसका अशोक के जमाने से 1000 ई० तक भार का एक भाग ही होना सिद्ध हुआ है। इसी से फ्रासीसी विद्वानो ने उस अवधि के लिए उसका नाम सर्विदिया (Ser-india) रखा है जिसका शब्दार्थ होता हे चीन-हिन्द। मैने हिन्दी मे उस अर्थ मे उपरला हिन्द या चीन-हिन्द नाम चलाने का यत्न किया, पर हमारे शिक्षित वर्ग ने उन नामो के तत्त्व को समझा नही। सीता-तारीम सगम के आगे तारीम की धारा को भी हम सीता कह सकते हे। वह अथ लेते हुए हम इस सारे देश को सीता कॉठा कहे तो वह नाम हमारे शिक्षित वर्ग के ध्यान मे उक्त तत्त्व को शायद अधिक अच्छा ला दे।

कम्बोज की राजधानी द्वारका थी, जिसे डॉ० मोतीचन्द्र ने पामीर के दरवाज नगर मे पहचाना है। पामीर की रीढ उमकी पूर्वी सीमा पर उत्तर दक्खिन समानातर फैले सरीकोल और कन्दर पर्वतो से बनी है। दोनो के बीच की दून अब तागदुम्बाश पामीर कहलाती है। चीनी यात्रियों ने उसका जो नाम लिखा है वह कबन्ध जैसे किसी सस्कृत नाम का रूपातर है। उसके पूरब सीमा की उपरली धारा पर चोक्कुक देश था जो अब यारकन्द कहलाता है। यारकन्द के उत्तर काश्गर है, जिसका नाम खश जाति के नाम पर माना जाता है। खश लोग नेपाल से कश्मीर तक सारे हिमालय मे अब भी है। काश्गर का चीनी नाम सू ले भी सस्कृत-मूलक है, पर उसका मूल अब तक चीन्हा नहीं गया। काश्गर ओर चोक्कुक के बीच का प्रदेश उष या ओष था, जिसे अब यगे हिसार सूचित करता है। चोक्कुक के पूरब पहाडो की तलहटी मे खोतन राज्य था जिसके उत्तर रल्लक और पूरब भीम और निजाग (नीया) प्रदेश थे। तुखारो का पहला अभिजन नीया के पूरब था। उसके पूरब चमद प्रदेश था और फिर लोप झील के कॉठे मे नाभक, जिसे चीनी नफोमो कहते थे। खोतन से नाभक तक सब प्रदेशो के उत्तर तक लामकान मरूभूमि फैली है। नाभक से चीन की पच्छिमी सीमा की तुएन-हवाड बस्ती तक भी मरूभूमि है।

तकलामकान के उत्तर तारीम नदी है जिसके और थियानशान के बीच उत्तरी उपनिवेश परपरा थी। इनमे काश्गर के पूरब भरूक देश (आधुनिक उच-तुरफान) था, फिर कुचि (कूचा) ओर अग्नि का तुर्की अनुवाद यगे शहर अब भी उसका नाम है।

कुचि और अग्नि के उत्तर श्वेत पर्वत था। महाभारत मे श्वेत पर्वत के पहले ऋषिको के उल्लेख से सिद्ध है कि महाभारत का वह अश 176-165 ई० पू० के बीच लिखा गया है और इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि उस काल मे आर्यावर्त्त के लोग श्वेत पर्वत पर पहुँच चुके थे। अग्निपुर के पूरब आधुनिक तुरफान के स्थान पर एक और भारतीय उपनिवेश था, जिसका मूल नाम नहीं मिला, पर जिसे छठी शताब्दी ई० मे चीनी लोग कौशाड कहते थे। नाभक और कौशाड आर्यावर्ती उपनिवेशन के पूरवी छोर थे।

उक्त जनपदों मे से खोतन और कुचि के राज्य सब से समृद्ध और शक्तिशाली रहे। कनिष्क और उसके वशजो के युग मे सीता कॉठे की राजभाषा गधार की प्राकृत रही, जिसके बहुत लेख पाये गये है। इन उपनिवेशो मे कितना अश भारतीय प्रवासियो का था और कितना उनसे प्रभावित ऋषिक तुखारो का, यह तो आज नहीं कहा जा सकता। शक ऋषिक

तुखार लोग वश से आय ओर आयभाषी रहे थे। सीता कॉठे मे आयावर्ती कृष्टि की दीक्षा लेकर ऋषिक-तुखार सीर और वक्षु के मुहानो तथा खीवा तक भी जाबसे, जहॉ उन्होंने अपना राज्य स्थापित किया। यो उनके कारण समूचा मध्य एशिया तब भारतीय कृष्टि सस्कृनि का क्षेत्र बन गया। तुर्को के आने के बाद भी उस दशा मे विशेष अतर नहीं पडा। समरकद बलख आदि जो कृष्टि के केन्द्र उन्होने स्थापित किये, वे इस्लाम के आने के बाद भी चमकते रहे ओर इस्लाम स्वय उनसे बहुत प्रभावित हुआ।

भारत मे कनिष्क वश के राज्य को कुछ लोग विदेश कहते हे। अग्रेजी जमाने के नक्शे से उनके मस्तिष्क इतने जकडे है कि वे प्राचीन परिस्थिति मे सोच ही नहीं सकते। उत्तर वैदिक ओर महाजनपद काल मे जसे दक्खिन भारत मे आयावर्त्ती उपनिवेश स्थापित हुए, वेसे ही मौर्य सातवाहन युगो मे सीता कॉठे म। यदि उसके बाद दक्खिन के किसी आयप्राण द्राविड राजा के उत्तर भारत पर राज्य को हम विदेशी नहीं कहने तो सीता कॉठे क आर्यावर्ती जीवन मे दीक्षित किसी राजा के राज्य को केसे विदेशी कह सकते हे।

गगा पार का हिन्द

महाजनपद युग मे भारत के लोगो ने सुवर्णभूमि को पहले-पहल जाना था, अशोक के प्रशासन मे वहॉ धमविजयी गये, सातवाहन युग मे वहॉ भारनीय उपनिवेश खडे हो गये। पूरब के ये देश ओर द्वीप भारतीयो के वहॉ जाने तक जगलों से ढके थे, जिनमें अग्निय वश के लोग नवाश्मी आखेटको का जीवन बिताते थे। इसी से इस तरफ से भी भारत और चीन का सपर्क न था। धीरे-धीरे वहॉ भारतीय बस्तियॉ बसीं। आधुनिक बर्मा और मलाया के तट पर कई छोटी बस्तिया थी। सातवाहन साम्राज्य के चरम उत्कर्ष के युग (57 ई पूर्व 60 ई) मे व्येतनाम के दक्खिनी तट पर पाडुरग और कौठार नामक दो उपनिवेश खडे हुए। पाडुरग सैगोन से दो सौ मील उत्तर पूव आधुनिक फनरन या पडरन हे। कौठार उसके उत्तर था, वहा श्रीमार राजकुल का राज्य था। इनके पश्चिम मेकाड के मुहाने से बरमा के तेनासरीम तट तक तथा 15 अक्षाश से समुद्र तक फैला एक बडा राज्य था, जिसे चीनी लोग फूनान कहते थे। उसका मूल सस्कृत नाम अभी तक नहीं मिला। फूनान की स्थापना दक्षिण भारत के कौण्डिन्य ब्राह्मण ने की थी। उसने वहा जाकर सोमा नागी अर्थात् किसी नागपूजक आग्नेय जाति की लडकी से विवाह किया था जिससे उनके वशज सोम वश के कहलाए।

मल्लका प्रायद्वीप मे तक्कोल, सिहपुर (सिगापुर) आदि बस्तिया थीं। उसके दक्षिण के बडे द्वीप (सुमात्रा) का नाम सुवर्णद्वीप पड चुका था। उसके आगे यवद्वीप था। "यव" का ही रूपातर "जावा" हे। उसमे सरयू नदी अब तक है। पर यवद्वीप मे उस युग मे उसके आगे वाली द्वीपाली भी गिनी जाती थी, क्योंकि बाल्मीकि रामायण के अनुसार उसमे शिशिर पर्वत था जो अब इरियान (न्यू गिनी) मे हैं।

सुवर्णभूमि के साथ सब से पुराना व्यापार सबध चम्पा (भागलपुर) के लोगों का था। उन्होने सुवर्णभूमि के पूर्वी छोर पर चम्पा उपनिवेश स्थापित किया, जो कौठार और पाडुरग

को जीतकर 192 ई० मे बडा राज्य बन खडा हुआ। कौठार के उत्तर उसका विजय और उसके उत्तर अमरावती प्रात था। चम्पा की राजधानी इन्द्रपुर अमरावती मे थी।

रोम के लोग भारत के पूरब के इन देशो और द्वीपो को 'इदिया त्रान्स गागेतिका' गगा पार का हिन्द कहते थे। यूरोप के लोग अब भी इन्हे पहला हिन्द (फर्दर इडिया) ही कहते है जो बिल्कुल ठीक है।

ध्यान रहे कि इन उपनिवेशो की स्थापना केवल आर्यावर्ती कृष्टि का फेलाव न था, वह स्पष्ट आर्थिक राजनीतिक फैलाव था, और उसकी प्रेरणा बौद्ध धर्म से नहीं मिली थी। इनके सस्थापक प्राय शैव थे।

सुवर्णभूमि मे भारतीयो का आना-जाना बुद्ध के जन्म से भी पहले से चल रहा था।

चीन और रोम के सबध

सीता कॉठे और सुवर्णभूमि के भारतीय उपनिवेशको द्वारा आबाद किये जाने से चीन के साथ भारत का सबध स्थल और जल दोनो रास्तो से हो गया। दोनो देशो में वस्तुओ और विचारो का विनिमय होने लगा।

68 ई० मे ऋषिको के भारतीय राज्य से धर्मरत्न और कश्यप मातग नामक भिक्षु चीन गये। चीन की राजधानी सीडानफू मे, जो अब शेनसी प्रात का मुख्य नगर है, उनके लिए पोमा-सी अर्थात् श्वेताश्व नामक विहार स्थापित किया गया। 144 ई० मे लोकोत्तम नामक भिक्षु उस विहार मे पहुॅचा। वह जन्म से पार्थव युवराज था, पर भिक्षु हो गया था। उसने पहले-पहल सस्कृत ग्रथों का चीनी अनुवाद आरम्भ किया। उसके एक चीनी शिष्य ने चीन में पहले-पहल सस्कृत पढी।

पच्छिमी एशिया और मिस्र मे जब तक यूनानी राज्य रहे, उनके साथ भारत का अच्छा वाणिज्य रहा। दूसरी शताब्दी ई० पू० मे जब बलख के यूनानी राज्य को ऋषिक तुखारो ने मिटाया, तभी रोम वालो ने पच्छिम के सारे यूनानी राज्यो को जीत लिया था। रोम का साम्राज्य भूमध्य सागर के चौगिर्द था। भारतीय नाविक उसके सब प्रदेशो मे पहुॅचते थे। लग० 100 ई० पू० मे कुछ भारतीय अपने जहाज के साथ दिशामूढ हो जर्मनी के उत्तरी तट पर एल्ब नदी के मुहाने पर जा पहुॅचे। वहॉ तब सुएव नामक जर्मन जाति रहती थी। सुएवो के राजा ने उन्हे अपने पडोस के उत्तरी इतालिया के शासक किन्तुस मेतेल्लुस चेल्लेर के यहॉ भिजवा दिया। वहॉ जब उन्होने लातीनी मे खुल कर बातचीत की तब पता चला कि वे भारतीय है। वह भारतीय जहाज जर्मनी के उत्तरी तट पर कैसे पहुँचा यह इतिहास की बडी समस्या है। बहुत सभव है वह मिस्र के उत्तरी छोर से ही चला था।

भारत से रोमी साम्राज्य को हाथीदॉत का सामान, सुगन्धित द्रव्य, मसाले, मोती, कपडे आदि जाते और बदले मे अधिकतर सोना आता। 77 ई० मे रोमी लेखक प्लिनी ने लिखा कि भारत रोमी साम्राज्य से प्रति वर्ष साढे पाच करोड सेस्तके (लगभग 6 लाख अशर्फी) खींच ले जाता है। और "वह कीमत हमे अपनी ऐयाशी और अपनी स्त्रियो के लिए देनी पडती है।" पेत्रोनिउस् नामक लेखक ने रोमी स्त्रियो की शिकायत करते हुए लिखा कि

वे "बुनी हुई हवा की जाले" (भारतीय मलमल) पहनकर अपना सौन्दय दिखानी है।

एक ओर रोम ओर पार्थव तथा दूसरी ओर चीन और सुवणभूमि के बीच होने स भारत इस युग मे सारे सभ्य जगत् का मध्यस्थ हो गया था। और उस समय भारत का महत्त्व सर्वोपरि था।

जयचन्द्र विद्यालकार के उपरोक्त दिवरण से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता हे कि ईसा पूव 250 वर्ष से लेकर ईसा पूर्व 100 वर्ष तक बृहद् भारत की स्थिति मे पर्याप्त अतर आया है। इस कालखड मे जैन, बोद्ध धर्म और आर्य अर्थात् ब्राह्मण धम के विचारो मे पयाप्त सघर्ष होने की झलकियो के भी दर्शन होते है।

इस कालखड मे धार्मिक विचारो का अधिक सघर्ष देखने को मिलता है। कुछ राजा बौद्ध थे। कुछ जैन थे कुछ ब्राह्मण धम के कट्टर समर्थक थे। पश्चिमी एशिया अथात् यूनान और ईरान देशो से आने वाले राजाओ मे भी इन तीनो धर्मो के अनुयायी थे। परन्तु मुख्य सघर्ष ब्राह्मण धर्म के अनुयायियों और बौद्ध धर्म के अनुयायियो के मध्य हुआ प्रतीत होता है।

सघर्षो से ठोस साहित्य का निर्माण

यवन, शक, ऋषिक और कुषाण आदि जातियो के बौद्धाओ ने बृहद् भारत के पूर्वाचल पर जहॉ आक्रमण किया वहा॑ शालिवाहन (सातवाहन) और शुग वश के राजाओं ने भी यवनो शको और ऋषिको को भारत की भूमि से पश्चिमी बृहद् भारत की सीमाओ से बाहर खदेडने का प्रशसनीय कार्य किया। सफलता असफलता के सघर्ष में भारतीय वाडमय का निखरा हुआ रूप सामने आने लगा यह इस कालखड की विशेषता है।

ऋग्वेदादि वेदो का सम्पादन सातवाहन युग की देन

विद्वानो का यह मानना है कि आर्यो के आदि ग्रथ—ऋग्वेद से लेकर ब्राह्मण ग्रथों तक के अनेक ग्रथो का सम्पादन मौर्यात्तर काल मे ही हुआ। यह कालखड अशोक की मृत्यु के बाद से ईसा की पहली शताब्दि के अन्दर माना जाता है।

विद्वानो का स्पष्ट कथा है कि ऋग्वेद मे जो नये मत्र जोडे गये हैं —वे भी इसी कालखड मे जोडे गये हैं। बल्कि प्राचीन ग्रथो का सिद्धातपरक सम्पादन इसीकाल खड मे हुआ।

सातवाहन युग मे ही महाभारत का सम्पादन हुआ

महाभारत इस युग के वाड मय मे स्मृतियो के समान महत्त्व की कृति है। उसके विभिन्न अश विभिन्न उपयुगो के है। उदाहरण के लिए दिग्विजयपर्व मे लग० 170 ई० पू० का नक्शा है, पर शांतिपूर्व के अन्तर्गत राजधर्मपर्व (101, 5) मे मथुरा के चौगिर्द यवन-काम्भोजो की बस्ती का और दस्युओ द्वारा की गई उथलपुथल का (78, 12, 18, 36, 38, 39,` उल्लेख है, इसलिए वह 85 ई० पू० के बाद का है। भगवद्गीता यदि पूर्व नद युग कं न हो तो इसी युग रचना है।

काव्य साहित्य

रामायण महाभारत के बाद सस्कृत प्राकृत काव्य साहित्य का उदय भी इसी युग मे हुआ। छोटे-छोटे सुदर नाटको का कर्त्ता भास जायर्स वालजी के मत से नारायण काण्व के राज्यकाल मे अर्थात् पहली शताब्दी ई० पू० मे मगध मे हुआ था। तब विद्वानो ने वह बात नहीं मानी, तो भी भास है सातवाहन युग का तो है ही।

भारत का नाटयशास्त्र भी इसी युग का हे, सो उसके जनपदो के विवरण से प्रकट होता है। विभिन्न जनपदो के लोकनृत्यो का वह विवरण अत्यन्त मूल्यवान हे। पर उसके ठीक अनुशीलन का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। आज भरत नाटय से जो वस्तु पेश की जाती है उसमे उसकी परपरा मे उत्पन्न मध्यकालिक और पिछले समय क नृत्य भी मिले हैं। भरत नाट्य की ऐतिहासिक छानबीन अभी पूरी बाकी है। कामसूत्र की रचना भी सातवाहन युग में ही हुई थी।

लौकिक सस्कृत और प्राकृत भाषा

सातवाहन युग मे लौकिक सस्कृत के साथ प्राकृत भाषा का बोलबाला था। महत्त्वपूर्ण बात है कि इस समूचे युग मे कापिशी से कॉची तक और कन्दहार से कलिग तक के सभी अभिलेखों और सिक्को पर एक ही प्राकृत भाषा लिखी पाई जाती है। वह सातवाहन युग की राष्ट्रभाषा थी, और यह माना गया है कि अशोक ने सारे भारत मे व्यवहार समता और दण्ड समता स्थापित करन के जो प्रयत्न किये थे उन्हीं से वह राजभाषा समता उत्पन्न हुई। सातवाहनो मे प्राकृत साहित्य को विशेष प्रोत्साहन मिला। सातवाहन राजा हाल की गाथा सप्तशती से तो सतसइयो की शेली का चलन शुरू हो गया था।

व्याकरण और कोश

पाणिनी ने जो व्याकरण ईसा पूर्व 9 वीं शताब्दि मे लिखा था। उसकी व्याख्या भी इसी कालखड मे पुष्यमित्र के पुरोहित पतजलि ने की थी। पाणिनी के अष्टाध्यायी पर पतजलि का महाभाष्य अपने ढग की महत्त्वपूर्ण कृति है। इसी कालखड मे भारतीय राज्यक्षेत्र और कृष्टिक्षेत्र के विस्तार के साथ सस्कृत के सरल व्याकरणो की मॉग हुई थी। तब कुन्तल सातकर्णि के मत्री शर्ववर्मा ने स्वल्पमति ओर दूसरे शास्त्रो मे लगे हुओ के क्षिप्राप्रबोध के लिए कातंत्र व्याकरण लिखा था। बृहत्तर भारत के लिए यह बहुत उपयुक्त था, मध्य एशिया के तुखार लोग मध्य काल तक उसी से सस्कृत सीखते रहे। कातत्र की ही पद्वति पर कचायन ने पालि व्याकरण लिखा था। तमिल व्याकरण लोल्कप्पियम् भी लिखा गया।

अमर कोश की रचना

सुप्रसिद्ध अमरकोश भी इसी युग की, अनुमान से पहली शताब्दी ई० पू० की कृति है। उसके देव प्रकरण मे विष्णु के 39 नामो मे कृष्ण के बहुत से नाम है, पर राम का कोई उल्लेख नहीं है। इसलिए वह ऐसे युग की कृति है जब कि राम अवतार की कल्पना नहीं हुई थी।

बौद्ध जैन वाङ्मय का प्रचार

मौर्य काल से सातवाहन युग के अत तक बौद्धो के सर्वास्तिवादी महासाघिक आदि सम्प्रदाय उन्नति पर रहे। इन्होने अपने ग्रथ सस्कृत मे या प्राकृत मिश्रित सस्कृत में, जिसे मणिप्रवाल शैली कहते है, लिखे। महासाघिको का विनय ग्रथ महावस्तु इसी प्रकार की शैली मे लिखा हुआ है। सवास्तिवादी वाङ्मय मे अवदान उल्लेखनीय है। अवदान का अर्थ हे महान् त्याग का कार्य वैसे कार्यो के वृतान्त भी वैसी ही सरल भाषा में लिखे गये हैं।

जेनो की आचार्य परम्परा मे स्थलभद्र के बाद जो सात आचार्य हुए वे दशपूर्वी कहलाते है। उनमे से अन्तिम वज्रस्वामी का काल लगभग 70 ई० आता है। कहते हैं उसी के शिष्य आयरक्षित ने सूत्रो को अग उपाग आदि चार भेदों में बॉटा था। वास्तव में मोर्य युग मे जैनो के थोडे ही सूत्र थे जो सातवाहन युग मे अधिक हो जाने के बाद यो चार भागों में विभक्त किये गये।

ज्योतिष

ज्योतिषी गर्ग की गर्ग सहिता "सातवाहन युग की ही रचना है जिसमे ज्योतिष के गूढ रहस्यो का विवरण दिया हुआ। इस सहिता के युग पुराण अश मे पाटलिपुत्र पर यवनो के आक्रमण का विवरण लिखा हुआ है। इससे भी स्पष्ट होता है कि यह सातवाहन युग की ही रचना है।

कालान्तर मे यूनान के साथ गहरे सबध होने के कारण भारतीय ज्योतिष पर यूनान का पर्याप्त प्रभाव पडा।

वैद्यक

धनवन्तरि के समय से भारत मे वैद्यक का प्रभाव रहा है। स्वर्ग के सम्राट इन्द्र स्वय औषधियो के ज्ञाता थे, प्राचीन समय से यूनान आदि के वैद्य भारत मे आकर वैद्यक विद्या सीखने आते थे। पिछले पृष्ठो मे इन सभी तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है।

इस युग (सातवाहन) मे चरक और नागार्जुन जैसे श्रेष्ठ वैद्य हुये है। एक लोह शास्त्रकार पतजलि सातवाहन काल मे भी हुआ है।

कला क्षेत्र मे उन्नति

सातवाहन काल की एक प्रमुख विशेषता यह भी रही है कि इस युग मे कला के सभी अगो का विकास ही नहीं हुआ बल्कि भारतीय जन-जीवन मे उन कलाओं की विशिष्ट छाप भी पडी है। बृहद्भारत के विभिन्न अचलों मे कला के अनेक रूप विकसित हुये। ई० पू० पहली शताब्दी के मध्य से उत्तर पश्चिम मे गधार मे कला की एक विशेष शैली का जन्म हुआ। इसे गधार शैली कहते हैं। इस शैली को ग्रीक-बौद्ध भी कहते हैं। इस कला की विषयवस्तु को बौद्ध परम्परा से लिया गया परन्तु निर्माण का ढग यूनानी अपनाया गया। इस कला का सर्वाधिक विकास कुषाण काल मे हुआ।

ब्राह्मण धर्मी कलाओ का विकास

बृहद् भारत के प्राय सभी क्षेत्रों मे जहॉ ग्रीक-बौद्ध कला के दर्शन होते है—वहॉ ब्राह्म धर्मी देवताओ के अत्यत महत्त्वपूर्ण मूर्तियो एव विशिष्ट कृतियो के भव्य दर्शन भी हो जा हैं। शुग काल और सातवाहन काल की अद्भुत ब्राह्मण धर्मी कृतियो को आज भी बनार लखनऊ और मथुरा आदि के सग्रहालयो मे देखा जा सकता है।

सातवाहन काल के शिव, कार्तिकेय और विष्णु के निरूपणो के उदाहरण आज प्राप्य है। कृष्णलीला के कुछ अत्यत महत्त्वपूर्ण एव सुदर निरूपण सातवाहन काल मे मथु शैली में मिलते हैं।

सातवाहन युग में भी बौद्ध प्रभाव

यह परम सत्य है कि सातवाहन काल मे भी कला का आधार मुख्यत बौद्ध धर्म रहा। धनी व्यापारियो की विभिन्न श्रेणियो एव शासको द्वारा इसे बहुत प्रोत्साहन दिया गय इस समय के कला स्मारक, स्तूप, गुहा, मन्दिर (जिन्हे चैत्य कहा जाता है) एव सघार अथवा विहार है। पर्वतो में खोदी गई गुफाऍ मन्दिरो एव भिक्षुओ के निवास स्थान के र मे प्रयुक्त होती थीं। पश्चिमी अचलो मे सातवाहन एव उनके उत्तरवर्ती राजाओ ने बह सी बडी-बडी गुफाऍ खुदवाई। इनमे से प्राचीनतम है कार्ले की गुफाऍ। जिनका सौन्द बहुत विकसित है। इन गुफाओ के आकार मे धीरे-धीरे वृद्धि होती गई जैसा कि बाद अजता एव एलोरा भी गुफाओ से प्रतीत होता है। स्तूपो के तोरणो एव बाढो के बन मे भी हुआ है जैसा कि भरहुत एव सॉची मे देखने को मिलता है। आश्चर्य यह है कि दोनो का निर्माण ब्राह्मणधर्मी पुष्पमित्र ने करवाया था। दक्कन मे अमरावती मे भी ई की दूसरी शती के लगभग मूर्तिकला का विकास हुआ। नागार्जुनकोण्ड मे भी इसी का के अवशेष मिले हैं। स्तूप के निकट कुछ शिलाखड मिले है, जिन पर बुद्ध के जीवन कुछ दृश्य दिखाए गए है।

जैन धर्म के अनुयायियों ने मथुरा मे मूर्तिकला की एक शैली को प्रश्रय दिया, ज शिल्पियो ने महावीर की एक मूर्ति बनाई थी। यह कला शैली "मथुरा शैली के नाम प्रसिद्ध है। यह शैली ई० पू० पहली शताब्दी के अत मे प्रयुक्त हुई। कालान्तर मे कुषा शासकों का प्रश्रय पाकर यह फली-फूली। प्राय ऐसा कहा जाता है कि कुषाणो के सरक्ष के फलस्वरूप बौद्ध धर्म का विकास हुआ। यद्यपि यह असत्य नहीं है किन्तु एक पक्षी अवश्य है। केवल मथुरा से ही ऐसे सैकडो अवशेष—मूर्तियाँ, पाषाण पट्ट आदि मिले जो कुषाण सरक्षण मे बने और जैन धर्म और ब्राह्मण धर्म के विभिन्न पहलुओं पर प्रका डालते है।

दर्शन का उदयकाल सातवाहन युग

वैशेषिक दर्शनो का हृदय भी सातवाहन काल मे ही माना जाता है। न्याय वैशेषि पद्धतियो में ईश्वर को सृष्टि का कर्ता माना गया है। परन्तु साख्य दर्शन मे ऐसा नहीं है

ब्राह्मण धर्मी कलाओ का विकास

बृहद् भारत के प्राय सभी क्षेत्रों मे जहॉ ग्रीक-बौद्ध कला के दर्शन होते है—वहॉ ब्राह्मण धर्मी देवताओ के अत्यत महत्त्वपूर्ण मूर्तियो एव विशिष्ट कृतियो के भव्य दर्शन भी हो जाते हैं। शुग काल और सातवाहन काल की अद्‌भुत ब्राह्मण धर्मी कृतियो को आज भी बनारस, लखनऊ और मथुरा आदि के सग्रहालयो मे देखा जा सकता है।

सातवाहन काल के शिव, कार्तिकेय और विष्णु के निरूपणो के उदाहरण आज भी प्राप्य हैं। कृष्णलीला के कुछ अत्यत महत्त्वपूर्ण एव सुदर निरूपण सातवाहन काल मे मथुरा शैली मे मिलते है।

सातवाहन युग मे भी बौद्ध प्रभाव

यह परम सत्य है कि सातवाहन काल मे भी कला का आधार मुख्यत बौद्ध धर्म ही रहा। धनी व्यापारियो की विभिन्न श्रेणियो एव शासको द्वारा इसे बहुत प्रोत्साहन दिया गया। इस समय के कला स्मारक, स्तूप, गुहा, मन्दिर (जिन्हे चैत्य कहा जाता है) एव सघाराम अथवा विहार हैं। पर्वतो में खोदी गई गुफाऍं मन्दिरो एव भिक्षुओ के निवास स्थान के रूप मे प्रयुक्त होती थीं। पश्चिमी अचलो मे सातवाहन एव उनके उत्तरवर्ती राजाओ ने बहुत सी बडी-बडी गुफाएँ खुदवाई। इनमे से प्राचीनतम है कार्ले की गुफाऍं। जिनका सौन्दर्य बहुत विकसित है। इन गुफाओ के आकार मे धीरे-धीरे वृद्धि होती गई जैसा कि बाद मे अजता एव एलोरा भी गुफाओ से प्रतीत होता है। स्तूपो के तोरणो एव बाढो के बनाने मे भी हुआ है जैसा कि भरहुत एव सॉची मे देखने को मिलता है। आश्चर्य यह है कि इन दोनो का निर्माण ब्राह्मणधर्मी पुष्यमित्र ने करवाया था। दक्कन मे अमरावती मे भी ईसा की दूसरी शती के लगभग मूर्तिकला का विकास हुआ। नागार्जुनकोण्ड मे भी इसी काल के अवशेष मिले है। स्तूप के निकट कुछ शिलाखड मिले है, जिन पर बुद्ध के जीवन के कुछ दृश्य दिखाए गए हैं।

जैन धर्म के अनुयायियों ने मथुरा मे मूर्तिकला की एक शैली को प्रश्रय दिया, जहाँ शिल्पियो ने महावीर की एक मूर्ति बनाई थी। यह कला शैली "मथुरा शैली के नाम से प्रसिद्ध है। यह शैली ई० पू० पहली शताब्दी के अत मे प्रयुक्त हुई। कालान्तर मे कुषाण शासको का प्रश्रय पाकर यह फली-फूली। प्राय ऐसा कहा जाता है कि कुषाणो के सरक्षण के फलस्वरूप बौद्ध धर्म का विकास हुआ। यद्यपि यह असत्य नहीं है किन्तु एक पक्षीय अवश्य है। केवल मथुरा से ही ऐसे सैकडो अवशेष—मूर्तियॉ, पाषाण पट्ट आदि मिले है, जो कुषाण सरक्षण मे बने और जैन धर्म और ब्राह्मण धर्म के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं।

दर्शन का उदयकाल . सातवाहन युग

वैशेषिक दर्शनो का हृदय भी सातवाहन काल मे ही माना जाता है। न्याय वैशेषिक पद्धतियो में ईश्वर को सृष्टि का कर्ता माना गया है। परन्तु साख्य दर्शन मे ऐसा नहीं है।

साख्य दर्शन सृष्टि उत्पत्ति मे सत्व, रजस, और तमस तीन गुणो की महत्ता को मानता है। साख्य दर्शन का उदय वैदिक काल मे हो गया था। परन्तु, उस दर्शन का सम्पादन भी सातवाहन काल मे ही हुआ।

पतजलि का योग दर्शन तो सातवाहन युग की ही कृति है। शुगवशीय पुष्पमित्र के शासन काल मे पतजलि योगदर्शन की रचना हुई है।

मीमासा और वेदान्त के ऊपर भी गहनतम अध्ययन सातवाहन युग मे ही हुआ। पूर्व और उत्तर मीमासा दर्शन जैमिनी और व्यास वादरायण की कृतियॉ मानी गई है।

यह भी सिद्ध हो चुका है कि छहो दर्शन चाणक्य (कौटिल्य) के बाद और सातवाहन अथवा मौर्य काल के समय की कृतियॉ है। इस सबध मे स्पष्ट कहा गया है कि सर्वप्रथम जब जैन बोद्ध और लोकायम विचारको ने प्राचीन बृहद्भारत के विचारो की रूढियो पर तीखी सीधी चोटे कीं तब समाज में खलबली मची। और सभी शृखलाबद्ध दार्शनिक विचारो का उदय हुआ। तभी छह दर्शन सामने आये। वैसे उत्तर वैदिक काल मे दर्शनो की शृखला शुरू हो गई थी। तब उनकी रचना सूत्र शैली मे हुई थी। इन तथ्यो से भी स्पष्ट हो जाता है कि प्राय सभी दर्शन मौर्यकाल अथवा सातवाहन काल के बाद की रचनायें नहीं है। ओर उनका सम्पादन भी सातवाहन काल मे ही हुआ है। यह तथ्य सभी पूर्वी एव पश्चिमी विद्वानो को स्वीकार्य हो गया है।

पौराणिक धर्म का उदय

मौर्य साम्राज्य के पतन के साथ बौद्ध धर्म के विरुद्ध जो जन लहर उठी, उसमे अश्वमेध के अर्थात् वैदिक धर्म-कर्म के पुनरुद्धार की विशेष पुकार थी। परन्तु समस्या यह थी कि वैदिक धर्म के जो धर्म-कर्म वैदिक समाज मे थे वे इतने समय के बाद उसी पुराने रूप मे नहीं आ सकते थ। अत वैदिक धर्म के सस्कारो को जगाने के लिये नये प्रयास हुए। नया धर्म बना। जिसे पौराणिक धर्म के नाम से ख्याति् मिली। क्योंकि इस धर्म की सारी बुनियाद पुराणो के माध्यम से शुरू की गई। और इस पौराणिक धर्म का सम्पूर्ण साहित्य पुराणो मे विद्यमान है।

भागवत धर्म, वैदिक काल के अतिम समय से लेकर उत्तर वैदिक काल तक पनपता रहा। उसकी जडे सूखी नहीं। इसका उदाहरण हमे सातवाहन काल मे दिखाई देता है। सहयाद्रि के नानाघाट मे सातवाहनो के अभिलेख मिले है। जिनमे से एक अभिलेख में सकर्षण और वासुदेव को प्रणाम किया गया है। पतजलि के महाभाष्य (2, 2, 34) मे धनपति बलराम और केशव के मन्दिरो का उल्लेख है। साथ ही शिव, स्कन्द विशाख (5, 3, 99) की प्रतिमाओ का भी उल्लेख है।

पुराणो के अनुसार शिव की उपासना का प्रारभ लाट देश (सूरत-भरूच) के लकुलीश नामक युगपुरुष ने किया था। ई० पू० दूसरी शताब्दी में शिव की पूजा सबसे अधिक होने लगी थी। यह तथ्य भी सिद्ध हो चुका है कि बृहद् भारत के पहले उपनिवेशक "शैव" ही थे।

पौराणिक धर्म मे एक पहलू यह भी था कि कर्मकाड की पुरानी परम्परा को पुन स्थापित किया जाय। यही कारण हे कि पहले-पहले स्मृतियो म भी देवमन्दिरो ओर देव मूर्तियो की निदा की गई हे। भक्ति प्रधान भावनाओ को दबाया गया। परन्तु जेसे-जैसे पुराणो का प्रभाव जमता गया वेसे-वैसे देव मन्दिरो, देव मूर्तियो ओर भक्ति भावना का अधिक प्रचार प्रसार होने लगा। स्वय स्मृतियो मे इन सबका उल्लेख होने लगा।

शिव की श्रेष्ठता के साथ विष्णु की पूजा भी होने लगी थी। हेलि उदोर के गरुड ध्वज से यह सिद्ध हो जाता हे कि ई० दूसरी शताब्दी मे विष्णु के वाहन "गरुड" को मान्यता मिल चुकी थी।

यौधेयगण अपने सिक्को पर "स्कन्द" की मूर्ति और विम कपस "शिव" की मूर्ति छापता (उकेरता) था। यहॉ तक कि बौद्ध धर्मावलबी कनिष्क भी अपने सिक्को पर स्कन्दईश (शिव) और वात (वायु) की मूर्तियो को छापने (उकेरने) मे पीछे नही रहता था। कनिष्क के कई सिक्के ऐसे भी मिले है जिनमे स्कन्दईश (शिव) की स्पष्ट छाप है।

तमिल साहित्य का महत्त्वपूर्ण समय सातवाहन युग ही माना जाता है। तमिल सघम के ग्रथो मे बौद्ध विहारो के अतिरिक्त कल्पवृक्ष, ऐरावत हाथी, वज्रायुध (इन्द्र के वज्र), शिव, बलदेव, सूर्य, चन्द्र, सुब्रहनाण्य, सातवाहन, जिन, काम ओर यम के मन्दिरो का उल्लेख है। जिन मन्दिरो मे इन देवताओ की पूजा होती थी। सातवाहन ओर ऐयनार के मन्दिरो मे शायद उनके कुलदेवता अथवा कुल देवियो की पूजा होती होगी। उस समय पट्टिनीदेवी नामक एक देवी की पूजा भी प्रचलित था। सिहल (श्री लका) मे आज भी इस देवी की पूजा होती है।

कनिष्क के प्रशासन मे सूर्य की मूर्ति की पूजा होती थी। विद्वानो का मानना है कि ईरान से भारत मे सूर्य मूर्ति पूजन का सिलसिला शुरू हुआ। ईसा० पूर्व दूसरी शताब्दी मे मुलतान तथा बृहद् भारत के पश्चिमी देशो के अनेक स्थानो पर सूर्य मन्दिर थे।

यह भी सर्वविदित तथ्य है कि बृहद भारत के पश्चिमोत्तर देशो के इन सूर्य मन्दिरो के पुजारी शाक द्वीपी अथवा मग जाति के ईरानी ब्राह्मण होते थे। ईरान आदि देशो मे जो सूर्यमूर्तियॉ मिली है—उनमे ईरानी ढग के जूते मूर्ति के घुटनो तक पहनाये हुये मिलते है। इसका प्रभाव बाद मे भारत मे भी पडा है।

याज्ञवल्क्य (81, 271, 295 प्र०) स्मृति मे गणपति विनायक और नवग्रहो की पूजा का विवरण मिलता है। गृह्य सूत्रो मे भी विनायक की पूजा का वर्णन है। मगल कार्यो के लिये विनायक अर्थात् गणेश पूजा करना आवश्यक माना गया।

महाभारत के शातिपर्व (अ० 344-61) मे वासुदेव पूजा का विवेचन है। नारायण के अवतारो मे रामदाशरथि का नाम भी है। परन्तु राम की पूजा उल्लेख अन्य अवतारो की तरह नहीं है। लिग पूजा का उल्लेख भी महाभारत के अनुशासन पर्व (अ० 45) मे है। भीष्म पर्व (अ० 23) मे दुर्गास्तुति का विवरण भी मिलता है। परन्तु कृष्ण की गोपी-लीला का वर्णन महाभारत मे नहीं है।

महाभारत के सम्पादन की सत्यता का प्रमाण उपरोक्त तथ्यो से मिल जाता है कि

सातवाहन युग मे ही महाभारत का क्रमबद्ध सम्पादन हुआ होगा। क्योकि उपरोक्त तथ्य सातवाहन युग म ही उभरकर सामने आये है।

इस कालखड मे बौद्ध, जेन और वदिक धम अथवा पाराणिक धम के अनुयायी जड-जन्तुआ की पूजा भी करने लगे थे।

महायान धर्म का उदय

वेदिक धम से जसे पोराणिक धम का विकास हुआ ठीक उसी नरह पुराने बौद्ध धम से महायान धम का भी उदय हुआ ओर यह भी सातवाहन युग मे ही हुआ।

पाराणिक धम अथवा माग मे महापुरुषा को जैसे "अवतार" माना गया। वसे ही बुद्ध को भी बोद्ध धम वालो ने "अवतार" की श्रेणी मे स्थान दिया। यही महायान माग माना गया। क्योकि इस माग के मानने वालो का विश्वास पौराणिक धम के अनुसार अवतार होने की परम्परा पर टिका हुआ था।

कालान्तर मे पाराणिक धम के हिन्दुओ ने बुद्ध को भी अपना लिया। ओर अपने 24 अवतारो मे बुद्ध को भी एक "अवतार" मानकर उसकी पूजा का मार्ग सबके लिये सुलभ कर दिया। महायानी तो पूजा करने ही लगे थे।

नागाजुन ने 'महायान" को बुद्ध धर्म का सबसे बडा मार्ग मानकर ' हीनयान" की उपेक्षा कर डाली। तबसे महायान को ही सबसे अधिक मान्यता मिलने लगी। बुद्धत्व प्राप्ति के लिये तीन मार्ग बनाये गये हे—प्रथम अहत यान, दूसरा प्रत्यक् (पच्चेक) बुद्ध यान ओर तीसरा सम्यक्-समबुद्ध यान। नागाजुन ने तीसरे मार्ग "सम्यक् सम्बुद्ध" को ही महायान (सबसे श्रेष्ठ) मार्ग मानकर शेष दो मार्गो की "हीनयान" कहकर उपेक्षा कर दी।

स्मृतियो का प्रभाव

जलप्लावन काल से ही मनु, आर्यो के लिये अनेक नियम बनाने लगे थे। जीवन, जीने से लेकर सामाजिक धार्मिक और नेतिक मूल्यो के लिये नियम निर्धारित किये गये थे। और ऐसे नियम समय-समय पर बदलते रहे है।

सातवाहन युग मे ही मनुस्मृति का सम्पादन

यह भी आश्चर्यजनक सत्य है कि वैदिक काल से मनु के सिद्धातों का सम्पादन सातवाहन युग मे ही हुआ है। जर्मन विद्वान गेओर्ग विउवहेर (1886) ने मनुस्मृति का अनुवाद करते हुये (अग्रेजी अनुवाद" सेक्रैड बुक्स ऑफ दी ईस्ट" जिल्द 25 भूमिका पृष्ठ 97-98 पर लिखा है कि मनुस्मृति का वर्तमान स्वरूप इसा पूर्व 200 वर्ष और 100 वर्ष ईसा पूर्व हुआ। इस तथ्य को प्रसिद्ध इतिहासकार काशी प्रसाद जायसवाल ने भी अपनी पुस्तक "मनु एड याज्ञवल्क्य" के पृष्ठ 32 पर लिखा है कि पतजलि के महाभाष्य के ठीक बाद, यह (मनुस्मृति) ईसा पूर्व 150-120 वर्ष के बीच की रचना है।"

महाभाष्य में पहलवो का उल्लेख न होने और मनुस्मृति मे उनका उल्लेख होने के कारण

जायसवाल ने अपना तर्क प्रस्तुत कर मनुस्मृति का समय 150-120 ईसा पूर्व निर्धारित किया था। वैसा देखा जाय तो जायसवाल की इस उक्ति का कोई मूल्य नहीं क्योंकि महाभारत के सभापर्व के अतर्गत, दिग्विजयपर्व के वर्णन से यह प्रकट है कि लगभग 170 ई० पू० मे आर्यावर्त्त के लोग तारीम कॉठे से कास्पी सागर तक के देशो को जानते ही नही थे। बल्कि आर्यो का उस क्षेत्र मे वर्चस्व स्थापित था। तो भी जायसवाल जी की निश्चित की हुई मनुस्मृति की तिथि बिल्कुल ठीक है। निश्चयपूर्वक कह सकते है कि मनुस्मृति कौटलीय अर्थशास्त्र के बाद की और कुरूक्षेत्र मत्स्य शूरसेन प्रदेशो के शको द्वारा जीते जाने से पहले की रचना है, क्योकि उन प्रदेशो को मनुस्मृति आचार मे अग्रणी बताती है (2, 17-20) तथा उसमे शुग युग के विचार उत्कट रूप मे वर्णित हुये है। मनुस्मृति धर्मसूत्रो का अनुसरण करती है, पर उसमे अर्थशास्त्र का राजधर्म ओर व्यवहार भी प्राय समूचा मिला दिया गया है। यही उसकी नवीनता हे।

और समय-समय पर "मनुस्मृति" के आधार पर अन्य स्मृतियो की रचना होती रही। "याज्ञवल्क्य" "नारद" आदि स्मृतियॉ बाद ही रचनाये है। परन्तु "मनुस्मृति" सब स्मृतियो का आधार ग्रथ है।

मनुस्मृति के लगभग 300-400 वर्ष बाद याज्ञवल्क्य स्मृति की रचना हुई। याज्ञवल्क्य स्मृति भी मनुस्मृति की तरह धर्म व्यवहार स्मृति है, पर उसमे व्यवहार का अध्याय अलग है। उसके प्रायश्चिताध्याय मे योग वाला अश पीछे का प्रक्षिप्त है। याज्ञवल्क्य स्मृति का काल उसमे नाणक सिक्के के उल्लेख (2, 240-41) से निश्चित होता है। नाना (नाणा) प्राचीन अश्शुर राज्य के एलम (पारस के सूसा) प्रदेश की देवी थी। कनिष्क ने दूसरे अनेक देवताओ की तरह उसकी मूरत वाला सिक्का भी चलाया जो नाणक कहलाया। कनिष्क वशजो के सिक्के प्राय शैव होने के पीछे उसकी व्याख्या की गई—नाण शिवाक टकादि। यो याज्ञवल्क्य स्मृति का समय 150-200ई के बीच आता है, जो उसके परिस्थिति चित्र से पूर्णत समर्थित होता है।

सातवाहन युग की रचना मनुस्मृति

अब यह पूर्णत सिद्ध हो गया है कि सातवाहन युग मे "मनुस्मृति" का सम्पादन हुआ और उसका रचनाकाल 150-200 ईसा पूर्व का है। जिसमे तत्कालीन समाज की स्थिति का चित्र-चित्रित किया गया है।

चातुर्वर्ण्य

"मनुस्मृति" से लेकर बाद मे रची जाने वाली प्राय सभी स्मृतियो मे "चातुर्वर्ण्य" का उल्लेख मिलता है। स्मृतियो मे चार वर्णो और उनके कर्त्तव्यो पर विस्तार से विचार किया गया है। यह प्रश्न भी सामने आ जाता है कि क्या सातवाहन युग मे जाति-भेद स्थापित हो गया था।

उत्तर यह है कि नहीं। यह अतर बाद की ही पीढियो की उपज है।

परन्तु, एक बात पूणत सत्य हे कि प्रारभ से ही आय और दास दो जातियो का भेद अवश्य था। शूद्र वे दास थे—जो आर्यो की सेवा करते थे। कालान्तर मे आर्यो के धर्माचार्यो अथवा समाज विषयक विचारको ने कार्यो के आधार पर समाज को चार भागा में बॉटा। समाज के अन्तर्गत जो लोग पराक्रम का काम करते थे वे क्षत्रिय और जो लोग पूजा कमकाड करते थे वे ब्राह्मण कहलाते थे। व्यापार ओर व्यवस्था करने वाले वैश्य और समाज की सेवा करने वाले शूद्र कहलाते थे। परन्तु उनमे कोई सामाजिक भेद नहीं था।

समाज मे जो व्यक्ति जैसा काम करता था। वह उसी नाम मे जाना जाता था । काम म अतर करने पर जाति भी बदल जाती थी। इस सबध मे मनु ने स्वय मनु स्मृति (10, 65) मे कहा है कि "शूद्र ब्राह्मण बन जाता हे और ब्राह्मण शूद्र। ऐस ही क्षत्रिय से पैदा हुये को समझे और वेश्य से पैदा हुये को भी समझे।"

यह तथ्य इतना प्रबल था कि बाहर से आने वाले लोगो ने भी इम कथन का स्वीकार किया और वे भारत मे आकर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बन गये। जो कमजोर थे। जिनको सब दबाते थे—वे शूद्र रूप मे स्थान पात गये। आर यह प्रक्रिया ऐसी चली कि कालान्तर मे इसका प्रभाव सम्पूण आय जगत् मे हो गया। यह प्रक्रिया सातवाहन युग से पहले ही चली आरही थी। पूवनद युग से क्षत्रियो का कार्य करने वाली अनेक जातियॉ अपने को क्षत्रिय ओर वर्षो से पठन-पाठन यज्ञ कमकाड करने वाले लोग अपने को ब्राह्मण, व्यापार और व्यवस्था मे जुटे लोग अपने को वैश्य कहकर गोरव का अनुभव करने लगे थे। अशक्त और सेवाभाव से काम करने वाले स्वय को शूद्र की श्रेणी मे मानकर भी आदरणीय भाव से जीने लगे थे।

यह बात सत्य है कि मोर्यो के बाद देश को बचाने वाले शुग और सातवाहन वंश के राजा थे। वे दोनो ब्राह्मण वश के थे। बौद्धो से उन्हे निपटना था। अत ब्राह्मण धर्म का इन दोनो राजवशो ने डटकर प्रचार-प्रसार किया।

बौद्ध धर्म के विरुद्ध तब तक सशक्त वातावरण बन गया था। वेदकालीन सस्कृति को उजागर करने का समय आगया था। वेदकालीन सस्कृति को ब्राह्मण धर्म के रूप में मान्यता मिलने लगी थी। इसी धर्म को शुग और सातवाहन राजाओ ने दृढ करने का निश्चय किया।

आश्रम धर्म और सातवाहन युग

वेद काल से आर्य सस्कृति मे ब्रह्मचर्य, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ और सन्यास जैसे चार आश्रमो का कठोरता से पालन होता था। वैदिक धर्म के अनुसार पहले ब्राह्मणों के लिये ही सन्यास की व्यवस्था की गई। क्षत्रियो के लिये द्वितीय वरीयता थी। वैश्य और शूद्रो के लिए सन्यास लेना आवश्यक न था।

परन्तु बुद्ध ने सन्यास लेना सबके लिये खोल दिया। बौद्ध धर्म की इस प्रेरणा से अधिकाश लोग अपने कर्त्तव्यो को छोडकर सन्यासी बनने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि समाज का ढाचा चरमरा गया। मौय साम्राज्य के अंतिम दिनो में समाज की स्थिति शोचनीय

हो गई थी। गृहस्थ अपने कार्यो को छोडने लगे थे। जबकि "मनु" गृहस्थ आश्रम के गुण गाते रहे थे।

शुगवशीय और सातवाहनवशीय राजाआ के समक्ष समाज के ढॉचे को वनाना और पहले जेसी व्यवस्था को पुनर्जीवित करना मुख्य उद्देश्य हो गया था। समाज के बिखरे स्वरूप को बनाने के लिये वेदिक धर्म की मान्यताओ को पुन स्थापित करना आवश्यक था। तभी समाज का सही स्वरूप बनता। इसलिये बोद्ध धर्म और वैदिक अथवा ब्राह्मण धर्म के अनुयायियो के बीच सघर्ष भी हुआ। परन्तु शुग वशीय ओर सातवाहन वशीय राजाओ ने जमकर बोद्ध धर्म का सामना किया आर प्राचीन मान्यताओ को कुछ नये रूप मे स्वीकार कर आर्यो की श्रेष्ठता को पुन जागृत कर डाला। इस कार्य को करने मे "मनु" की "मनृस्मृति" को विशेष योगदान रहा। "मनृस्मृति' के उद्देश्य एव नियमो का पालन हुआ और बृहद्भारत मे पुन वेदिक (ब्राह्मण) धर्म स्थापित हो गया।

कालिदास का भारत

इस अध्याय को विस्तार से इसीलिये लिखने का प्रयास किया गया हे ताकि यह भली-भॉति ज्ञात हो जाय कि जलप्लावन के बाद आर्यो क्रा विस्तार कहॉ-कहॉ हुआ। ओर उनके द्वारा आर्य साहित्य का प्रचार-प्रसार किस रूप मे होता रहा।

गहन अध्ययन करने के पश्चात् हम इसी निष्कर्ष पर पहुॅचे है कि जलप्लावन के बाद आर्यो का सुर-असुर आदि रूपो मे परस्पर सघर्ष भी हुआ तो उनका फेलाव भी पूर्वी प्रशात महासागर से पश्चिमी कैस्पियन सागर तक हुआ। परन्तु हिमालय आर्य सस्कृति का सदैव मानदड रहा है।

पूर्व से पश्चिमी सागर तक फैले हुये इस सम्पूर्ण भूभाग मे एक ही सस्कृति के दर्शन होते है। कभी आर्यो के "स्वर्ग साम्राज्य" का इस भूभाग मे वर्चस्व देखने को मिलता है तो कभी एक ही वश मे उत्पन्न हुये सुर-असुर का सघर्ष इतिहास को नया स्वरूप प्रदान करता हुआ दिखाई देता है। कभी आर्यो के विभिन्न दल पश्चिमी-पूर्वी क्षेत्रो मे आर्य धर्म का प्रचार करने जाते हुये दिखाई देते है तो कभी वे उलटकर आर्यो के मूलस्थान मे आकर अपना प्रभुत्व स्थापित करने लगते है। पश्चिम एशिया से भारत आने वाले दल इसके प्रमाण है।

इस अध्याय मे जलप्लावन से लेकर कालिदास के समय तक के इतिहास, साहित्य दर्शन और सामाजिक स्थितियो का विनम्र अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। इस अध्ययन से यही सार-तत्त्व सामने आता हे कि बृहद् भारत की जो सीमाये प्राचीन समय मे निर्धारित हुई थीं। वे सभी सीमाये ईसा पूर्व पहली शताब्दी या ईसा सन् प्रारभ होने तक यथावत रही है। नाम चाहे बदलकर नये रूप मे सामने आये हो परन्तु उनका "मूल स्वरूप" अर्थात् "आर्य रूप" कभी नहीं बदला।

इसी अध्याय मे पश्चिमी देशों के अनेक विद्वानों एव इतिहासकारो की स्पष्ट स्वीकारोक्ति है कि वे आर्य है और आर्यावर्त्त के आर्य ही उनके पूर्वज है। विश्व इतिहास

मे आर्यो के इस तथ्यपूण महत्त्व को स्वीकारा भी गया हे। "विश्व का इनिहास" आयावत्त के आर्यो को अलगकर लिखा ही नहीं जासकता। क्योंकि विश्व का क्रमिक इतिहाम तभी लिखा जासकता हे जबकि उसमे आर्यावत्त के आर्यो के विभिन्न रूपा, कार्यो ओर एतिहासिक कृत्यो का उल्लेख स्पष्ट रूप से किया हो।

विश्व की राजनीति, धर्मशास्त्र ओर समाजशास्त्र की मूल भूमिका को आयावत्त के आर्यो ने ही सवप्रथम प्रभावित किया हे। ओर उसका विस्तृत इतिहास यत्र-तत्र आज भी बिखरा पडा हे। आर्यो के उस इतिहास की स्पष्ट झलक सुमरू, मानसरोवर, केलाश, तिब्वत, अफगानिस्तान, काबुल, केस्पियन सागर, असीरिया, पर्शिया, इरान से लेकर बमा, जावा, सुमात्रा, वाली और सिहल (श्री लका) आदि अनेक देशों म आज भी दिखाइ देनी ह।

जब आयावत्त इतना सम्पन्न ओर समृद्ध था—तब के बृहद् भारत को दखकर "मनु (2/22) ने लिखा था

आसमुद्रातु वै पूर्वादासमुद्रस्तु पश्चिमाम्।
तयोरेवान्तर गिर्योरार्यावर्तै विदुर्बुधा ।। मनु० 2/22

और फिर कालिदास ने भी कुमार सभव के प्रथम सग के प्रथम श्लोक मे मनु की भावना की पुष्टि की है

अस्त्युत्तरस्या दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराज ।
पूर्वापरौ तोयनिधीऽवगाह्य् स्थित पृथिव्या इव मानदण्ड ।।

—कालिदास, कुमार सभव 1/1

"पूवापरौ तोयनिधीऽवगाह्य्।" मे बृहद् भारत का ही तो इतिहास है। जो बृहद् भारत रामायण काल मे, ईसा से दस हजार वष पूर्व भृगु के सूत्रो मे सत्य था, जो इसा से दो सौ वष पूव सकलित मनुस्मृति मे सत्य था और जो ईसा के सौ वर्ष पूर्व या इसा के जन्म तक कालिदास के लेखो मे सत्य था, वह बृहद् भारन का भूगोल मिथ्या कैसे होगा।

स्वर्ग के शासन पर बैठकर नदवन से अपने सहस्त्रो प्रतिनिधियो द्वारा सहस्त्राक्ष इन्द्र के शासन की ओर इगित करते हुए ही कालिदास ने कुमारसभव के प्रथम सग के दूसरे श्लोक मे लिखा था।

य सर्वशैला परिकल्प्य वत्स मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधीश्च पृथूपदिष्टा‌दुदुहुर्धरित्रीम्।।

सारे देश, सारे शैल इस हिमालय के माध्यम से ही इस वसुधा की सपति का दोहन करते रहे है। वह हिमालय वसुधा का मानदण्ड था। विश्व का न्याय हिमालय पर तुलता रहा है। स्थित पृथिव्या इव मानदण्ड का यही तो अर्थ है। मनु के धमशास्त्र मे इसी इतिहास की प्रतिध्वनि है—

एतद्‌देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन ।
स्व स्व चरित्र शिक्षेरनूपृथिव्या सर्व मानवा ।।

अत ऐतिहासिक तथ्यो से यह प्रमाणित हो जाता है कि ''मनु'' का बृहद् भारत ही कालिदास का भारत हे। इस तथ्य को कालिदास ने अपनी रचनाओ के माध्यम से पूर्णत सिद्ध किया हे। उनके मानस पटल पर ऋग्वेद से लेकर शुगवश के काल खड का चित्र पूर्णत चित्रित हुआ सा मिलता है। ओर उन चित्रो मे आर्यावर्त्त के क्रमोत्तर इतिहास की जो स्पष्ट झलक मिलती है उन सब तथ्यो का विवरण कालिदास के सम्पूर्ण साहित्य मे प्राप्त हो जाता है।

■■

डॉ0 शिवानन्द नौटियाल

बृहत्तर भारत :

आर्यों का मूल

साहित्य प्रकाशन, दिल्ली